ऋग
वेदकथा
रघुनाथ सिंह

ऋग्
वेद कथा

रघुनाथ सिंह

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-७

समर्पण

कांग्रेस संसदीय दल तथा उसकी कार्यकारिणी को

जिसका

स्नेह तथा विश्वास मैं सर्वदा प्राप्त करता रहा हूँ

कांग्रेस संसदीय दल—कार्यकारिणी १६६६-६७

नेता	श्रीमती इंदिरा गांधी	प्रयाग (उत्तर प्रदेश)
नेता (लोकसभा)	श्री सत्य नारायणसिंह	समस्तीपुर (बिहार)
उप-नेता	,, वी० गोपाल रेड्डी	नेलोर (आंध्र)
,,	,, सुरेन्द्र मोहन घोष	१७वी० रोमय रोड, कलकत्ता
मुख्य सचेतक	,, जगन्नाथ राव	१७ अकबर रोड, नई दिल्ली
प्रधान-मंत्री	,, रघुनाथ सिंह	औरंगाबाद, वाराणसी
,,	,, कृष्ण चन्द्र पंत	नैनीताल
,,	,, के० एस्० रामास्वामी	कुगालूर, कोयंबटूर
कोषाध्यक्ष	,, रामेश्वर तांतिया	शरत चटर्जी एवन्यू, कलकत्ता
उप सचेतक	,, जे० वी० मुथपाल राव	बेगमपेठ, हैदराबाद
,,	,, चौधरी रामसेवक	चन्द्र नगर, जालौन
,,	,, आर० एस्० डूगर	८४ वी, शम्भूनाथ पण्डित स्ट्रीट, कलकत्ता
,,	,, आर० एस्० पंजहजारी	वसरके, अमृतसर

कार्यकारिणी के सदस्य

लोक-सभा

१. श्री हरिश्चन्द्र माथुर, नयावस, जोधपुर

२. ,, एस्० के० पाटिल, बम्बई

३. ,, रामसुभग सिंह, शाहाबाद

४. ,, पी० वेंकट सुब्वैया, संनमाला, करनूल

५. श्री सतीश चन्द्र सामंत तामलुक, मेदिनापुर

६. ,, रवीन्द्र वर्मा, वसंत विलास, मेविलकारा

७. ,, श्यामधर मिश्र, गोपीगंज, वाराणसी

८. ,, पी० जी० करुती रमन, कोयम्बटूर

९. ,, हुमायू कबीर, कलकत्ता

१०. ,, इन्द्र मल्होत्रा, कठुवा, जम्मू काश्मीर

११. कुमारी सरोजनी महीषी, १९/५ कुम्हारा पार्क, बंगलोर

१२. श्री आर० एस्० पाण्डेय, १४१ कोलावा, बम्बई

१३. ,, भगवत झा आजाद, भागलपुर, बिहार

१४. ,, एस्० एस्० देशमुख, हिंगोली, परमानी

१५. ,, केशव देव मालवीय, प्रयाग (उ० प्र०)

१६. श्रीमती शारदा मुकर्जी ८/ए मफत लाल पार्क, बम्बई

राज्य-सभा

१. श्रीमती ललिता राज गोपालन, ४८१ पूनमल्ली, मदरास

२. श्री गुरुपद स्वामी, रामनुज रोड, मैसूर

३. ,, चन्द्रदत्त पाण्डेय, प्रिरोज, नैनीताल

४. ,, आर० पी० सिनहा, सूरजपुर, शाहाबाद

५. श्री एम्० एम्० धारिया, सदाशिव पेठ, पूना

६. ,, जगन्नाथ पहाड़िया, भुसावर, भरतपुर

७. ,, डी० पी० करमाकर, धारवार, मैसूर

८. ,, एस्० एस्० अटवल, आसनसोल, बंगाल

पदेन सदस्य

नेता राज्य-सभा
श्री एम्० सी० चागला, बम्बई
प्रधान मंत्री-अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी

श्री टी० मनीन दार्जिलिंग, बंगाल
,, सादिक अली, उदयपुर, राजस्थान

श्री जुगल किशोर बिरला

को

सादर भेंट

जिन्होंने वैदिक सिद्धान्त को भारत में भव्य विशाल मंदिरों, धर्मशालाओं तथा संस्थाओं के भवनों की शृंखला में साकार किया।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	६	गाव	गोत्र
२२	१५	वसीय	यज्ञीय
३०	२८	पुत्रक	युवक
३३	२०	सूक्ष्म	सूत्र
४६	१६	हिरण्य कश्यप	हिरण्य कशिपु
८७	२१	वृचपा	वृचया
१००	शीर्षक	श्यायाश्व	श्यावाश्व
११४	१	श्यामाश्व	श्यावाश्व
१२३	७	चापमान	चायमान
१२४	११	,,	,,
,,	१३, २०, २७	पापु	पायु
१२५	१, ७, १०, १४, १८, २५	,,	,,
१२६	१, ४ आदि	,,	,,
१२६	२७ आदि	चापमान	चायमान
१२७	१७ आदि	,,	,,
१२८	८	पापु	पायु
,,	२७	चापमान	चायमान
१२६	१	पापु	पायु
,,	६	हरिप्पिया	हरिशूपिया

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४४	७	लेने	देने
,,	१४	लेना	लाना
१६१	१	विचार	विवाह
२५७	३०	प्रणिपो	पणिपो

बात कुछ इस प्रकार चली—

स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरूजी की महाप्रस्थान सम्बन्धी लेखमाला हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' नयी दिल्ली, पत्र में समाप्त हुई। उसके सम्पादक श्री रतनलाल जोशी हैं। एक दिन सहज ही पूछ बैठे—'और क्या लिखेंगे ?' मैंने मजाक में कह दिया—'वेद पर लिखूँगा।'

बात विनोद की थी। परन्तु हुई सच्ची। 'राम-कथा' तथा 'योग वासिष्ठ-कथा' का हिन्दी जगत् में स्वागत हुआ था। उसके प्रकाशक श्री कृष्ण चन्द्र बेरी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, काशी हैं। उन्होंने विचार पसन्द किया। मैं वेद का ज्ञाता नहीं हूँ। वैदिक व्याकरण भी नहीं जानता। तथापि निश्चय किया, 'वेद-कथा' लिखूँगा।

हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में दो-चार पुस्तकें वेद-कथाओं पर लिखी गई हैं। उनमें पौराणिक आख्यान जोड़ दिये गये हैं। वे मूल वैदिक रूप में नहीं हैं।

मैंने पुस्तकों का संग्रह आरम्भ किया। लगभग तीन हजार रुपये पुस्तकों के खरीदने में व्यय किये। वैदिक साहित्य का एक छोटा पुस्तकालय बन गया। अध्ययन के पश्चात् मेरे कुछ अपने विचार उत्पन्न हुए। अनेक शंकाएँ थीं। उत्तर तथा दक्षिण भारत के वेद-विज्ञ विद्वानों से सम्पर्क स्थापित किया। श्री सातवलेकर जी ने वैदिक अनुसन्धान में जीवन व्यतीत किया है। उनसे भी पारडी में जाकर मिला। इसमें मेरे तीन वर्ष व्यतीत हो गये।

इसी काल में मैं संसद सदस्य के अतिरिक्त कांग्रेस संसदीय दल का मंत्री तथा नेशनल शिपिंग बोर्ड का चेयरमैन था। समय कम मिलता था। लेखनी उठ नहीं सकी। मैंने लिखने का प्रयास त्याग दिया। सोच लिया, जो कुछ पढ़ा है, वह अध्ययन मात्र समझ लिया जाय।

अव्यक्त शक्ति का जीवन में कुछ हाथ रहता है। अव्यक्त शक्ति पर कुछ लोग विश्वास नहीं करते। वे कह सकते हैं, भविष्य की घटनायें बहुत कुछ जीवन में मोड़ पैदा कर देती हैं। कुछ इसी तरह की घटना घटी।

फाउण्टेन पेन और घड़ी मेरा साथ बहुत दिनों तक नहीं पकड़तीं। लक्ष्मी की तरह चंचल रहती हैं। कलम वर्ष में चार-पाँच खोता हूँ। घड़ी की भी बारी वर्ष में आ जाती है। घड़ी प्रायः नहीं लगाता। कलम भी दो रुपये से अधिक मूल्य की नहीं रखता। मेरे एक मित्र हैं श्री फतहचन्द पाहवा। वे कांग्रेस संसदीय दल के कार्यालय मन्त्री थे। मेरे साथ रहते थे। अब उन्होंने दूसरा काम कर लिया है। उन्होंने किसी सुअवसर पर मुझे एक कलम दी। हमारे स्तर से वह महँगी थी। मैंने कहा—'यह लेकर क्या करूँगा। खो जायगी।' उन्होंने हँसते हुए कहा—'कुछ लिखिएगा।' कलम मेरी टेबुल पर रखकर चले गये। मैंने कलम उठाई। दो-चार बार देखा। विचार अनायास उठा। नवीन कलम से नवीन कुछ क्यों न लिखूँ? वेद-कथा लिखने की कल्पना की थी। कलम टेबुल पर रख दी। नई स्याही मँगाई। वेद पवित्र है। पवित्रता और शुद्धता से लिखना अच्छा होगा। मैंने पुस्तक रचना में आन्तरिक तथा वाह्य पवित्रता का विशेष ध्यान रखा है।

काशी निवासी होने के कारण मैं वेद से परिचित था। वेद-ध्वनि मुझे प्रिय लगती है। जीवन के उषा काल से काशी के मन्दिरों, घाटों पर सस्वर वेद पाठ सुनता रहा हूँ। उसका प्रभाव अचेतन मन पर पड़ता रहा है।

सन् १९२१ ई० में मैं बनारस जिला जेल बैरक नं० ६ में ११ वर्ष की अवस्था में राजनीतिक बन्दी के रूप में रखा गया। संयोग से उसी बैरक में आचार्य कृपलानी लगभग २६ साथियों सहित थे। उसी में श्री सम्पूर्णानन्द जी भी बाद में आ गये थे। श्री सम्पूर्णानन्द जी जेल में गीता पढ़ाते थे। आचार्य कृपलानी मेज़नी के लेख सुनाया करते थे।

एक दिन आचार्य कृपलानी ने सायंकालीन चर्चा में पूछा—'वेद किसी ने देखा है? कितना बड़ा है?' कोई समुचित उत्तर न दे सका। नाम सबने सुना था। किसी ने पूरे वेद का दर्शन नहीं किया था। उसका आकार बहुत बड़ा होगा। सबने कल्पना कर रखी थी। मैंने कहा—'एक गाड़ी इतना बड़ा होगा।' वेद से बढ़कर कोई ग्रंथ नहीं है। यह बात मन में बैठी थी। उसी आधार पर उसे सबसे बड़ा साबित करने के लिये कहा था। बात यहीं समाप्त हो गई।

अपने निवास-स्थान पर वर्ष में एकाध बार बसन्त-पूजा होती चली आई है। पूर्वज कराते रहे हैं। मैं भी उसका अनुकरण करता जा रहा हूँ। पूजा में वेद-पाठी सस्वर वेद पढ़ते हैं। काशी की परम्परा है। वेद पाठ करने वालों की दक्षिणा निश्चित नहीं की जाती। पाठ के पश्चात् पण्डितों को दक्षिणा तथा फलाहारी-मिठाई दी जाती है। मुझे बचपन से वेद सुनने का शौक है। आनन्द

का बोध होता है।

मेरे मकान के पास श्री कमलापति त्रिपाठी का मकान है। उनके यहाँ प्रति वर्ष श्रावणी तथा आश्विन कृष्ण पक्ष अष्टमी को बसन्त-पूजा होती है। यह क्रम उनके कुटुम्ब में शताब्दियों से चला आता है। काशी के उच्च-कोटि के वेद-पाठी उसमें सस्वर वेद पाठ करते हैं। मैं प्रायः उनके यहाँ चला जाता था अथवा अपने घर से ही सुनता रहता था।

मेरी दशाश्वमेध घाट पर बैठक है। उसकी बगल में अगस्त्य कुण्डा महाल है। महाराष्ट्री ब्राह्मणों की आबादी है। महाराष्ट्री बाल-मित्रों के साथ चला जाता था। अगस्त्य के मन्दिर में प्रायः वेद पाठ का आयोजन महाराष्ट्री ब्राह्मणों द्वारा होता था। वेद ध्वनि से मन्दिर और गली गूँज उठती थी।

काशी के गंगा तट पर बसन्त-पूजा का आयोजन महाराष्ट्री मुहल्लों के पंचगंगा घाट, ब्रह्म घाट और दुर्गा घाट पर होता था। वहाँ महाराष्ट्री ब्राह्मण वेद पाठ करते थे। घनान्ती एकत्रित होते थे। सस्वर उच्चारण के कारण सुनने वालों का जमघट लग जाता था। मैं भी टहलता चला जाता था। वेद का अर्थ मैं समझता नहीं था। परन्तु जिस प्रकार वह पढ़ा जाता था, वह मुझे अच्छा लगता था।

वेद गान की एक परिपाटी है। स्वच्छ उज्ज्वल धोती पहने, उत्तरीय स्कन्ध प्रदेश पर रखे, खुले सर, यज्ञोपवीत धारण किये, ब्राह्मण दो पंक्तियों में एक-दूसरे के सम्मुख बैठ जाते हैं। उनके ललाट पर केसरिया चन्दन लगाया जाता है। माला पहनाई जाती है। धूप बत्ती जला दी जाती है। स्थान सुरभित तथा पवित्र हो जाता है। उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों के साथ दाहिना हाथ स्वर का क्रम प्रकट करता है। सस्वर वेदोच्चारण के कारण पवित्रता मूर्तमान हो जाती है। एक पंक्ति उच्चारण करती है। उसके बन्द करने पर दूसरी पंक्ति आरम्भ करती है। यही क्रम चलता रहता है। आज भी जहाँ वेद पाठ होता है मैं अनायास खड़ा हो जाता हूँ। सुनता हूँ। घंटों सुनते रहने पर भी शिथिलता नहीं आती। स्फूर्ति का अनुभव होता है। वेद-ध्वनि हृदय में झंकार उत्पन्न कर देती है। इच्छा रहती है कोई वेद पाठ निरन्तर करता रहे और मैं सुनता रहूँ। अनजाने इसमें मन एकाग्र होकर लग जाता है। इच्छा यही है, वेद-ध्वनि सुनते प्राण त्याग करूँ ! पता नहीं भाग्य में यह बदा है या नहीं !

महाराष्ट्री, बंगाली, नेपाली, सारस्वत, मैथिल, द्राविड़, गुर्जर, कान्यकुब्ज तथा सरयूपारीण ब्राह्मणों के उच्चारण में भिन्नता दिखाई पड़ने पर भी मूलतः वेद एक ही है। काशी में महाराष्ट्री ब्राह्मण जिस निष्ठा तथा शैली से

वेद पाठ करते हैं वह मुझे अच्छा लगता है।

मैं वेदविद् नहीं हूँ । मुझे वैदिक साहित्य का ज्ञान नहीं है । मैं जो कुछ स्वाध्याय से प्राप्त कर सका हूँ, किया है । वेद का अर्थ लगाना कठिन है । हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में इस विषय पर साहित्य-सामग्री स्वल्प है । तथापि मैंने यथाशक्ति वैदिक उपाख्यानों को उनके मूल रूप में पाठकों के सम्मुख रखने का तुच्छ प्रयास किया है ।

इस प्रयास का एक कारण है । वेद का अध्ययन-अध्यापन अत्यन्त न्यून है । उसे गूढ़ कठिन ग्रंथ समझ कर लोग पढ़ते नहीं । वेद महाभारत, रामायण जैसा रोचक ग्रंथ प्रतीत नहीं होता। मैंने वेद की ओर लोगों की रुचि बढ़ाने के लिए यह ग्रंथ लिखा है । वेद ऐसा गूढ़ नहीं है, जो प्रकट किया न जा सके । वह बोधगम्य है । उसे समझने पर समस्त आर्य परम्परा, उसके इतिहास, संस्कृति, सभ्यता का जीता-जागता स्वरूप आँखों के सम्मुख खड़ा हो जाता है ।

प्रस्तुत पुस्तक में ऋग्वेद की सम्पूर्ण कथाएँ आ गई हैं । ऋग्वेद मानव के पास प्राचीनतम ग्रंथ है । इस समय उपलब्ध है । विचारों का आद्य संग्रह है । उसमें उन सब बातों का समावेश मिलेगा जो तत्कालीन समाज में था । वह ज्ञान, कर्मकाण्ड, उपासना, दर्शन, परम्परा, विधि, धर्म, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, मानसिक, नैतिक बातों का मनोवैज्ञानिक चित्रण करता है । उसमें साहित्य है । ललित कलायें हैं । उसमें रस है । अलंकार हैं । छन्द हैं । उपमा है । चित्रण की शैली स्पष्ट है। भाषा सारगर्भित, साहित्यिक, प्रांजल तथा सीधी-सादी है । वेद निरर्थक बातों में पाठकों को उलझाता नहीं । उसमें अप्रासंगिक बातों का समावेश नहीं किया गया है । वह अन्ध-विश्वास से हटाकर छोरहीन ज्ञान-क्षेत्र में प्रवेश कराता है । वेद की धारा तुषार पोषित सरिता के अजस्र निर्मल गतिशील प्रवाह की तरह है, जो अपने पुराने क्रोड़ में बहती हुई सर्वदा नवीन, स्फूर्तिदायक स्वस्थ जल दान करती रहती है । मैं इसलिये वेद पर मुग्ध हूँ ।

आर्य परम्परा में वेद अन्तिम शब्द है । वह मूल है । उसी से सब कुछ निकला है । वह आदि स्रोत है । वह स्रोत है, जो कभी सूखता नहीं । उस मूल स्रोत से अनेक धाराएँ किंवा शाखाएँ निकली हैं । वे धाराएँ, उपधाराएँ किंवा शाखाएँ स्वयं मूल स्रोत लगने लगती हैं । वह उस वट-वृक्ष की तरह है, जिसका बरोह मूल वृक्ष से निकल कर भूमि में लग जाता है । एक नवीन वृक्ष का रूप ले लेता है । मूल लुप्त होने पर भी शाखा के कारण मूल का चिह्न शेष रह जाता है । देश, काल, पात्र के अनुसार परिस्थितियाँ बदलती गईं । अतएव

मूल धर्म एक होने पर भी समय की गति के साथ शाखाएँ-प्रशाखाएँ किसी-न-किसी सिद्धान्त को लेकर निकलती गईं। जिस प्रकार वट मूल स्वयं लुप्त होकर प्रत्येक बरोह को एक वृक्ष के रूप में लक्षित करने लगता है, वही अवस्था वेदोत्तर-कालीन धर्मों की हुई है। उनमें वैदिक छाया मिलती है। पारसी, यहूदी और ईसाई धर्मों के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है।

ईसाई तथा मुस्लिम काल में मूर्ति-भंग तथा ग्रंथ-विनाश की एक आँधी बही। मानव-जगत् का अगाध साहित्यिक, धार्मिक, ऐतिहासिक ज्ञान-भण्डार नष्ट करने की जो परम्परा निकली, उसने जगत् का जितना अहित किया है, उतना दूसरे से नहीं हुआ है। यही कारण है कि ऋग्वेद की २१ शाखाओं में से केवल एक शाकल शाखा उपलब्ध है। अर्थात् ऋग्वेद का लगभग पाँच प्रतिशत प्रकाश में आया है। शेष लुप्त है। अथवा सर्वदा के लिए नष्ट हो गया है। ज्ञान के इस मूल स्रोत वेद के नामोच्चारण मात्र से मस्तक स्वतः नत हो जाता है। आलोचना, विवाद किंवा तर्क करने की इच्छा नहीं होती। जैसे को तैसा उसे मान लेने में मन प्रफुल्लित होता है। वह अपौरुषेय है।

अनेक वेद भाष्य हैं। अनेक अनुवाद हैं। अनेक प्रकार से उनका अर्थ किया जाता है। किन्तु मैं कहूँगा कि वेद का अर्थ वास्तव में अभी लगाया नहीं जा सका है। शब्दों का अर्थ काल गति के कारण बदलता रहता है। वैदिक काल और आज के काल में सहस्रों से लाखों वर्षों का अन्तर है। उस समय और आज की परिस्थितियों में आमूल परिवर्तन हो चुका है। उस समय की सभ्यता आज की सभ्यता नहीं है। उस समय की नैतिकता आज की नैतिकता नहीं है। उस समय के और आज के मूल्यांकन में अन्तर है। अतएव जब तक वैदिक कालीन वातावरण, परिस्थतियों तथा समाज में अपने को न रखा जाय, वेद का अर्थ समझना कठिन होगा।

वेद समझने के लिये, वेद जिस स्थान पर लिपिबद्ध किया गया है, वहाँ की भौगोलिक, प्राकृतिक स्थिति, पशु-पक्षी, वनश्री, पर्वत, नदी, नाला, जलवायु आदि के मध्य कुछ दिन रह कर उनका अनुभव करना आवश्यक है। वैदिक आर्य गंगा से लेकर रूस, स्पेन, मिस्र तक फैले थे। उन्हें ईरान, सीरिया, अरब, मिस्र, मध्येशियादि की सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक परिस्थितियों की जानकारी थी। वेद में इस प्रकार के प्रसंग मिलते हैं, यह उनसे प्रकट होता है। वेद के सूत्रकार लगभग तीन सौ ऋषियों को उक्त भू-खण्ड में फैले विचारों तथा विधियों का ज्ञान था। उन्होंने विभिन्न विचारधाराओं का उल्लेख कर उन पर अपना मत प्रकट किया है। उस समय ज्ञात जगत् में केवल

एक ही वैदिक विचारधारा मुख्यतया प्रचलित थी।

इस परिपेक्ष्य में मैं कहूँगा कि यदि वेद के भारतीय भाष्यकारों ने उक्त भूखण्डों का पर्यटन किया होता तो शायद उनका भाष्य तथा अनुवाद और ही ढंग का होता। उन्हें वेद समझने तथा समझाने में सरलता होती। जिन्होंने उक्त भूखण्ड के पुरातन इतिहास तथा पुराकालीन सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन नहीं किया है, उनके भाष्य किंवा अर्थ एकांगी होंगे। मैंने उक्त भूभागों का स्वयं भ्रमण किया है। वेद का अध्ययन कर इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि किसी भी ग्रंथ को समझने के लिये ग्रंथकर्ता के वातावरण, उसके जन्मस्थान, उसके जीवन और तत्कालीन समाज पर दृष्टि डालना आवश्यक है। लेखक स्वयं अपनी परिस्थितियों की देन है। चाहे वह अपनी प्रतिभा से विविध रंग क्यों न अपनी रचनाओं में भर दे।

हिन्दी-जगत् वेद-कथा पसन्द करेगा या नहीं, प्रश्न था। मैंने सर्व प्रथम 'उर्वशी' लिखी थी। वह साप्ताहिक हिन्दुस्तान के दो अंकों में प्रकाशित हुई। लोगों ने पसन्द की। अतएव निश्चय कर लिया कि सभी कथाएँ लिख डालूँ।

सिंगापुर समुद्री जहाज़ से जाने का निश्चय हुआ। यह अच्छा अवसर था। उसके पूर्व मैंने बम्बई से गोआ तक की ३ जनवरी से ६ जनवरी तक १९६६ ई० में यात्रा 'सरिता' जहाज़ से की। 'सरिता' में मैंने 'अपाला' आख्यान लिखा। दिल्ली से ७ जनवरी, सन् १९६६ ई० को मद्रास के लिए प्रस्थान किया। रेल में दो कथा लिखीं। सिंगापुर के लिए मद्रास से ९ जनवरी को प्रस्थान किया। समय मिल गया। जहाज़ पर वेद-कथा लिखनी आरम्भ कर दी।

प्रातःकाल साढ़े छः बजे ११ जनवरी को सन्ध्या पर से उठते ही रौदर कम्पनी, मद्रास के श्री इब्राहीम ने सूचित किया—"श्री लाल बहादुर शास्त्री का ताशकन्द में देहावसान हो गया।" विचार हुआ। जहाज़ लौटा कर मद्रास चलें। वहाँ से दिल्ली पहुँचा जाय। परन्तु दिल्ली दूसरे दिन पहुँचना कठिन था। जनवरी १२ को १२ बजकर साढ़े तीस मिनट पर शास्त्रीजी की पार्थिव काया ने अग्नि का स्पर्श किया और जहाज सिंगापुर की ओर चलता रहा। दिल्ली से सम्पर्क स्थापित रहा। जोर पड़ने लगा। प्रधानमंत्री का चुनाव होने का समाचार मिला। उसमें सम्मिलित होना आवश्यक माना गया। सिंगापुर पहुँचने तक जहाज़ पर मैंने 'सरमा-पणि', 'त्रित', 'दध्यञ्च', 'घोषा', 'देवापि', 'सरण्यू', 'सोम का पलायन', 'सुबन्धु' तथा 'यम-यमी' नौ कथाएँ लिखी थीं।

प्रधानमंत्री के निर्वाचन के लिए १९ जनवरी निश्चित की गयी थी।

ज़हाज़ १५ जनवरी को पेनांग पहुँचा। वहाँ से इपो पहुँचकर वहीं के स्टेशन-होटल में ठहर गया। वहाँ से हम मोटर से कोलालामपुर आये। कोलालामपुर से ट्रेन से १७ जनवरी को प्रातःकाल सिंगापुर पहुँचे। सिंगापुर में जिस होटल में ठहरा था, उसके नीचे भारतीयों तथा चीनियों की दुकानें हैं। मैं इसके पूर्व दो बार सिंगापुर आ चुका हूँ। दो-एक दुकानें परिचित थीं। एक चू-सा की दुकान थी। वहाँ इसके पूर्व कुछ खरीद चुका था। उसमें प्रवेश किया। दुकान में कलमें लगी थीं। कलम देखकर मन में विचार आया : अब तक १२ वेद-कथाएँ लिख चुका था। शेष कथाएँ क्यों न पुनः नई अच्छी कलम से लिखूँ। वेद में स्वर्ण का वर्णन खूब मिलता है। मैंने सबसे कीमती शेफर सुनहरी कलम खरीद ली। न जाने इसमें मुझे क्यों प्रसन्नता का अनुभव हुआ। उसने मुझे प्रेरित किया। मैंने यथाशीघ्र इस नवीन कलम से शेष २४ कथाएँ लिख-कर समाप्त कीं। जनवरी १७ को क्वन्टास हवाई जहाज़ से दिल्ली के लिए प्रस्थान किया।

काशी में अपने निवास स्थान औरंगावाद में 'अग्नि का लुप्त होना', 'वशिष्ठ और वरुण', 'नाहुष-सरस्वती', और 'इन्द्र-विकुण्ठा' कथाएँ लिखीं। काशी से दिल्ली आते समय ट्रेन में 'गृत्समद' और दिल्ली से जयपुर ट्रेन की यात्रा में 'ऋभुगण' लिखी। जयपुर के प्रवास काल में 'भृगु, अंगिरस, अत्रि का जन्म' तथा 'इन्द्र ऋषिगण' कहानियाँ लिखीं। शेष १८ कथाएँ अपने दिल्ली के निवास स्थान, १५ केनिंग लेन में लिखीं। इस प्रकार दो मास में समस्त कथाएँ लिपिबद्ध की गईं।

इस पुस्तक की १९ कथाएँ दैनिक हिन्दुस्तान के रविवासरीय अंकों में प्रकाशित हो चुकी हैं। साप्ताहिक हिन्दुस्तान में दो कथाएँ प्रकाशित हुई हैं। शेष १५ कथाएँ बड़ी होने के कारण पत्रों में प्रकाशित नहीं की जा सकी हैं।

कथा लिखने में मूल कथानक को ही आधार माना गया है। तत्कालीन सामाजिक चित्रण कथानकों में नगण्य मिलेगा। जो बात ज्ञात न हो अथवा ज़िसके विषय में साधिकार न लिखा जा सके, उस पर लेखनी उठाना ठीक नहीं है। ये कथाएँ पुराणों, महाभारत, रामायण में मिलेंगी। उनमें और इन कथाओं में अन्तर मिलेगा। मैंने प्रत्येक कथा को, जहाँ पर भी जिस ग्रंथ में मिली, उसे लिखने के पूर्व पढ़ा। उनका संदर्भ भी प्रत्येक कथा के साथ यथा-शक्ति दे दिया है। परन्तु लक्ष्य मूल वैदिक कथा को ही माना है। साहित्यिक उड़ान तथा कल्पना का आश्रय बहुत कम लिया है। लिखने का प्रयोजन यही था कि पाठक समझ सके कि वेद में किस प्रकार कथाएँ, किस रूप तथा शैली में

दी गई हैं। वेद पद्य में हैं। मैंने उन्हें गद्य में लिखा है। अपनी तरफ से उनमें कुछ मिलाया नहीं है। उन कथाओं का आध्यात्मिक, भौतिकादि अर्थ क्या है, मैं इस विवाद में नहीं पड़ना चाहता।

पुस्तक टंकित होकर अप्रैल मास में ही तैयार हो गई थी। प्रकाशन में कुछ विलम्ब लगा है। श्री कन्हैयालालजी मलिक के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। उन्होंने इसे वास्तव में एक पवित्र कार्य समझ कर प्रकाशित किया है। पुस्तक के चित्रकार सर्वश्री शेषचन्द्र गुप्त, सुखदेव दुग्गल को उनके सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ। अन्त में मैं श्री रतनलालजोशी, श्री राजेन्द्र शर्मा तथा श्री कृष्णचन्द्र बेरी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिनका सक्रिय सहयोग मुझे प्राप्त होता रहा है।

मैंने यह पुस्तक श्री जुगलकिशोर बिरलाजी को भेंट की है। उसका कारण है। श्री जुगलकिशोरजी ने वैदिक सिद्धान्त को भव्य और विशाल मन्दिरों, धर्मशालाओं तथा संस्थाओं के भवनों की शृंखला में साकार किया है। वे अनुप्राणित करते हैं, (और करते रहेंगे कोटि-कोटि पठित और अपठित भारतीयों को। बीसवीं शताब्दी के इस चरण में भारतीय संस्कृति तथा धर्म-प्रसार के लिए उन्होंने जितना किया है, शायद किसी ने न किया हो,) उन्हें भारत भूल नहीं सकेगा। यह मेरा सौभाग्य है। मैं अपनी छोटी-सी भेंट उन्हें समर्पित करने में समर्थ हुआ हूँ।

तीसरी लोक-सभा के काल में मैं चार बार कांग्रेस संसदीय दल का प्रधान-मन्त्री सर्वाधिक मत से चुना गया हूँ। इस काल में मैंने चार पुस्तकें लिखी हैं। तीन पुस्तकें दल को समर्पित की हैं। यह चौथी पुस्तक मैं पुनः दल को समर्पित करता हूँ।

आत्मदेव को नमस्कार—

औरंगाबाद
वाराणसी शहर
२५–४–६७

—रघुनाथ सिंह

विषय-क्रम

मण्डल : १

मण्डल : २

मण्डल : ४

मण्डल : ५

मण्डल : ६

मण्डल : ७

मण्डल : ८

मण्डल : ९

मण्डल : १०

मण्डल : १

दध्यञ्च

[आधुनिक सर्जरी अर्थात् शल्य चिकित्सा बहुत विकसित मानी जाती है। वैदिककाल की सर्जरी अर्थात् शल्य चिकित्सा आज से पीछे नहीं, बल्कि और विकसित थी। विश्व की उस विकासावस्था तक पहुँचने में अभी यथेष्ट समय लगेगा।

यह ऋग्वैदिक कहानी है। अश्विनी कुमार शल्य और भैषज चिकित्सा के आचार्य माने जाते हैं। उन्होंने आधुनिक सर्जरी 'ग्राफ्टिंग' के तुल्य दध्यञ्च के मस्तक को काट कर उस पर दूसरा मस्तक लगाया था। दूसरा मस्तक लगाने पर भी वह पूर्व मस्तक तुल्य कार्य करता था। ऋग्वेद-कथाकारों ने इस सिद्धान्त को कहानी रूप में प्रस्तुत किया है।]

श्वेत अश्वों द्वारा चालित रथ ने महर्षि दध्यञ्च के आश्रम में प्रवेश किया। रथ रुका। उस पर से उतरे, पीतवसन, मन्दार माला, स्वर्णाभरण विभूषित, मुकुटधारी, शची पति इन्द्र। हाथ में था बज्र। मुद्रा प्रसन्न थी। सस्मित थे। महर्षि दध्यञ्च के समीप, मन्थर गति से गतिशील हुए।

ऋषि ने सुरेन्द्र को देखा। त्याग, तपस्या, निःस्पृह देवभक्ति द्वारा भास्वर ऋषि का शरीर, कुशासन से उठा। ऋषि में उत्कण्ठा नहीं थी। शान्त थे। निर्लिप्त भाव से अग्रसर हुए, इन्द्र के स्वागत निमित्त।

एषणाओं को तिलांजलि देने वाली अग्नि में तप्त स्वर्ण तुल्य ऋषि काया कटि प्रदेश पर नत हुई।

"पुरन्दर!" ऋषि ने इन्द्र को प्रणाम किया। सादर बोले, "आश्रम आपका स्वागत करता है। कृपया पाद्य, अर्घ्य आसन, तथा मधु-पर्क ग्रहण कीजिये।"

"ऋषि कुशल हैं?" इन्द्र ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए पूछा।

"आपकी महती कृपा भगवन्!"

इन्द्र ने पुष्पित आश्रम को एक बार आँखें घुमाकर देखा। यज्ञवेदी से उठती

हवि की सुरभित धूम्र राजि, वायुमण्डल को शुद्ध कर रही थी। ऋषि की हृदयस्थ पवित्रता, विकसित होकर, आश्रम के कण-कण में मुखरित थी।

"महात्मन्," इन्द्र ने कहा, "आपको किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं है, मैं जानता हूँ, तथापि चाहता हूँ वांच्छित फल मुझ से आप प्राप्त करें।"

ऋषि पर किसी प्रकार की क्रिया-प्रतिक्रिया नहीं हुई। वे निर्लिप्त नत मस्तक खड़े रहे। इन्द्र ने आग्रह करते हुए कहा :

"ऋषिवर आप त्यागमूर्ति हैं। यदि तपस्या अथवा सत्य विकास में मेरी सहायता वांच्छित हो, तो मैं उसे करने में, प्रसन्नता का अनुभव करूँगा।"

"सुरेश्वर!" ऋषि ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया। मैं कृतार्थ हुआ, आपका आग्रह है। क्या मैं अपनी वांच्छित इच्छा प्रकट कर सकता हूँ!"

"अवश्य।" इन्द्र ने हर्षित होकर कहा।

"मुझे किसी भौतिक सुख की कामना नहीं है। मुझे सांसारिक भोगों से विरक्ति हो चुकी है।"

"ऋषिवर! बिना आपके कहे, मैं जानता हूँ।"

ऋषि ने सादर प्रणाम किया।

"महात्मन्!" इन्द्र बोले, "आपकी इच्छा मैं पूर्ण करूँगा। कहिये क्या वर माँगते हैं!"

"मघवा मुझे मधु विद्या दीजिये।"

"मधु!" इन्द्र आश्चर्यचकित हुए।

"हाँ! सुरेश्वर!" दध्यञ्च ने निश्चयात्मक स्वर में उत्तर दिया।

"तपस्वी, यह दुर्लभ है।" इन्द्र की मुद्रा गम्भीर हो गयी।

"आपकी कृपा से सब कुछ सुलभ है।"

इन्द्र असमंजस में पड़ गये। मधु देना नहीं चाहते थे। किंचित् ठहर कर बोले, "मैं उसका रहस्य बता सकता हूँ। किन्तु एक शर्त होगी।"

"मुझे स्वीकार है।"

इन्द्र गगन मण्डल की ओर देखने लगे।

"क्या मैं शर्त जानने का अधिकारी हो सकता हूँ।" ऋषि ने इन्द्र के मुख-मण्डल पर दृष्टि स्थिर करते हुए पूछा।

"यदि आप इस रहस्य का उद्घाटन करेंगे तो आपका मस्तक छिन्न हो जायगा।"

इन्द्र ने हाथ में वज्र घुमाते हुए कहा।

"भगवन्!" ऋषि ने दृढ़तापूर्वक कहा, "मुझे आपकी शर्त स्वीकार है।

मैं उसका उल्लंघन नहीं करूँगा।"

इन्द्र ने दध्यञ्च ऋषि को मधु विद्या का उपदेश दिया। ऋषि उसे सहर्ष ग्रहण कर कृतार्थ हुए।

× × ×

त्रैलोक्य में मधु का रहस्य कोई नहीं जानता था। देवता, दानव, प्राणी सब मधु के आकांक्षी थे। बहुत दिनों से अनुसन्धान हो रहा था। अन्वेषण हो रहा था। इन्द्र विज्ञ थे। परन्तु वे मधु उद्‌घाटन निमित्त उद्यत नहीं थे।

अश्विनी कुमारों को बात मालूम हो गयी। दध्यञ्च ऋषि को इन्द्र ने मधु का रहस्य बता दिया है। इन्द्र तथा अश्विनी कुमारों में वैमनस्य था।

इन्द्र के कारण अश्विनी कुमार यज्ञों से वहिष्कृत कर दिए गये थे। अश्विनी कुमार यज्ञों में भाग नहीं ले सकते थे। वे बहुत दिनों से चिन्ता में थे। यदि उन्हें मधु रहस्य का पता चल जाय तो वे पुनः बली हो जायेंगे। उसके गुणों तथा शक्ति के कारण यज्ञों में भाग लेने का अधिकार प्राप्त हो जायगा। मधु के कारण सोमपान के अधिकारी होंगे। वे महर्षि दध्यञ्च के आश्रम की ओर चले।

× × ×

महर्षि तपस्या रत थे। अश्विनी कुमारों ने शनैः-शनैः आश्रम में प्रवेश किया। दोनों कुमारों को ऋषि ने देखा अविलम्ब पहचान गये। उठकर कुमारों का सादर अभिनन्दन किया। उनका पाद्य, अर्घ्य और मधुपर्क से सुस्वागत किया। कुशासन बैठने के लिये दिया। आश्वस्त होने पर ऋषि ने सादर प्रश्न किया :

"अश्विनी द्वौ ! आपके शुभागमन का प्रयोजन क्या मैं जानने का अधिकारी हो सकता हूँ ?"

"महात्मन् ! एक विशेष प्रयोजन से आपके आश्रम में आये हैं। हमारे प्रयोजन की सिद्धि आपके द्वारा होगी। यही हमारी एकान्त कामना है।"

"अश्विनौ !" ऋषि ने शान्त स्वर में कहा, "अतिथि की कामना पूर्ण करना मैं समझता हूँ, आतिथेय का कर्तव्य है।"

"निश्चय महात्मन् ! यही पुरकालीन परम्परा है।" अश्विनी कुमार प्रसन्नतापूर्वक बोले।

"आपके पास एक गुण है। उसके हम आकांक्षी हैं।"

"देवगण ! यदि मेरे पास है, तो मैं क्यों न आपको देकर, कृतज्ञ हूँगा ?"

"महात्मन् ! हम आपसे गुण दान चाहते हैं।"

"कौन दाता सामर्थ्य रहते दान नहीं करना चाहेगा ?" ऋषि ने किंचित् मुस्कराकर कहा ।

"आपके पास है ।"

"तो—दूँगा ।"

"महात्मन् ! मधु रहस्य उद्घाटन ।"

ऋषि सहसा हतप्रभ हो गये । कल्पना नहीं की थी कि अश्विनी कुमार इस रहस्य को जानते थे ।

"मधु—?" ऋषि ने उदासीन होते हुए कहा ।

"ऋषिवर ! इन्द्र ने आपको दिया है ।"

"आपको कैसे ज्ञात हुआ ?"

"याचक वहीं याचना करता है जहाँ याचकेय को देने की सामर्थ्य होती है ।"

"किन्तु—?"

"महर्षिवर ! हमारी यही कामना है ।"

"किन्तु—?"

"हम इसी कामना से आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं ।"

"किन्तु—?"

"महात्मन् ! आपके पास है । आपको हमारी याचना स्वीकार करनी चाहिए । आपने वचन दिया है ।"

"किन्तु…?"

"याचक को द्वार से लौटाना धर्म नहीं कहा गया है ।"

"किन्तु—?"

"दान धर्म से आप कैसे विरत होंगे ?"

"किन्तु—?"

"महात्मन् ! हम जानते हैं । इन्द्र ने आपसे वचन लिया है । उसका उल्लंघन करने पर आपका मस्तक छिन्न हो जायगा ।"

'हां, किन्तु—?"

"महात्मन् ! आपकी अकाल मृत्यु नहीं होगी । हम कुशल वैद्य हैं । कुशल शल्य चिकित्सक हैं ।"

"किन्तु—?"

"ऋषिवर ! इन्द्र आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे । आपकी कुछ हानि नहीं होगी ।"

"किन्तु—?"

"ऋषिवर ! हमने उपाय निकाल लिया है।"

ऋषि की चुभती निगाहें अश्विनी कुमारों की ओर उठीं।

"साधारण बात है। आपका मस्तक काट कर हम अलग रख देंगे। उसके स्थान पर अश्व का मस्तक लगा देंगे। अश्व के मस्तक द्वारा मधु रहस्य का उद्घाटन आप कीजियेगा। इन्द्र बज्र से आपका मस्तक काट देंगे। वह आपका अश्व मस्तक होगा। हम उसके स्थान पर आपका पुराना मानव मस्तक पूर्ववत पुनः लगा देंगे।"

ऋषि गम्भीर हो गये।

"महात्मन् ! इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं है। आपके वचन का उल्लंघन नहीं होगा। आपने जिस मस्तक से वचन दिया है। वह मस्तक वचन उल्लंघन का दोषी नहीं होगा। दोषी होगा अश्व मस्तक जिसे हम आपकी ग्रीवा पर, मानव मस्तक के स्थान पर जोड़ देंगे। अपराध अश्व का मस्तक करेगा। दण्ड उसे भोगना होगा। आपका मानव मस्तक अछूता रहेगा।"

ऋषि कुछ प्रसन्न हुए।

"एक और बात है। आपने हमारी याचना पूर्ति का वचन दिया है। इस प्रकार आपका वचन पूरा हो जायगा। आप वचन भंग के दोषी नहीं होंगे। और याचक का कार्य सम्पन्न होगा।"

"अश्विनी कुमारगण ! आपका प्रस्ताव मुझे स्वीकार है।"

महर्षि वचन पालन की युक्ति को सफल होते देखकर पुलकित हो गये।

× × ×

अश्विनी कुमारों ने महर्षि दध्यञ्च के सिर को छिन्न कर दिया। उस पर तुरन्त अश्व का सिर काटकर जोड़ा। दध्यञ्च प्रसन्न हो गये। उनकी चेतना मनुष्य जैसी थी। उसमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया था। वे हय ग्रीव तुल्य लगने लगे।

गुरु रूप कुशासन पर ऋषि बैठ गये। शिष्यवत् कुशासन पर उनके सम्मुख अश्विनी कुमार बैठे। दध्यञ्च ने मधु रहस्य अश्विनी कुमारों को उद्घाटित किया।

× × ×

मधु का रहस्य उद्घाटित होते ही, इन्द्र का क्रोध उग्र हो उठा। उन्हें

ऋषि के वचन उल्लंघन पर क्रोध आया। वे बज्र लेकर दौड़े। क्रूर बज्र को आते देखकर महर्षि ने चीत्कार किया।

"अश्विनी कुमारो! मेरा मस्तक छिन्न होना चाहता है।"

"महात्मन्! चिन्ता न कीजिये। हम तैयार हैं।"

बज्र प्रहार से ऋषि का अश्व मुख छिन्न हो गया। बहुत दूर पर्वत स्थित शर्पणावृत सरोवर में जाकर गिर गया। वह शर्णावत तीर्थ बन गया और प्राणहीन धड़ भूमि पर गिर पड़ा।

अश्विनी कुमारों ने अविलम्ब ऋषि के मानव धड़ पर, ऋषि का मानव मस्तक रखकर जोड़ दिया।

ऋषि पूर्ववत् आचरण करने लगे। बात करने लगे। शल्य चिकित्सक अश्विनी कुमारों के अद्‌भुत शल्य कौशल को देखकर जगत आश्चर्यचकित हो गया।

"महात्मन्!" अश्विनी कुमारों ने ऋषि को नमस्कार करते हुए कहा, "आपने और हमने अपने वचनों का पालन किया है। आप गौरव के पात्र हैं। हम अनुग्रहीत हुए।"

अश्विनी कुमारों ने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक ऋषि को प्रणाम किया। ऋषि उन्हें आश्रम की सीमा तक पहुँचाने आये। उन्हें विदा करते हुए, उनकी अंजलि को प्रफुल्लित पुष्पों से भर दिया।

× × ×

अश्विनी कुमार मधु की शक्ति के कारण यज्ञ में बैठे। उन्हें यज्ञ भाग मिलने लगा। उनकी प्रतिष्ठा देव समाज में बढ़ गयी। इन्द्र ने प्रतिहिंसा का आश्रय नहीं लिया।

और दूसरी ओर दध्यञ्च ऋषि कुशासन पर आश्रम में बैठे थे। उनकी दिव्य दृष्टि ज्योतिर्मय थी। उन्हें दिव्य मन्त्रों का दर्शन होने लगा। उनकी वाक् शक्ति जाग्रत हो गयी। शुद्ध कण्ठ से सस्वर वेद ऋचाएँ निकलने लगीं। वायु मण्डल, पवित्र वाणी से वेदमय हो गया। और जगत ने दर्शन किया एक सूक्त-द्रष्टा, याज्ञिक, अग्नि प्रज्वलनकर्त्ता। और उनका जहां मस्तक गिरा था, वह हो गया शर्णावत तीर्थ, अपनी इस चिरकथा की स्मृति सर्वदा जगत को दिलाता हुआ।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १ : ८० : १६
१ : ८४ : १३-१४
१ : ११६ : १२
१ : १७ : २२
१ : १३९ : ९
६ : १६ : ४

शतपथ ब्राह्मण : १४ : १ : १ : १८-२५
४ : १ : ५ : १८
६ : ४ : २ : ३
१४ : १ : १ : १ : ८, २६

ताण्ड्य ब्राह्मण : १२ : ८ : ६

गोपथ ब्राह्मण : १ : ५ : २१

वृहद्देवता : ३ : १८ : २७

नोट : आधुनिक सर्जरी अर्थात् शल्य-चिकित्सा बहुत विकसित मानी जाती है। वैदिक काल की सर्जरी कम विकसित नहीं थी।

अश्विनी कुमार शल्य तथा भैषज चिकित्सा के आचार्य माने जाते हैं। आधुनिक सर्जरी-ग्राफ्टिंग के ढंग पर प्राचीन काल में भी सर्जरी होती थी। दध्यञ्च के मस्तक को काटकर उसके स्थान पर अश्व का मस्तक अश्विनी कुमारो ने लगाया था। लगा मस्तक पूर्व कालिक मानव मस्तक तुल्य कार्य करने लगा। यही बात कहानी रूप में वेद में लिखी गयी है।

१. अश्विनी कुमार : द्विवचन में उल्लिखित देवताओं के चिकित्सक हैं। शक्तिशाली हैं। उनका विशेषण नासत्य है। नासिका से जन्म ग्रहण किया है। उन्हें दस्र अर्थात् विचित्र-कर्मा कहते हैं। विवस्वान उनके पिता तथा सरण्यू माता है। अश्विनी रूप सरण्यू की नासिका से जन्म लिया है। युगल भ्राता हैं। सर्वदा एक साथ रहते हैं। कुशल शल्य चिकित्सक हैं। चिर युवा हैं। इनके रथ में हंस, श्येन तथा गरुड़ जोते जाते हैं।

२. इन्द्र : वैदिक आर्यों के देवता हैं। इनका पराक्रम अभुद्त है। अन्तरिक्ष स्थानीय देवता हैं।

३. दध्यञ्च : अथर्वन के पुत्र हैं। अथर्वन ने वैदिक कर्म काण्ड के विकास में विशेष योग दान दिया है। इन्हें अथर्वण कहा गया है।

च्यवान — सुकन्या
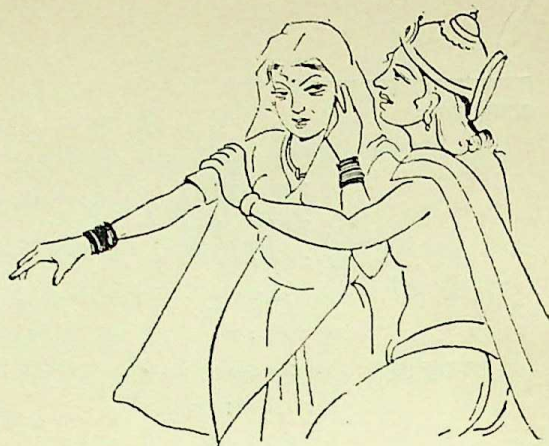
विचरणशील शर्यात मानव का अस्थायी शिविर धूमधाम से लगा। चहल-पहल थी। शर्यात अपने कुटुम्ब के साथ थे। उनकी पुत्री सुकन्या साथ थी। कुमारगण साथ थे। सभी कुछ साथ था, जो हो सकता था, जिसकी आवश्यकता थी।

शिविर स्थापित हो चुका था। कुमार खेलने लगे। खेलते-खेलते वे एक स्थान पर पहुँचे। कुमारों ने देखा। मृत्तिका से भरा मानव जीर्ण शरीर। उन्होंने उस वल्मीक को कौतूहल की सामग्री समझा। बाल जिज्ञासा जागृत हुई। वल्मीक पर क्रीड़ावश लोष्ट प्रहार करने लगे।

× × ×

विचित्र घटना घटी। राजा के गाँव में फूट पड़ गयी। अनायास लोग एक-दूसरे से झगड़ने लगे। पिता-पुत्र लड़ने लगे। भाई-भाई भिड़ गये। माता-कन्या में झड़प होने लगी। भाई-बहन परस्पर प्रहार करने लगे।

शर्यात विकल हो गये, देखकर यह अनहोनी। उन्होंने विचार किया। स्यात उनसे कुछ पाप हो गया था। उन्होंने कोई द्वेषपूर्ण कार्य कर दिया था। उनसे कुछ अपराध हो गया था। देव इस प्रकार अराजकता उत्पन्न कर उन्हें दण्ड दे रहे थे।

किन्तु शर्यात की समझ में कुछ नहीं आया। उन्हें अपना कोई अनुचित कर्म, अव्यावहारिक आचरण दिखाई नहीं दिया। किन अपराधों के कारण उन्हें महान् कष्टों का सामना करना पड़ रहा था। उनकी समझ नहीं आया। अस्तु उन्होंने अपने गोपालकादि को बुलाया। उनसे पूछा :

"अव्यवस्था फैली है। आप लोग देख रहे हैं!"

"हाँ ! कुछ विचित्र घटनाएँ अनायास घट रही हैं। सब लोग अस्थिर हो गये हैं। अनायास झगड़ा करने की इच्छा जागरूक हो जाती है।"

"आप लोगों ने समीप कुछ चीज देखी है ? किसी को कष्ट तो नहीं दिया गया है ?"

"स्पष्टतः कुछ मालूम नहीं होता।"

शर्यात चिन्तित हो गये। उनके साथ चिन्तनीय मुद्रा हो गयी गोपालकादि की। उनमें एक अकस्मात बोला :

"हाँ, स्मरण आया।"

सबकी दृष्टि उसकी ओर उठ गयी। उसने स्मरण करते हुए कहा :

"यहाँ एक जीर्ण-शीर्ण पुरुषाकार वल्मीक है। उसे कौतूहलवश कुमारों ने लोष्टों से आहत किया है। सम्भव है उस तपस्वी के क्रोध का यह सब परिणाम हो रहा हो।"

"निश्चय—।" शर्यात को जैसे एक सूत्र मिल गया। उन्होंने आदेश दिया, "रथ लाओ।"

रथ आया। राजा ने अपनी कन्या सुकन्या को साथ लिया। रथारूढ़ हुए। ऋषि के पास पहुँचे।

× × ×

"नमस्ते ! महात्मन् !" राजा ने करबद्ध वेदवेदांगों से निष्णात तपस्यारत ऋषि च्यवान को नमन करते हुए कहा।

च्यवान ऋषि की जीर्ण काया में चेतना ने प्रवेश किया। मृत्तिका स्वरूप शरीर किंचित् कम्पित हुआ।

"भगवन् ! इस अकिंचन का नाम शर्यात है। मेरा समीप ही शिविर लगा है।"

ऋषि की आँखें खुलीं। उनका शरीर कुमारों के लोष्ट प्रहार से आहत हो गया था। ऋषि ने शर्यात का विनय देखा। उनका क्रोध शान्त होने लगा। शर्यात ने अपनी कन्या सुकन्या को उनके सम्मुख करते हुए कहा :

"ऋषिवर यह मेरी सुकन्या नाम्नी कन्या है।"

सुकन्या ने ऋषि के चरणों का स्पर्श किया। शुष्क जीर्ण काया का युवती काया ने स्पर्श किया। समय शरीर में कितना अन्तर उपस्थित कर देता है, स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था। ऋषि की दृष्टि सुकन्या पर पड़ी। वे प्रसन्न हुए।

"मुनिवर ! आपको कुमारों ने कष्ट पहुँचाया है। हम उसके लिए क्षमा-

प्रार्थी हैं।" राजा ने करबद्ध निवेदन किया।

ऋषि ने अपने आहत शरीर की तरफ एक बार देखा। शर्यात ने निवेदन किया :

"महात्मन् ! इस कन्या को आप स्वीकार कीजिये। इसी में मैं अपने पाप का प्राश्चित देखता हूँ। यह आपकी सेवा करेगी।"

शील भार से सुकन्या का मस्तक नत हो गया। ऋषि की बुझी आँखों ने ज्योतिर्मय युवती के निर्मल नयनों को देखा। ऋषि विचार करने लगे। शर्यात ने कहा :

"भगवन् ! गोत्रों के परस्पर द्वन्द्व तथा व्याप्त अराजकता को कृपया बन्द कीजिए।"

ऋषि का अभय मुद्रा में हाथ उठ गया। शर्यात प्रसन्न हो गये। सुकन्या से बोले :

"पुत्री ! च्यवान तुम्हारे पतिदेव हैं। उनकी सेवा में तुम्हारे जन्म की सार्थकता है। शिविर में शान्ति हो जायेगी। रक्तपात से लोग बच जायेंगे।"

सुकन्या ने पतिदेव के चरणों का पत्नीवत् स्पर्श किया।

× × ×

"ओ सुन्दरी !"

अश्विनी कुमारों ने सुकन्या को आश्रम में एकाकी विचरण करते हुए देखा। सुकन्या ने अपने सम्मुख दो अत्यन्त सर्वांगीण सुन्दर युवक कुमारों को देखा। सुकन्या ने उनकी तरफ ध्यान नहीं दिया। उसके नेत्रों में उपेक्षा झलक रही थी।

"तन्वी !" अश्विनी ने कहा, "तुम्हारा यह अनुपम रूप, यह युवावस्था, यह रति को भी मात देने वाली काया। नेत्रों में छलकती काम मादकता—।"

"आप व्यर्थ क्या बोलते हैं।" सुकन्या ने क्रोधपूर्वक कहा।

"व्यर्थ नहीं—तुम्हारी यह युवावस्था, व्यर्थ सूखती जा रही है। दैव कितना निर्दयी है। उसने तुम्हारा विवाह एक महा वृद्ध, जीर्ण-शीर्ण, मृतवत् काया से कर दिया है।"

"वे मेरे देवता हैं—।"

सुकन्या ने कुटी की तरफ देखते हुए कहा। अश्विनी कुमारों ने मैथुन लालसा से पुनः कहा :

"युवे ! पुनः विचार कर—।"

"नहीं। आप प्रस्थान कीजिए। इसी में कल्याण है।"

"तुम्हारे पिता कितने निर्दयी थे । उन्हें इस वृद्ध के गले तुम्हें मढ़ते लज्जा नहीं मालूम हुई । तुम्हारी युवावस्था पर दया नहीं आई ।"

"कुमारो ! जब तक वे जीवित हैं, मेरे पति हैं । मैं उनका त्याग कैसे कर सकती हूं । आप लोग जाइये ।"

"ललितांगी ! काम याचना अस्वीकार न करो।" अश्विनी सुकन्या की ओर बढ़ते हुए बोले ।

सुकन्या अपनी कुटी की ओर जाती हुई बोली—

"व्यर्थ समय नष्ट क्यों करते हैं । कृपया प्रस्थान कीजिए ।"

× × ×

"सुकन्ये ! कुमारों ने तुमसे क्या बातें कही हैं ।" सुकन्या को समीप आते देखकर ऋषि च्यवान ने पूछा ।

"दूषित विचार हैं । उन्हें सुनकर क्या कीजिएगा ?" सुकन्या ने विषाद-पूर्वक कहा ।

"वे पुनः आयेंगे ?" ऋषि ने कहा ।

"कौन जाने ?"

"मैंने सब बातों को जान लिया है सुकन्या !"

सुकन्या ने कोई उत्तर नहीं दिया । वह दुःखी थी ।

"यदि वे पुनः आवें तो उनसे कहो—।"

"क्या ?"

"वे समृद्ध नहीं हैं । पूर्ण नहीं हैं ।"

"कहूंगी ।"

"—और यदि वे पूछें, वे किस प्रकार असमृद्ध हैं अपूर्ण हैं, तो क्या उत्तर दोगी ?"

"आप बताइये ।"

"उनसे कहना—प्रथम आप लोग मेरे पति को युवा बना दीजिए। तत्पश्चात् आपको कारण बताऊँगी ।"

सुकन्या ने शंकित दृष्टि से ऋषि की ओर देखा । ऋषि ने मुसकुराते हुए कहा :

"सुकन्ये ! मैं जैसा कहता हूँ करो । इसमें दोष नहीं है । वे तुम्हारा कुछ अनुपकार नहीं कर सकेंगे ।"

× × ×

"सुन्दरी !" अश्विनी कुमारों ने आश्रम में पुष्प चयन करती सुकन्या को देखकर सम्बोधित किया।

सुकन्या ने उपेक्षापूर्वक उनकी ओर देखा। पुष्प चयन करती रही। "युवे ! हमारी बात सुनो। यह युवावस्था इस प्रकार जीर्णशीर्ण व्यक्ति के साथ सुखाने की नहीं है।"

"आपसे क्या बातें करूँ ? आप समृद्ध नहीं हैं। आप अपूर्ण हैं।"

"हम ?" वे चकित हुए।

"हाँ।"

"किस प्रकार—?"

"यह बात कहने की नहीं है।"

"हम अश्विनी कुमार हैं। देवता हैं।"

"तथापि आप असमृद्ध हैं। अपूर्ण हैं। आपके साथ कौन रहेगा ?"

"सुहासिनी ! हम पर यह लांछन लगाने का आधार क्या है ?"

"बताऊँगी—।"

"कब—?"

"प्रथम मेरे पति को युवा बनाइये।"

"यह कौन असाधारण बात है ?"

"तो कीजिए—।"

"सुनो ! तुम अपने वृद्ध पति को समीपस्थ ह्रद में ले जाओ। उसमें डुबकी लगवाओ। जितने वर्ष के युवा वे होना चाहेंगे, उनका उतना ही रूप तथा वय हो जायगा।"

सुकन्या प्रसन्न हो गई।

× × ×

"ऋषिवर !"

"कहो क्या हुआ।"

"उन्होंने कहा है, आप उस ह्रद में डुबकी लगाइये। जल में जिस वय को आप प्राप्त करना चाहेंगे, वही वय तथा रूप आपको प्राप्त हो जाएगा।"

"जराक्रांत ऋषि आंगिरस च्यवान प्रसन्न हो गये। पत्नी का सहारा लेकर वे ह्रद में स्नान करने चले।

× × ×

"सुकन्ये ! तुम्हारे पति युवा हो गये । उनका कायाकल्प हो गया । उन्हें सौन्दर्य मिल गया । यौवन मिल गया युवती ! हमारी कामना पूर्ण करो ।"

"अश्विनी कुमारो ! आपकी कृपा से पति युवा हो गये। हम आपकी पूजा करते हैं । किन्तु आपका प्रस्ताव मैं कैसे स्वीकार कर सकती हूँ ?"

"तुम्हारे भृगु गोत्रीय पति इस योग्य हो गये हैं । कोई युवती उन्हें स्वीकार कर सकती है ।"

"आप असमृद्ध हैं । अपूर्ण हैं ।"

"यह तो तुमने पहले कहा था । हमने वचन का पालन किया है । पुराने रथ की मरम्मत कर उसे नया रूप दे दिया जाता है, क्या हमने तुम्हारे पति के साथ यही नहीं किया है ?"

"हाँ—अपूर्ण, असमृद्ध के साथ कौन सहवास करेगा ।" सुकन्या ने व्यंग्य किया ।

"तुम्हारे पति को जरावस्था आहत किये थी । शरीर के कवच के समान हमने उसे हटा दिया है । बन्धुओं द्वारा परित्यक्त ऋषि की आयु वृद्धि कर दी है । उन्हें सुयोग्य पति बना दिया है । तुम्हारा अब यह परिहास ?"

अश्विनी जैसे हारे व्यक्ति की तरह लज्जित होकर बोले ।

"नहीं । अश्विन—नहीं ।"

"तुम्हारे पति को शक्ति दी है । उन्हें पत्नियों के लिए स्वीकार्य योग्य बनाया है ।"

"आप लोग अपूर्ण हैं । आपसे कौन सम्बन्ध स्थापित करेगा ?" सुकन्या ने प्रगल्भ स्वर में कहा ।

"तुमने कहा था । कारण बताओगी ।"

"क्यों नहीं बताऊँगी ?"

सुकन्या ने उनकी ओर मुसकराते हुए देखकर उत्तर दिया ।

"कहो—!" अश्विनी कुमारों ने कारण जानने की उत्सुक मुद्रा से पूछा ।

"कुरुक्षेत्र में यज्ञ हो रहा है । देवता कर रहे हैं । उन्होंने यज्ञ से आपको वहिष्कृत कर दिया है । अतएव आप पूर्ण देवता नहीं हैं । आप स्वयं असमृद्ध हैं । अपूर्ण हैं ।"

"—ओह !" अश्विनी कुमार चिंतित हुए ।

सुकन्या उनके लज्जित मुख की ओर देखकर परिहासवश हँसने लगी । अश्विनी कुमार हताश हो गये । वहाँ से लज्जित प्रस्थान किया ।

× × ×

कुरुक्षेत्र में देवता यज्ञ कर रहे थे। अश्विनी कुमार वहाँ पहुँचे। उन्होंने देखा। उनके लिए वहाँ स्थान निश्चित नहीं था। वे वहिष्कृत थे।

वहिष्यवमान उच्चारण हो रहा था। वायुमण्डल पवित्र था। दिव्य यज्ञ ज्योति से स्थान ज्योतिर्मय था। अश्विनी कुमारों ने पूछा :

"यज्ञ में हमारा स्थान क्यों नहीं है ?"

"आप मनुष्यों में विचरण करते हैं। उनसे मिलते हैं।"

"हम आमन्त्रित क्यों नहीं किये गये ?"

"आप लोग मानवों में मिलकर घूमते हैं। उनके साथ रहते हैं। उनमे प्रायश्चित करते हैं।"

"किन्तु आपका यज्ञ पूर्ण नहीं होगा।"

"क्यों ?"

"विशीर्ण बलि से आप यज्ञ करते हैं। यह कैसे पूर्ण हो सकता है ?"

"तो—?"

"हम विशीर्ण को ठीक कर देंगे।"

"यह किस प्रकार होगा ?"

"हमें आमन्त्रित कीजिये।"

देवताओं ने विचार-विमर्श किया। वे बोले :

"विशीर्णता दूर हो जायगी ?"

"अवश्य—।"

अश्विनी कुमार अध्वर्यु बन गये। बलि की विशीर्णता दूर हुई। वेदोच्चार होने लगा। यज्ञ पूर्ण हुआ और उनको भी पूर्णता प्राप्त हुई। उन्हें यज्ञ में भाग मिला।

—और आश्रम में तरुण मन्त्र-द्रष्टा च्यवान, युवती सुकन्या की प्रसन्नता में प्रसन्न हो रहे थे।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १ : ११२ : ६-१०
१ : ११६ : १०
१ : ११७ : १३
१ : ११८ : ६
५ : ७४ : ५
७ : ६८ : ६
७ : ७१ : ५

८ : २१ : ४
१० : १७
१० : ३९ : ४
१० : ६१ : १-३
१० : १२७ : १३

शतपथ ब्राह्मण : ४ : १ : ५ : १३

ताण्डं ब्राह्मण : १६ : ६ : ११

पंचविंशत ब्राह्मण : ११ : ८ ११
१३ : ५ : १२
१४ : ६ : १०
१० : ३ : ६

गोपथ ब्राह्मण : १ : १ : १४

एतरेय ब्राह्मण : ८ : २१ : ४

बृहद्देवता : अन्तर्जातीय विवाह का सूत्र इस कथानक में मिलता है। विवाह एक वर्ग तथा एक जाति तक सीमित नहीं था। वह आर्य मात्र में हो सकता था। राजा अपनी कन्या सहर्ष ऋषि को दान कर देता है। वह प्रजा की आपत्ति निवारणार्थ कन्या का मोह तथा उसके भौतिक ऐश्वर्य के भविष्य की भी चिन्ता नहीं करता।

नोट : कायाकल्प का निदर्शन इस कहानी में किया गया है। अश्विनी कुमार कुशल चिकित्सक थे। उन्होंने ऋषि च्यवान की जीर्णता को भैषज उपचार से दूर किया था। किन्तु किस प्रकार का उपचार किया गया था, इस पर ऋग्वेद मौन है। कालान्तर में 'च्यवन प्राश' आदि औषधियाँ इस उपचार के रूप में निकल आईं।

[इस गाथा में व्यंग्य तथा परिहास भी है। वह वैदिक युग के सामाजिक रूप का एक चित्र उपस्थित करता है। वैदिक प्राणी हम लोग जैसे मानव थे। अर्थ तथा काम उनके जीवन के अंग थे। वे अप्राकृतिक नहीं, प्राकृतिक प्राणी थे।]

१. कुरुक्षेत्र : पवित्र देश है। इसके सीमान्तर्गत दृशद्वती, सरस्वती और आप्या नदियां प्रवाहित थीं। शर्यणावत्त नामक सर इसके अन्तर्गत था। पिशल के अनुसार पस्त्या नामक नदी भी इस क्षेत्र में प्रवाहित थी। आरण्यक के अनुसार कुरुक्षेत्र की सीमा उत्तर में, 'तूघ्न,' दक्षिण में, खाण्डव,' तथा पश्चिम में 'परीणह, थी। आधुनिक सर हिन्द क्षेत्र की यही सीमा है।

[शतपथ ब्राह्मण तथा जाबालोपनिषद के अनुसार यह देवताओं की यज्ञ भूमि थी। महाभारत काल में इसे समंत पंचक तथा उत्तर वेदी नाम से अभिहित किया गया है। ब्रह्मा की यज्ञवेदी के रूप से भी वर्णन मिलता है। गीता ने इसे धर्म-क्षेत्र कहा है।]

२. गोपाल : ऋग्वेद काल में यह शब्द बहुत प्रचलित था। रक्षक के अर्थ में भी इसका प्रयोग किया गया है।

३. च्यवान : आजकल का प्रचलित शब्द च्यवन ऋग्वेद में च्यवान रूप में मिलता है। च्यवान को पक्थो (परन्तन) के राजा तूर्वयाण का विरोधी बताया गया हैं। वह एक ऋषि थे।

भृगु ऋषि के पुत्र थे अतएव इन्हें भार्गव भी कहा गया है। इनकी माता का नाम पुलोमा था। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्हें दाधीच नाम की संज्ञा दी गई है।

४. शर्यात : मनुवंशीय शर्यात ऋषि च्यवान के श्वसुर तथा सुकन्या के पिता थे। अश्विनों के कृपापात्र थे। वह विख्यात यज्ञकर्ता राजा थे। वैदिक सूक्तद्रष्टा थे। इन्द्र इनके निवास-स्थान पर सोम पीने आते थे। च्यवान ऋषि को ऋत्विज बनाकर अश्वमेध यज्ञ किया था। देव यज्ञ में इन्हें गृहपतित्व का महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ था।

५. सुकन्या : शर्यात की कन्या होने के कारण इसे शर्यात सुकन्या भी कहा जाता है। वह च्यवान की भार्या थी।
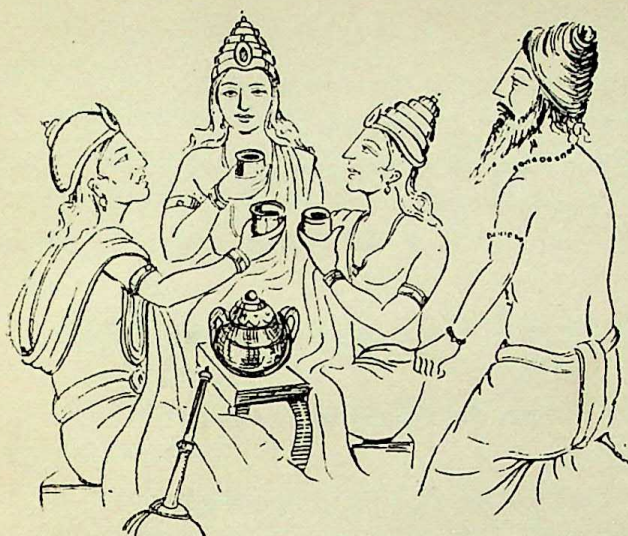
ऋभुगण

अंगिरस के पुत्र सुधन्वन थे। सुधन्वन के तीन पुत्र ऋभुगण, विम्बन और वाज हुए। तीनों पुत्र त्वष्टा के शिष्य थे। वे कुशल शिल्पी थे।

त्वष्टा ने उन समस्त बातों की शिक्षा तीनों शिष्यों को दी, जिसमें वे स्वयं पारंगत थे।

उनकी कला निर्माण तक ही सीमित नहीं थी। उन्होंने धेनु भी बनायी। वह अमृत तुल्य मधुर दूध देती थी। सत्याशय, सरल और स्नेही ऋभुओं ने जराजीर्ण अशक्त माता-पिता को अपनी कला से युवा बना दिया था।

त्वष्टा ने चमस पात्र बनाया था। अपने गुरु त्वष्टा से भी वे शिष्य कला में प्रवीण हो गये। उन्होंने एक के स्थान पर चार चमस पात्र बना दिये। वे अपनी कला, हस्त कौशल तथा कर्म से स्तुति प्राप्त करने लगे। वे देवताओं के मध्य भी विचरने लगे। वे मानव थे, तथापि उन्हें यज्ञ-भाग भी मिलने लगा।

ऋभुओं की कार्य-कुशलता से सूर्य प्रसन्न हो गये। मरणधर्मा होने पर भी उन्हें अमरत्व प्रदान किया। ऋभुओं ने निरन्तर परिश्रम तथा शुभ कर्मों द्वारा अमरत्व प्राप्त किया।

देवताओं का दूत बनकर अग्निश का आगमन हुआ। उन्होंने ऋभुओं के काष्ठकर्म की प्रशंसा की। ऋभुओं ने अग्नि को प्रणाम किया।

अग्नि बोले, "ऋभुगण! मैं देवताओं के कार्य से आपके पास आया हूं।"

"ऋषिवर! आज्ञा?" ऋभुओं ने नम्रतापूर्वक कहा।

"त्वष्टा ने एक चमस बनाया है।"

"ज्ञात है महात्मन्!"

"एक चमस को चार भागों में विभक्त कर दीजिये।"

"इससे लाभ ?" ऋभुओं ने साश्चर्य कहा।

"देवताओं के तुल्य आप यज्ञ का भाग प्राप्त करेंगे।"

"ऋभुगण विचार करने लगे।"

× × ×

"महात्मन् ! एक चमस से हम दो बना देंगे।" बड़े ऋभु ने कहा।

"नहीं—चार बनाओ।"

"महात्मन् ! तीन बना दूँगा।" दूसरे ऋभु ने कहा।

"नहीं—चार बना दो।"

"महात्मन् ! हम चार बना देंगे।" तीसरे ऋभु ने कहा।

अग्नि प्रसन्न हो गये। बोले, "तुम्हारे गुरु त्वष्टा ने चमस को चार बनाने की योजना को स्वीकार लिया है।"

ऋभुगण हर्षित हो गये। उन्होंने चार चमस बनाकर दिये। अग्नि को नमस्कार करते हुए बोले, "चित्र स्वरूप अग्नि ! और कोई सेवा ?"

"ऋभुओं !" अग्नि ने कहा, "आप हस्त व्यापार कुशल हैं। अमरत्व प्राप्ति के मार्ग पर गमन कीजिए।"

प्रसन्न मुद्रा अग्नि ने प्रस्थान किया। ऋभुओं को यज्ञ में भाग मिलने लगा। त्वष्टा चमसों को देखकर प्रसन्न हुए। उन्होंने उनको ग्रहण किया।

ऋभु, विम्बन, वाज पूर्वकाल में मनुष्य थे। उन्होंने अपने कर्म से यज्ञ भाग प्राप्त किया, देवत्व प्राप्त किया। देवताओं के साथ उन्होंने पुष्टि प्राप्त की और सोम पान का अधिकार प्राप्त किया।

उनके लिए स्तोत्र की रचना हुई। उनकी स्तुति हुई। उनके निमित्त यज्ञ किये जाने लगे। सोम उनकी सेवा में उपस्थित होने लगे।

ऋभुओं ने अश्विनीकुमारों के लिए तीन आसनों का दिव्य रथ निर्माण किया। इन्द्र के लिए दो अश्वों से चलने वाले शीघ्रगामी रथ को बनाया। गऊ तथा अश्व बनाए। देवताओं के निमित्त अभेद्य कवच बनाया। आकाश एवं पृथ्वी को पृथक् किया। सुन्दर सन्तान उत्पन्न होने वाले कार्यों का सम्पादन किया। वे प्रथम सोमपान करने वाले हुए। वे तीसरे सवन में स्वधा के अधिकारी हुए।

ऋभुओं ने सुन्दर पहिया बनाया। उत्तम पहियों वाला रथ बनाया। विश्व को प्रेरणा देने वाली अनेक प्रकार की गौवों को बनाया।

इन्द्र ने उन्हें वर दिया। ऋभुओं ने अश्व, रथ आदि निर्माण कार्य करना स्वीकार किया।

कनिष्ठ ऋभु वाज देवताओं से, मध्यम ऋभु वरुण से तथा जेष्ठ ऋभु इन्द्र से सम्बन्धित हुए। इन्द्र के सखा हुए। इन्द्र के साथ सोमपान करने लगे। वे अरुण तथा मरुद्गण के साथ सोमपान करने लगे। वे देवांगनाओं के साथ सोमपान करने लगे। उपासनीय देवों के साथ मरणधर्मा होकर भी मिल गये।

ऋभुओं ने अश्विनीकुमार के लिए तीन पहियों का एक देदीप्यमान रथ बनाया। वह बिना अश्व के अन्तरिक्ष में विचरण करता था। वह रथ उनके देवत्व का साक्ष्य था। उन्होंने रथ को गो-चर्म से ढका। अतएव देवताओं में अविनाशी पद प्राप्त किया।

वे देवताओं के श्रेष्ठ भागों में से यज्ञों में आने लगे। उनका प्रथम सवन में अनुष्ठान होने लगा। उन्होंने विश्व देवों के लिए वाहनों तथा आयुधों का निर्माण किया। तृतीय सवन में विश्व देवों के साथ इनके भाग का भी निर्धारण किया जाने लगा।

अपनी कर्तव्यनिष्ठा के कारण वे देवता हुए। उन्होंने मानव के लिए देवत्व प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। मानव देव हो सकता है, यह आशा मानवों में उत्पन्न की। मानव देवताओं की पूजा करते हैं, परन्तु अपने कर्म से स्वयं पूजित हो सकते हैं।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १ : २०
१ : १६१ : १-४:३३:१
४ : ३४ : १-४-४ : ३६ : २,६,

ऐतरेय ब्राह्मण : ३ : ३०

बृहद्देवता : ३ : ८३-८८

नोट : इस कथानक द्वारा मनुष्य द्वारा अपने कर्म से देवत्व तथा यज्ञ में देवता तुल्य भाग प्राप्त करने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। जाति बड़ी नहीं, किन्तु कर्म बड़ा माना गया है। कर्म से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। कर्म से ऋभुगणों को इन्द्रतथा सूर्य के साथ सोमपान करने का अधिकार देवताओं के शिल्पी होने पर भी प्राप्त हो गया। उन्हें आहूत किया जाने लगा। कोई शिल्पी (बढ़ई) होने से ऊँच या नीच नहीं होता। कर्म मनुष्य को ऊँच-नीच बनाता है। इस कथा में जन्मना वर्ण के स्थान पर कर्मणा वर्ण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

१. अंगिरस—ऐतिहासिक व्यक्ति मानने में विद्वानों ने शंका प्रकट की है। अंगिरस शब्द बृहस्पति आदि के लिए भी प्रयुक्त किया गया है। वह एक परिवार के लिये भी आया है। उन्हें अग्नि का पुत्र भी कहा गया है।

२. चमस—पान-पात्र का अर्थ है। यज्ञिय सोम को धारण करने वाला पात्र चमस कहा गया है। वह लकड़ी का बनाया जाता था। अतएव इसे 'द्र' भी कहते हैं। उदुम्बर (गूलर) की लकड़ी इसके बनाने में विशेषतया प्रयुक्त होती थी।

३. त्वष्टा—देव शिल्पी हैं। इन्हें बढ़ई के अर्थ में प्रयुक्त किया गया। प्रचलित शब्द विश्वकर्मा के कर्मों का बोधक यह शब्द हो सकता है।

४ ऋभु—सुधन्वन के वंशज, तथा शवस के नपात् कर्मशील व्यक्ति हैं। अपनी कर्मशीलता से मानव होने पर भी देवत्व तथा सोमपान के अधिकारी हुए। ऋभुगण उनमें श्रेष्ठ था। वाज तथा विम्बन विशेष ऋभु हैं। ऋभु शब्द 'रम्' धातु से बना है। इसका अर्थ 'हस्त कुशल' किंवा निपुण' है।

५. विश्वदेव—सभी देवों को जहाँ एक साथ उद्दिष्ट करने की आवश्यकता समझी गयी है, वहाँ उन्हें 'विश्वदेवा' नाम से अभिहित किया गया हैं। इसका तात्पर्य देव समूह से लगाना चाहिए। काल्पनिक पसीप देवता समूह है।

६. सवन—सोमरस निचोड़ कर निकालने का अर्थ सवन था। कालन्तर में वह शब्द सोम की आहुति निमित्त प्रयोग होने लगा। प्रातः सवन, मध्य दिवस सवन और सायं सवन, तीन बार दिन में दिया जाता था। तत्पश्चात् वह हविविशेष का वाचक हो गया।

७. सुधन्वन—अंगिरस के वंशज थे।

८. स्वधा—पितरों के लिए दी जाने वाली हवि देते समय उच्चारण करने वाले शब्दों के अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ 'धारक शक्ति' भी होता है।

त्रिपद-व्यापन

विष्णु ने सप्ताधामीय पृथ्वी का पाद-क्रमरण किया। विष्णु ने तीन पद रखकर पृथ्वी का विक्रमरण किया। उनकी पवित्र पद-रेणु में समस्त विश्व समा गया। सर्वरक्षक अक्षत् विष्णु ने धर्म धारण निमित्त तीन पद रखे।

विष्णु के पराक्रम द्वारा उपासकों ने पवित्र व्रतों को पूर्ण किया है। विष्णु इन्द्र के योग्य सखा हैं। मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, बृहस्पति तथा विस्तृत पद रखने वाले विष्णु जगत के लिए सुखदायक हैं। विष्णु के वीर्य का प्रत्यक्ष वर्णन उनके लोकों की रचना है। उन्होंने आकाश को स्थिर किया है। उन्होंने तीन पद से लोकों को आवृत्त किया है।

पर्वत पर निवास करने वाले भयंकर क्षुधार्थ जंगली जन्तुओं के समान विष्णु के वीर्य का जगत गुणगान करता है। उन्होंने तीन पदों से विश्व का व्यापन किया है। जिस विष्णु ने एकाकी तीन पद से तीनों लोकों का व्यापन किया है, उस विष्णु की जगत स्तुति करता है।

विष्णु के प्रिय पथ का अनुकरण करने में धर्मभीरू मनुष्य प्रसन्नता का बोध करते हैं। विशाल पद पथ के आश्रय में शाश्वत आनन्द की प्राप्ति होती है। उसका आश्रय जगत चाहता है।

असुरों ने जब जगत को त्रसित किया तो अपने त्रिपाद से विष्णु ने अत्यन्त सुप्रभ भूमण्डल को मनु के लिए व्यापन कर लिया।

आधार ग्रंथ :

ऋग्वेद : १ : २२ : १७-१८, १ : १५४, १ : ९०, १ : १४५, ६ : ४९, ६ : ६९, ७ : १००, ७ : ९९

शतपथ ब्राह्मण : २ : २ : १-५, १ : २ : ५ : ४, १३ : २ : २ : ६

तैतरीय ब्राह्मण : १ : २ : ५ : १,

तैतरीय संहिता : २ : ४ : १२ : २, २ : १ : ३

नोट : विष्णु ने पृथ्वी, द्युलोक तथा अन्तरिक्ष का तीन पदों द्वारा व्यापन कर लिया। यह कल्पना वामन अवतार के रूप में पुराणादि में प्रचलित हुई। यही वामन अवतार की कल्पना का

उद्गम है। विष्णु को वेद में सूर्य का एक रूप माना गया है। सूर्य, पृथ्वी, आकाश एवं अन्तरिक्ष को प्रतिदिन व्यापन करता है। यही मूल स्रोत विष्णु के पदों से तीनों लोकों के नापने में निहित कर उसे वामन अवतार का रूप दिया गया है। उक्त तीनों क्षेत्र सूर्य किंवा विष्णु के पादों के रूप में ज्योतिर्मय होते हैं। तीनों लोकों को तीन पदों से व्यापन की कल्पना की गयी है।

त्रित

"यह क्या ? यह क्या करते हो !"

त्रित ने शोर किया। वह गौओं के साथ गोष्ट की ओर जा रहा था। साला वृकी के निर्दय पुत्रों ने त्रित पर आक्रमण किया।

"मनुष्यो ! यह क्रूरता क्यों···?"

अपनी रक्षा का प्रयास त्रित करने लगा। उसने गुहार किया। स्थान निर्जन था। उसकी वाणी गूँजकर रह गयी। उसकी रक्षा-निमित्त किसी दिशा से कोई सहायता प्राप्त नहीं हुई।

"साला वृकों ! गायों को न मारो।"

साला वृक भागती गायों को मारकर एकत्रित कर रहे थे। वे उन्हें अपने साथ ले जाने का प्रयास करने लगे। गायें आगे बढ़तीं। पुनः त्रित के पास लौट आतीं।

साला वृक के पुत्रों ने गायों को निर्दयतापूर्वक पीटना आरम्भ किया। भय से गायें काँपने लगीं। वे भागना चाहती थीं। किन्तु चारों ओर से घिर गयी थीं। वे पूँछें उठाये घिरे वृत्त में कूदने लगीं। गायों के खुर से धूल राशि उठने लगी। स्थान धूमिल हो गया।

कोलाहल में शान्त सरल स्वभाव त्रित की समझ में कुछ नहीं आया। क्या करे ? गायों पर पड़ते प्रहारों को देखकर व्याकुल हो गया। उन पर पड़ता एक-एक प्रहार जैसे उसके शरीर पर पड़ रहा था। वह शाला वृकों से करबद्ध विनती करने लगा।

"इन गायों को क्यों मारते हो। इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?"

किन्तु क्रूर आततायी ने त्रित की करुण पुकार पर ध्यान नहीं दिया। वह जलते तवे तुल्य उनके क्रोध में छनछनाकर भस्म होती, जल-बूँदों की तरह पड़ गयी। त्रित गायों के पास दौड़-दौड़कर आता। उनके शरीर पर प्रहारों द्वारा पड़े नील साटनों पर हाथ से रोता सहलाता। गायें त्रित की ओर करुण नेत्रों से देखती। पुन: उन पर प्रहार होता। वे भागतीं। लौटकर त्रित को घेर कर खड़ी हो जातीं।

"गायें इसे नहीं छोड़ेंगी।" आतताइयों ने क्रुद्ध स्वर में कहा।

"इसे गायों से अलग करो।" कर्कश वाणी गूँजी।

"अलग कर दो।" उत्तेजित स्वर गूँजा।

क्रूर, लोभी, आततायी, साला वृकी के दुष्ट पुत्रों ने त्रित को बलपूर्वक पकड़ लिया। गायें अपने रक्षक, अपने आशा सूत्र को अपने से दूर विवश होते देखकर हताश हो गयीं। वे एक बार पुन: उछलीं। उन पर प्रहार पड़ा। वे यत्र-तत्र भागने लगीं। उन्हें साला वृकी के पुत्रों ने बलपूर्वक हाँककर एकत्रित कर लिया।

त्रित ने स्वयं उनके पाश से छूटने का प्रयास नहीं किया। वह अकेला था। आततइयों की संख्या बहुत थी। अविचल, आततइयों के बन्धन में खड़ा था। गायों पर होते क्रूर प्रहारों को देखा। रोने लगा। अविरल अश्रुधार वह निकली। अपने स्वामी को असहाय बन्धन में गायों ने देखा। वे विकल हो गयीं। त्रित उनकी रक्षा करने में असमर्थ था। गायों ने अनुभव किया। उसमें प्रतिरोध की भावना का अवसान होने लगा।

आततइयों ने गायों को काबू में करने का सरल उपाय निकाल लिया। त्रित को गायों की आँखों से ओझल कर दिया। गायें अविभावक विहीन हो गयीं। अपने पूर्व अविभावक से रक्षा की आशा उन्हें त्यागनी पड़ी। अनायास नवीन अभिभावकों की शरण में हताश गायें आने लगीं।

आततायी इधर-उधर देखने लगे। त्रित को छिपाने का स्थान खोजने लगे। कोई उपयुक्त स्थान नहीं मिला। मानव का आवास कहीं समीप नहीं था। त्रित को बन्दी करने का स्थान उन्हें नहीं मिल सका। वे अपनी विवशता पर झुँझलाये।

उन्हें तृणाच्छादित एक पुराना कूप दिखायी दिया। पाप के उत्साह, क्रूरता की प्रेरणा से वे प्रसन्न हो गये। त्रित को उठाकर उन्होंने कूप में डाल दिया।

गायों को लेकर वे हाँकते चले। गायों के खुरों से उठती धूल-राशि त्रित

के कूप पर से उड़ती जाने लगी। उसकी क्षीणता लुप्त हुई। त्रित ने समझ लिया। गायों को पूर्णतया अपहृत कर लिया गया। आततायी चले गये।

× × ×

कूप जलहीन था। सूखा था। घास-फूस से ढँका था। ईंटों से बँधा था। उसके जल का प्रयोग नहीं होता था। बहुत दिनों से बन्द हो गया था। उसकी मरम्मत किसी ने करवाने का प्रयास नहीं किया। उसकी दीवार की ईंटों की दरारों से छोटे-छोटे पादप निकल आये थे। सूर्य की किरणें घास-फूस और पादपों के कारण कूप-तल तक नहीं पहुँच पाती थीं। यह भी आशा नहीं थी कि कोई इधर भूला-भटका आ जायगा। पूर्ण शक्ति से चिल्लाने पर भी कोई बाहर से उसकी आवाज सुन लेगा।

त्रित कूप में गिरा था। उसे वेग से ढकेला गया था। गिरने का शरीर वेग पादप क्रमशः कम करते गये। त्रित का प्राणान्त नहीं हो सका। तरल कूप तल में ठहर गया। घास-फूस के कारण उसकी हड्डियाँ टूटी नहीं। किन्तु गिरते समय उसे कुएँ की क्रूर ईंटों का धक्का लगा। उसका शरीर विदीर्ण हो गया। रक्त-स्राव हुआ। वेदना से अर्ध-चैतन्य हो गया। उसकी बुद्धि, उसकी मनसा कार्य करने में असमर्थ हो गयी।

× × ×

त्रित का आकाश कूप का ऊपरी स्तर ही था। विशाल और छोरहीन आकाश के स्थान पर, अत्यन्त संकुचित, सीमित आकाश कूप तल से दृष्टिगोचर होता था। कभी-कभी एकाध पक्षी उड़ता दिखाई पड़ जाता था। बाहर की कोई ध्वनि वह नहीं सुन सकता था।

कूप के बाहर विस्तृत क्षितिज तक भूमि फैली दिखाई पड़ती थी। आँखें उन्हें पार करने में असमर्थ हो जाती थीं। प्रकृति का सुहावना रूप दिखाई देता था। सब कुछ असीमित था। विशाल था।

कूप के अन्दर सब कुछ परिमित था, संकुचित था। पैर फैलाने भर की जगह थी। चारों ओर गोलाकार ईंटों की दिवारें थीं। उनके जोड़ों से घास निकली थी। ईंटें वर्षा जल के कारण काली पड़ गयी थीं। उन पर कहीं-कहीं वर्षा से हरी काई जम गयी थी। इस समय सूख गयी थी, काली हो गयी थी। पपड़ी पड़ गयी थी। ईंटों का साथ वह भी मुँह बाकर छोड़ने के लिए उत्सुक थी।

चेतना आने के साथ त्रित को पीड़ा बढ़ने लगी। शरीर पर खून निकल कर सूख गया था। उनमें चमोख पैदा हो गयी थी। त्रित कूप की परिमित भूमि, बँधी वायु, अन्धकार तथा सड़ी दुर्गन्ध से व्याकुल होने लगा।

उसे प्रतीत हो रहा था, जैसे शरीर उसका साथ छोड़ना चाहता था। उसने शरीर तथा आत्मा दोनों के भिन्न अस्तित्व का अनुभव किया। किन्तु मृत्यु के स्वाभाविक भय से अप्रभावित नहीं रह सका।

त्रित के सम्मुख मृत्यु की मनहूस मूर्ति धीरे-धीरे आयी। खड़ी हो गयी। अनेक प्रकार के विचार उसे घेरने लगे। उसका यह शरीर साथ छोड़ देगा। वह मर जायगा। उसकी लाश कोई उठा नहीं सकेगा। शरीर यहीं पड़ा रहेगा। सड़ता रहेगा। उसे कीड़े खाते रहेंगे। नरकंकाल का एक बिगड़ा ढाँचा मात्र रह जायगा। वर्षा आयेगी। कूप में जल एकत्रित होगा। उसकी हड्डियाँ अपवित्र जल में डूबेंगी। सड़ती रहेंगी। शीत ऋतु आएगी। जल सूखेगा। कीचड़ से उसकी हड्डियाँ झाँकेंगी। श्वेत हड्डी पर मिट्टी का काला आवरण चढ़ जायेगा। ग्रीष्म ऋतु आयेगी। सब कुछ सूख जायगा। हड्डियों पर चढ़ी कीचड़ सूखेगी। हड्डियों का वह भी साथ छोड़ देगी।

त्रित भय विह्वल हुआ। बवंडर की तरह विचार उसे घेरने लगे और यह क्रम ? चलता रहेगा। शताब्दियाँ बीत जायेंगी। कण-कण क्षीण होती हड्डियाँ अपना अस्तित्व लोप करती जायेंगी। वह भी समय आयेगा, जब वह सर्वथा मिट्टी में मिल जायेगा।

"कूप में अज्ञानवश गिरा कोई पशु अथवा मनुष्य उसकी हड्डी को देखेगा। नश्वर शरीर की भयंकरता देखकर वेदना से विक्षिप्त हो जायगा। बेचारा सोचेगा। उसकी भी वही दशा होगी, जो मेरी हुई है और इस प्रकार हमारी हड्डियाँ पशुओं की, पक्षियों की, मनुष्यों की और कीड़े-मकोड़ों की हड्डियों में मिलती जायेंगी। पहचानना कठिन हो जायगा, मेरी कौनसी हड्डियाँ हैं। मैं भी कभी कोई का मनुष्य था।"

"—और बाहर ? मुझे लोग उस समय तक भूल चुके होंगे। यदि किसी दानी की कृपा हुई। कूप का जीर्णोद्धार हुआ तो हड्डियाँ बाहर निकालकर फेंक दी जायेंगी। कूड़े-कबाड़ में मिलेंगी। कोई जान भी नहीं सकेगा। वे उस त्रित की हड्डियाँ हैं जिसके लिए इन्द्र ने अर्जुन का वध किया था। जिसने इन्द्र के लिये सोम बनाया था।

"जिस त्रित का सामर्थ्य मरुतों ने युद्ध में नष्ट नहीं होने दिया था। वे मरुत उसे आज हवा पहुँचाने में असमर्थ थे। बाहर उसकी हड्डियाँ फेंक दी

जायेंगी । झंझावात आयेगा । पवन उसके साथ खेलेगी । जिस त्रित ने त्रिशिरा का वध किया था, आज वही त्रित उपेक्षित था। निर्बल था, जीर्ण-शीर्ण कूप में बिना प्रयास मर रहा था । जिस त्रित ने सोम देकर सूर्य को तेजस्वी बनाया था, उस त्रित पर आज सूर्य अपनी रश्मियाँ पहुँचाने में असमर्थ था और यदि बाहर उसकी हड्डियाँ फेंक दी गयीं तो अपनी प्रचण्ड प्रखर किरणों से उन्हें तपाने से बाज नहीं आयेगा । रात्रि में कभी हवा बहेगी तो उसकी हड्डियों से लपटें निकल पड़ेंगी । देखने वाले आतंकित होकर दूर भागेंगे ।

"वरुण हमारे मित्र थे । आज वरुण एक बूँद जल से मेरे शुष्क कण्ठ को सिंचित करने की कृपा नहीं कर रहे हैं । बाहर हड्डियों के फेंके जाने पर वे ही वरुण, वर्षा-जल के प्रहार से उसे ताड़ित करेंगे । तत्पश्चात् उनकी वेगवती गदली धारा आयेंगी । हड्डियों को उत्ताल तरंगों में बहायेंगे । मेरा खेल देखेंगे । जल-धारा में बहती मेरी हड्डियाँ देखकर भय से शिशु भाग जायेंगे । युवतियाँ कलश में जल न भरकर रुक जायेंगी । प्रवाह के साथ मेरा ओझल होना देखने के लिए उत्सुक होंगी ।"

"मैंने सोम की शक्ति से वृत्र का मान मर्दन किया था । आज अपने सर पर झूलती, लम्बी सूखी घास उखाड़कर, सूर्य प्रकाश अपने तक लाने में असमर्थ हूँ । असुर नेता केवल दुर्ग को मैंने विदीर्ण किया था और आज पुरानी, नोना लगी, निष्प्रभ ईंटों को तोड़कर, इस कूप के अस्तित्व का लोप कर, अपने जीवन के लिए, बाहर निकलने की शक्ति नहीं रखता हूँ ।"

"इन्द्र ने मेरे लिए गायें उपलब्ध कीं । उन गायों के कारण मै कूप में पड़ा हूँ । इन्द्र आज मेरे लिए एक बूँद दूध देने के लिए उत्सुक नहीं है । मैं इन्द्र के समान कर्मी हूँ तथापि अपनी कर्मगति पर आँसू बहाता शरीर के कर्म की अन्तिम घड़ी की बाट जोह रहा हूँ ।"

"और मैं त्रित ! वरुण के सात ऋत्विजों में से एक । मैं त्रित ! मन्त्र द्रष्टा । मैं त्रित ! एक ऋषि । मैं त्रित ! एक वैदिक देवता । असहाय हूँ, विपन्न हूँ । संकटग्रस्त हूँ । आसन्न मृत्यु की घड़ी देख रहा हूँ । हमारा यज्ञ भाग, स्तवन, उपासना, तपस्या, त्रैकालिक सन्ध्या, सब व्यर्थ । सबका अवलम्बन शरीर था । पौरुष था । किन्तु यहाँ पुरुषार्थ किस काम का ? अपना पुरुषार्थ कहाँ और किस पर दिखाऊँ ?"

त्रित व्याकुल हो गया । ऊपर देखा । घास-फूँस, पादपों से छन कर आते क्षीण प्रकाश में उसने लक्ष्य किया । कूप की दीवार की कुछ ईटें एक जगह से गिर गयी थीं । उसमें ढहा ताख बन गया था । उसमें बैठा उसकी

दशा पर हँस रहा था, यम का दूत उलूक ।

त्रित को मूर्छा आने लगी । उसके जीवन का अध्याय बन्द होने जा रहा था । उसे संसार पर, जगत पर, इस समय टहलते, उछलते, कूदते, हँसते, खाते, पीते, सोते, आमोद-प्रमोद करते, नर-नारियों के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हुई । उसे क्रोध भी आया । उसकी दशा पर किसी को करुणा नहीं आ रही थी । उसकी कोई चिन्ता नहीं कर रहा था । उसे कोई कूप से बाहर निकालना नहीं चाहता था । प्राण-दान नहीं देना चाहता था । जगत की यह उपेक्षा ? उसका मन क्षुब्ध हो उठा ।

त्रित विचलित हो गया । व्यग्र हो उठा । सर पर सूखे घास-फूस सरसरा उठे । उसके उठने की आहट से कूप के वृक्षों पर बैठी छोटी-छोटी चिड़ियाँ फुर्र-फुर्र करती बाहर उड़ गयीं । उसने सोचा । कहीं उसे पंख होते ? कहीं वह चिड़िया होता, उड़कर बाहर निकल जाता ।

हताश होकर त्रित फिर बैठ गया । याद आया आश्रम । स्मरण आया यज्ञ । उसे स्मरण आ गया । आजन्म देवताओं को हवि देता रहा । उनकी स्तुति करता रहा । किन्तु आज वे गायब हैं । उसे उन पर क्रोध आया ।

विचारों के जाल से थककर त्रित शिथिल हुआ । पैर बटोरकर बैठ गया । दोनों हाथों से जानुओं को वेष्ठित कर लिया ।

अपने में लीन हुआ । उसे जीवन वृत्त स्मरण होने लगा । माता के गर्भ में था । किन्तु माता के गर्भ में किसने उसका पोषण किया ? किसने इसी प्रकार एक अत्यन्त संकुचित कुक्षि में उसकी रक्षा की ?

विचार आते ही, उसकी चेतना जैसे पुनः लौटी । उसने स्तवन किया :

"चन्द्रमा अन्तरिक्ष और सूर्य आकाश में धावते रहते हैं। मनुष्य तुम्हें खोजने में असमर्थ हैं । मेरा नम्र निवेदन सुनो । स्त्री पति पाती है । धनाकांक्षी धन प्राप्त करते हैं । पति-पत्नी दोनों सन्तानों की उत्पत्ति करते हैं । हे रोदसी ! हमारे कष्टों का अनुभव करो ।

"सोम ! हम सोम निष्पन्नकर्ता, सुखकारी पुत्र के अभाव का कभी अनुभव न करें । रोदसी ! तुम हमारे कष्टों को समझो ।

"मैं पुत्रक अग्नि से प्रश्न करता हूँ । देवदूत उत्तर दें । पुरातन नियम कहाँ है ? कौन युवक उसे धारण करता है ? रोदसी ! मेरे कष्टों को समझो ।

"देवगण ! तुम्हारा ज्योतिर्मय आकाश में स्थान है । आपका नियम क्या है ? उनके विपरीत क्या है ? प्राचीन आह्वान कहाँ गया ? रोदसी ! मेरे दुःख को समझो ।

"देवगण ! आपके नियमों का आधार क्या है ? वरुण की व्यवस्था कहाँ है ? दुष्टों के पार अर्यमा हमें किस प्रकार कर सकोगे ? रोदसी ! हमारे दुःख को समझो।

"मैंने सोम को निष्पन्न करने वाले, अनेक शास्त्रों को पूर्व काल में कहा है। तृषित हरिण को जिस प्रकार, वृक भक्षण कर जाता है। उसी प्रकार मेरे मन की व्यथा मेरा भक्षण करती जा रही है। रोदसी ! मेरे दुःखों को समझो।

"दो सौतिनें जिस प्रकार पति को व्यथित करती हैं, उसी प्रकार मुझे अपने चारों दिशाओं में स्थित कूप की दीवारें व्यथित कर रही हैं। इन्द्र ! जिस प्रकार चुहिया अपनी पूँछ को चबाती स्वयं कष्ट पाती है। उसी प्रकार मेरे मन की व्यथा मुझे चबा रही है। रोदसी ! मेरे दुःखों को समझो।

"मैं जल पुत्र त्रित जानता हूँ। सप्त रश्मिधारी सूर्य से मेरा पैतृक सम्बन्ध है। मैं उन रश्मियों की स्तुति करता हूँ। रोदसी ! मेरे दुःखों को समझो।

"आकाश में अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र, विद्युत पाँच वीर स्थित हैं। वे सम्मिलित होकर मेरे इस स्तोत्र को देवताओं को सुनाकर लौट आयें। रोदसी ! मेरे दुःखों को समझो।

"सर्वव्यापी सूर्य आकाश में स्थित है। रोदसी ! मेरे दुःखों को समझो।

"देवगण ! मेरा यह नवीन स्तोत्र प्रशंसनीय है, हितकर है। कल्याण का उद्घोष करता है। नदियाँ देवताओं के नियमों की प्रेरक हैं। सूर्य सत्य का प्रचारक है। रोदसी ! मेरे दुःखों को समझो।

"अग्ने ! तुम्हारा देवताओं से बन्धुत्व प्रशंसनीय है। होता तुल्य यज्ञों में देवताओं का पूजन करते हो। रोदसी ! तुम मेरे दुःख को समझो।

"यज्ञ में स्थित मनुष्य तुल्य होता स्वरूप मेधावी अग्नि देवताओं के निमित्त हवि प्रेरित करे। रोदसी ! तुम मेरे दुःख को समझो।

"वरुण मन्त्र स्वरूप स्तुतियों की रचना करते हैं। उन स्तुतियों से हम अर्चना करते हैं। हृदय द्वारा स्तुतियाँ कहते हैं। उनसे सत्य प्रतिभासित होता है। रोदसी ! मेरे दुःखों को समझो।

"देवगण ! आकाशस्थ पथस्वरूप सूर्य स्तुति योग्य है। उसका उल्लंघन अवांछनीय है। मनुष्यों ! उस शक्ति को जानों। रोदसी ! हमारे दुःखों को समझो।

"मैं प्रतिदिन पृष्ठ प्रदेश पर पीड़ित व्यक्ति के समान, प्रतिदिन खड़ा होकर, अपने ऊपर से शशि को जाता देखता हूँ। रोदसी ! मेरी व्यथा को समझो।

"इन्द्र सब वीर पुरुषों से युक्त, इस स्तोत्र द्वारा युद्ध में विजय प्राप्त करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी, द्यौ मेरे इस स्तोत्र का समर्थन करें।"

समस्त देवताओं का त्रित ने आह्वान किया। उसके आह्वान पर, उसकी करुण अवस्था पर, बृहस्पति की करुणा जागृत हुई। बृहस्पति त्रित के समीप आये। उन्हें आया देखकर त्रित ने उपालम्भ किया :

"बृहस्पति ! वरुण की सर्वदर्शी शक्ति कहाँ गयी ? अर्यमा की सर्वदर्शी शक्ति कहाँ गयी ? क्या वे सर्वत्र मेरी इस करुण दशा को नहीं देख रहे हैं ?"

"त्रित !" बृहस्पति त्रित की दयनीय अवस्था देखकर दुःखी हो गये। उन्होंने मृदु स्वर में कहा, "तुम्हारी शोचनीय स्थिति पर किस पाषाण हृदय में करुणा उत्पन्न नहीं होगी ?"

"बृहस्पति !" त्रित ने बृहस्पति को 'शिरसा नमामि' कहते हुए आभार प्रकट किया, "इन कूप की निर्जीव ईंटों ने मुझे आहत किया है। मेरी यह दुर्दशा···?"

"मन्त्रविद् !" बृहस्पति ने सप्रेम कहा, "तुम्हारा कल्याण होगा। निराश मत हो।"

"देवगुरु !" त्रित ने देवताओं को उलाहना देते हुए कहा, "मैं देवताओं की स्तुति कर रहा था। पहले भी की थी और कर रहा हूँ। परन्तु उनमें से कोई भी मुझे यहाँ नहीं देख रहा है।"

"त्रित !" बृहस्पति ने सस्नेह कहा, "तुम्हारे पवित्र यज्ञ में सब आयेंगे। मैं उन्हें यहाँ आने के लिए प्रेरित करूँगा।"

"आपका अनुग्रह देव !"

"त्रित बाहर चलो।"

बृहस्पति ने त्रित का उद्धार किया। त्रित ने जगत देखा। उसके अभाव में जगत में किंचिन्मात्र परिवर्तन नहीं हुआ था। सब कर्म यथावत चल रहे थे। यदि उसमें कोई नहीं था तो वह स्वयं था।

× × ×

बृहस्पति ने त्रित की अपहृत गायें साला वृकी के पुत्रों से वापस लीं, सादर उसे दे दीं।

यज्ञ का महान् आयोजन त्रित ने किया। बृहस्पति के कारण द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथ्वी तीनों स्थानों के देवताओं का आगमन हुआ। बृहस्पति के साथ वे यज्ञ में भाग ग्रहण करने लगे।

आधार ग्रन्थ :

ऋषि : अगत्यस्त्रित अंगिरस : कुत्सोवा : देवता : विश्वदेवा ।

ऋग्वेद : १ : १०५ तथा १ : १०९; ५ : ४१; ८ : ४७; १० : ८
१ : २२ : १७-१८, १ : ६० : ६, १ : १५४ : ५,
१ : १५५ : ४, ६ : ४९ ६ : ६६, ७ : ६६

शतपथ ब्राह्मण : १ : २ : ३, १ : ३ : १ : १, २ : २ : १-५,
१ : २ : ५ : ५, १३ : २ : २ : ६

केरा ब्राह्मण : ८ : ३३ : १६

तैतरीय ब्राह्मण : ३ : २ : ८ : १०-१२, १ : २ : ५ : १

तैतरीय संहिता : २ : ४ : १२ : २, २ : १ : ३

बृहद्देवता : ३ : १३२-१३७, २ : ६४

नोट : त्रित की कहानी स्पष्ट है। यह एक अच्छी कहानी कही जायगी, परन्तु इसका आध्यात्मिक प्रयोजन क्या था, गवेषण का विषय है। मेरा अनुमान है कि त्रित से ही कालान्तर में 'त्रिदेव' का सिद्धान्त विकसित हुआ है, क्योंकि त्रित तीन भाई थे। मैं स्वयं कोई निश्चित मत प्रकट करने में इस समय असमर्थ हूं।

१. अर्यमा—द्वादश आदित्यों में एक तथा उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र और इनकी गणना वैदिक देवताओं में की जाती है। मित्र, वरुण, तथा अर्यमा का एक साथ उल्लेख मिलता है। पिता का नाम कश्यप तथा माता का नाम अदिति है।

२. त्रित—एक ऋषि हैं। एक मत इन्हें देवता मानता है। त्रित तथा त्रित आप्त्य को एक व्यक्ति माना गया है। सूक्ष्म द्रष्टा है। त्रित को विभूवस का पुत्र कहा गया है। सायण ने (ऋ० १ : १०५ : १८) भाष्य करते हुए एकत, द्वित तथा त्रित को तीन बन्धु माना है। त्रित का आवास गुप्त है। अवेस्ता में 'थ्रित' शब्द 'त्रित' का अपभ्रंश है। अवेस्ता में 'थ्रित' एक मनुष्य रूप में चित्रित किया गया है। इसी प्रकार पारसी धार्मिक ग्रन्थ में 'आथव्य' आया है। यह शब्द आपत्य का अपभ्रंश एवं समानार्थक है। इसने देहधारी मनुष्यों के लिए 'हओम' अर्थात् सोम बनाया था। 'त्रित' शब्द यूनानी शब्द 'त्रितोस' का समानार्थक है। इसका अर्थ तीन होता है। त्रित का एक नाम वैभूवस है।

३. बल—एक असुर का नाम है। इन्द्र ने अंगिरस की आज्ञा पर इसका वध किया था। बल गायों का रक्षक है। इसके दुर्ग को इन्द्र सबल खोलते हैं। इसकी प्राचीरों का इन्द्र भेदन करते हैं। इसके अविच्छिन्न शिखर को इन्द्र विच्छिन्न करते हैं। इसकी गुफा का भी वर्णन मिलता है। बल को वृत्र का भ्राता माना गया है। इन्द्र की उपाधि 'बल वृत्र हन' है। 'बलंरुज' अर्थात् बल को तोड़नेवाले की भी उपाधि इन्द्र की है।

४. साला—वृक-यहाँ अर्थ भेड़िये का है। साल वृकेय शब्द है, जिसका अर्थ होता है साला वृक का वंशज। इसका स्त्रीलिंग साला वृकी है। कहीं सला वृकी शब्द भी मिलता है।

शुनः शेप

यज्ञशाला में काष्ठ के तीन यज्ञीय यूप गड़े थे। शुनः शेप बलि निमित्त उनसे पाशबद्ध था। बन्धन में था। मुक्त नहीं था। जीवन आशा त्याग चुका था। यज्ञ की अग्नि जिह्वा लपलपा रही थी। और शुनः शेप अपनी जीवन रक्षा के लिये हो गया गया था, कातर।

यजमान उसे यज्ञाहुति चुन चुका था। वह हवि था। पवित्र हवन सामग्री था। परन्तु पवित्रता उसे मुक्त नहीं कर सकी थी। उसकी मुक्ति की किसी को कामना नहीं थी।

उसकी बलि में लोगों को सुख था। उसके बन्धन पाश में लोगों की कामनायें गुम्फित थीं। उसके दु:ख में लोगों का सुख था। उसके अवसान में लोगों के उदय की झलक थी।

मृत्यु उसे निरख रही थी। यज्ञ शिखा तृषित थी। यज्ञ मण्डप का पवित्र वातावरण उसके शरीर मोह को तिरोहित नहीं कर सका। वेद गान उसमें मंगलमय अनुभूति नहीं उत्पन्न कर सके। वह अपने अमंगल की प्रतीक्षा में व्याकुल था। वह अपनी काया का रक्षाकांक्षी था। यज्ञमान उसकी काया विनष्टि में अपने सुन्दर भविष्य का दर्शन कर रहा था। और शुनः शेप निस्सहाय था। हताश था।

उसके पुष्ट शरीर-मांस की लोग पवित्र आहुति देखना चाहते थे। लोगों का स्वार्थ उसके विनाश में था। और उसका स्वार्थ अपनी रक्षा में था। परस्पर विरोधी स्वार्थों के संघर्ष में, जीवन-मृत्यु के द्वन्द्व में, उत्सर्ग और अस्तित्व के अधर में उसे स्मरण आये, निस्सहायावस्था के एकमात्र सम्बल, एकमात्र आशा, एकमात्र सन्तोष, वरुणदेव। उसकी यह क्षीण आशा करुण वाणी में मुखरित हुई :

"वरुण ! निशदिन बन्धनयुक्त मैं आपका स्तवन करता हूँ। विज्ञ एवं दुर्धर राजा वरुण !! मुझे पाश मुक्त कीजिये । पाश बन्धन खोलिये । अग्नि का ग्रास मुझे मत बनाइये ।"

शुनः शेप की दशा शोचनीय थी । आसन्न मृत्यु भय नेत्रों में झलक रहा था । जगत उसकी दृष्टि में किसी समय लोप हो सकता था । यह सुन्दर, सुखद, सुहावना जगत वह नहीं देख सकेगा । मुहुर्त मात्र में वह हू-हू-हू कर जल उठेगा । उसका सुन्दर पुष्ट, युवा शरीर भस्म बन जायगा । भयंकर भावनायें उदय होते ही वह मृत्यु दुःख से कातर हो गया । उसे विषाद हुआ । विवशता पर झुँझलाया। लोगों की क्रूरता पर क्रोधित हुआ । किन्तु वह पाशबद्ध था ।

उसकी भावनाएँ मूर्त न हो सकीं । उसकी दयनीय वाणी यज्ञ मण्डप में गूँजी। किन्तु उसकी करुणा बन गयी, लोगों के कौतूहल की सामग्री । उसकी विवशता बन गयी, लोगों के उपहास की सामग्री । उसकी कायरता बन गयी, लोगों के क्रूर मनोरंजन की सामग्री । लोगों की नग्न निर्दयता देखकर उसके नेत्र अनायास बन्द हो गये । उसने वरुण का करुण स्वर से स्तवन किया :

"हे वरुण ! दण्डवत्, यज्ञ और आहुतियाँ आपके क्रोध का निवारण करें। विज्ञ, बली, यशस्वी, सौभाग्यदायक वरुण ! हमारे मध्य पधारिये । मुझे कृत पापों से मुक्त कीजिये ।"

पाश पीड़ा से पीड़ित शुनः शेप के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह चली । उसकी दयनीय अवस्था लोगों की आँखों में आश्चर्य बन गयी । मनुष्य होकर वह बलि से भयभीत है ? वह मृत्यु से डरता है ? देव कार्य में प्रसन्नता के स्थान पर रोता है ? स्वर्ग-पथ से विचलित होता है ? लोग उसकी इस वृत्ति से कुछ असन्तुष्ट हुए । कुछ लोगों की आँखों में उसके लिये उपेक्षा उतर आयी । कुछ लोग उसकी कायरता से उदास हो गये । किन्तु शुनः शेप ने अपने निर्मल अश्रु जल से वरुण को अर्घ्य देते हुए स्तवन किया, "वरुण ! मेरे ऊपर के पाश को नष्ट कीजिए । मध्य के पाश को नष्ट कीजिए । और नीचे के पाश को नष्ट कीजिए ।

"वरुण ! आप निष्ठावान यजमान की साधारण हवि का त्याग नहीं करते। और छोरहीन समुद्र के ऊपर उड़े चले जाते हैं । आकाशगामी पक्षियों के मार्गों को जानते हैं । वे ही समुद्रगामी पोतों के मार्गों को समझ पाते हैं । बारह महीने के साथ आप 'अधिक मास' को जानते हैं । विस्तृत, उन्नत, महान वायु मार्ग का आपको ज्ञान है । अघटित तथा घटित घटनाओं के आप ज्ञाता हैं ।"

आजीगर्ति शुनः शेप ने वरुण को स्मरण करते हुए पुनः स्तुति की :

"वरुण ! मेरा आह्वान सुनिये । आज प्रसन्नता का दिन है। मैंने आपका आह्वान मुक्ति निमित्त किया है । आप मेधावी हैं । आकाश, पृथ्वी तथा विश्व में प्रकाशमान हैं । क्या आपने मेरी पुकार सुनी है ? क्या आप मेरी पुकार का उत्तर देंगे ?"

× × ×

सहस्रों युगों से बँधे शुनः शेप ने हव्य वाहन अग्नि की स्तुति की :

"अग्नि ! आप सतत युवा हैं । तेजस्वी हैं । अग्ने ! आप सचमुच पुत्र के स्नेही पिता हैं । सम्बन्धी के सम्बन्धी हैं । मित्र के मित्र हैं । देवताओं की पूजा करते हुए भी हम आपको ही हवि देते हैं ।

"अमर्त्य अग्नि ! आपकी तथा मानवों की प्रशंसादायक वाणियाँ स्नेहमय हैं । बल पुत्र अग्ने ! आप अपनी समस्त अग्नियुक्त हमारी प्रार्थना सुनिये ।"

शुनः शेप ने अग्नि और विश्व देवों की स्तुति की :

"अग्नि ! आप बालों वाले अश्व के तुल्य हैं । यज्ञों के सम्राट के तुल्य हैं । मैं स्तुतियों द्वारा आपका पूजन करता हूँ । विस्तीर्ण, गतिशील, सुखप्रद अग्नि ! हमारे अभीष्ट के सिद्धिदायक होइये । मेरे इस नवीन स्तोत्र को देवताओं के सम्मुख उत्तमता से उपस्थित कीजिए ।

"चित्रभानु ! आप समुद्र की मर्यादा में प्रवाहित जल तुल्य यज्ञमान के लिए प्रवाहमान होइये । हे जराबोध ! रुद्र निमित्त हमें सुन्दर स्तोत्रों से प्रेरित कीजिए ।"

शुनः शेप ने इन्द्र-सोम की स्तुति की :

"जिस स्थान पर सोम निष्पन्न निमित्त कठोर पत्थर उठाया जाता है वहाँ उलूखल के स्वर को सुनकर सोम का इन्द्र आप सेवन कीजिए । हे इन्द्र ! जहाँ पर युवतियों के दो स्थूल जंघाओं के समान सोम कूटने के दो फलक रखे हैं, वहाँ उलूखल के सुस्वर को सुनते हुए, जाकर सोमपान कीजिए ।

"हे इन्द्र ! जहाँ नारियाँ उलूखल में सोम रख तैयार करने का अभ्यास करती हैं, वहाँ उलूखल के शब्द को सुनते हुए जाकर, सोमरस का पान कीजिए । इन्द्र ! सारथी जिस प्रकार अश्व के रास को पकड़ता है । उसी प्रकार जहाँ मन्थन दण्ड को रस्सी से बाँधकर, मन्थन करते हैं, वहाँ उलूखल के सुस्वर को सुनते हुए, जाकर, सोमरस का पान कीजिए । हे उलूखल ! आप प्रत्येक गृहों में उपस्थित हैं । आप विजय दुन्दुभी के समान इस यज्ञभूमि में नाद कीजिए ।

"ओ ! वनस्पते !! ओ ! वनदेव !! जब वायु मन्द गति में तुम्हारे

सामने बहती है। उस समय हे ! उलूखल !! इन्द्र के पान निमित्त सोम सिद्ध करें। उलूखल मृणाल स्वरूप वनस्पते ! मधुर सोम को इन्द्र के लिए निष्पन्न कीजिए। निष्पीड़ित सोमरस को पात्र से निकालकर, पवित्र कुश पर छिड़किये। अवशेष गो चर्म पात्र में रख दीजिये।"

शुनः शेप ने इन्द्र की स्तुति की :

"सोम पायी ! इन्द्र !! हम यहाँ निराश पड़े हैं। शक्तिशालिन ! सुनासिके इन्द्र !! आपकी करुणा का मैं आकांक्षी हूँ। हमारे शत्रु निद्रामग्न रहें। मित्र चैतन्य रहें। हमारे इस गंधर्व तुल्य शत्रु का नाश कीजिए। हमारे लिए जो भी कोई अशुभ की आकांक्षा करते हैं उनका वध कर दीजिये।

"इन्द्र को हम सोम तथा जल से सिचित करते हैं। इन्द्र को जो प्रसन्न करना चाहते हैं। निम्नगामी जल के समान उनका यहाँ आगमन हो। इन्द्र के लिए जो कुछ एकत्रित किया गया है, उसे वे अपने उदर में समुद्र के जल के समान रखते हैं। जिस प्रकार कपोत अपनी गर्भिणी कपोतनी को प्राप्त करता है। उसी प्रकार इस सोम और हमारी वाणी को आप प्राप्त करें।

"शतक्रतु ! हमारे इस जन्म-मृत्यु के संघर्ष पर कृपया आप दृष्टिपात कीजिए। इस पर मन्त्रणा करें। हम अपनी रक्षा के निमित्त सब समय आपका आह्वान करते हैं। इन्द्र ! यदि आप मेरा आह्वान सुन लेंगे, तो अपनी पूर्ण शक्ति के साथ यहाँ अवश्य पधारिएगा।

"इन्द्र ! स्मरण है, मेरे पिता ने पूर्वकाल में आपका आह्वान किया था। मैं अपने पूर्वजों के समान आपका स्मरण करता हूँ, आह्वान करता हूँ।

"वज्रिन् ! आप मित्रों के मित्र हैं। अपनी अभिलाषापूर्ति निमित्त सर्वदा लोग आपका स्तवन करते हैं।

"ओ ! शिशु !! धुरी पर चक्रित रथ के पहिये के समान आपकी दया हम प्रार्थियों के पास आये। शतक्रतु ! आप अपने प्रार्थियों को दुर्भाग्य की धुरी पर चक्रित पहिए के समान घुमा दीजिए।"

शुनः शेप ने इन्द्र की स्तुति की, उन्हें अंजलिबद्ध प्रणाम किया। अग्नि ने उसे सहस्र यूप बन्धन से मुक्त कर दिया। उसका पाशबन्धन खुल गया।

इन्द्र उसके सम्मुख प्रकट होकर बोले, "शुनः शेप ! तुमसे प्रसन्न हूँ। यह हिरण्यमय रथ तुम्हारे लिए है, सूक्तद्रष्टा।"

× × ×

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १ : २४-३०, १ : ३० : १६, ५ : २ : २७, ६ : ३
एतरेय ब्राह्मण : ७ : १३-१८,
त्रैतीय संहिता ५ : २ : १३,
मैत्रायणी : ३ : २१
कठक संहिता १६ : ११
साव्यापन श्रौत सूत्र : १५ : २०-२१, १५ : १८ : ८, १६ : ११ : २
बृहद्देवता : २ : ११५, ३ : १०३

नोट : शुनः शेप की कथा अत्यन्त संक्षिप्त तथा अस्पष्ट रूप से ऋग्वेद में दी गयी है। ब्राह्मण संहिता, पुराण, रामायण, महाभारत आदि पुराकालीन ग्रन्थों में वह कथा अनेक प्रकार से विभिन्न घटनावलियों के साथ वर्णित की गयी है।

मैंने अपनी 'रामायण कथा' में यह कथा दी है। इससे वह सर्वथा भिन्न है। उसका आधार रामायण है। इस कथा का आधार केवल ऋग्वेद है। दोनों को देखने से स्पष्ट प्रतीत होगा। विचारों, कथानकों तथा रचना शैली में काल की गति किस प्रकार अन्तर उत्पन्न कर देती है।

आजीगर्ति—शुनः शेप का पैतृक नाम है। अंगिरस नाम से भी उल्लेख मिलता है।

यूप—यज्ञ का खूँटा जिससे बलि निमित्त पशु बाँधा जाता है।

शुनः शेप—शाब्दिक अर्थ होता है कुत्ते की पूँछ। भृगुकुल में जन्म ग्रहण किया था। आजीगर्ति नामक ऋषि का मझला पुत्र था। इनके अन्य दो भाइयों का नाम शुनः पुच्छ तथा शुनो लांगूल था। पैतृक नाम 'आजीगर्ति' तथा 'सौम वसि' था।

कक्षीवान् - स्वनय

"ओह—!"

राजकीय शोभा यात्रा अकस्मात् रुक गई। राजा कक्षीवान् के विमल नेत्रों ने देखा। मार्ग के पार्श्व में शयनशील ऋषिकुमार।

ऋषि तरुण था। गाढ़ी निद्रा में था। मार्ग की श्रान्ति मिटाता अनायास सो गया था। पद धूल से भरे थे। प्रतीत होता था, कहीं दूर से एकाकी वन में आ गया था। तरु की शीतल छाया थी, तरु मूल से उठ गया था। आराम मिलने लगा। निद्रा देवी के अंक में सो गया। घने तरु पल्लवों से छनकर नाम-मात्र के लिए धूप उस पर नहीं आ रही थी।

राजा ने उसकी आकर्षक युवाजन्य शोभा देखी। प्रसन्न हो गया। उसे एकटक देखने लगा। पार्षद पीछे रुके। कोलाहल का आभास निद्रित ऋषि को हुआ। वह हड़बड़ाकर उठ बैठा।

ऋषिकुमार ने राजा स्वनय को देखा। वन में भीड़ देखी। कौतूहल बढ़ा। आकाश की ओर किंचित् देखा। समय का ज्ञान किया। आश्चर्य हुआ। काफी देर तक सोता रहा। उसने बदन तोड़ा। एकत्रित जन समुदाय की ओर देखा। राजा ने स्नेह से पूछा :

"ऋषिकुमार ! आपका आगमन कहाँ से हो रहा है ?"

"जी !" ऋषिकुमार ने अपने आलस्य को जैसे झाड़ते हुए कहा, "राजन् ! मैंने विद्याध्ययन समाप्त किया है। गुरु आश्रम से घर लौट रहा हूँ।"

"आपका गन्तव्य स्थान ?"

"स्वगृह जा रहा हूँ। यहाँ शीतल पवन मिला। छाया मिली। रुक गया। नींद आ गई।" ऋषिकुमार ने अपनी आँखों को अँगुलियों से पोंछते हुए कहा।

"मुझे लोग स्वनय भावयव्य कहते हैं। मैं सिन्धुतटीय भूखण्ड का राजा हूँ।" राजा ने मृदुस्वर में कहा।

"मेरा नाम" ऋषिकुमार ने किंचित् रुकते हुए कहा, "मुझे उशिज पुत्र

कक्षीवान् कहते हैं। मेरे पिता का नाम दीर्घतमस है। मैं प्रज वंशीय हूँ। कुछ महानुभाव मुझे काक्षीवत औशिज भी कहते हैं।"

"आपसे मिलकर प्रसन्नता हुई।" राजा ने सन्तोष के साथ कहा।

कक्षीवान् ने देखा। राजा के साथ उनकी सभा थी। पुरोहित थे। भार्या थी। ऋषिकुमार ने राजसी साज-सज्जा देखी। उसने जिज्ञासा की :

"श्रीमान् ! किस यात्रा पर निकले हैं ?"

"हम क्रीड़ार्थ इस वन में आ गये थे। अकस्मात् आप पर दृष्टि पड़ी। परिचय की इच्छा हुई।"

राजा बोल रहे थे। ऋषिकुमार के रूप ने उन्हें आकर्षित किया था। देव-सुतोपम रूपसम्पन्न कुमार को देखकर राजा विचारशील हो गये थे। परिचय से प्रसन्न थे। कुछ निश्चय करने लगे। राजा ने कहा :

"ऋषि ! आप मन्त्र-द्रष्टा हैं। आप सुयोग्य हैं। आप अपने गृह की ओर लौट रहे हैं। क्या गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का विचार है ?"

ऋषिकुमार राजा की बातों का अर्थ समझ नहीं सके। राजा ने पुनः कहा, "हम समान गोत्रीय हैं। परस्पर वर्णादि का विरोध नहीं है।"

ऋषिकुमार की दृष्टि राजा की सुन्दर कन्याओं पर पड़ी। वे ऋषिकुमार के युवक पुष्ट शरीर को देखकर प्रसन्न हो रही थीं। राजा की भार्या कुमार को जामाता की दृष्टि से देखने की कल्पना कर रही थी। राजा ने अपनी भार्या की तरफ देखा। भार्या मुसकराई। दोनों ने नेत्रों द्वारा परामर्श कर लिया। राजा ने पूछा :

"ऋषिवर ! आपके वंश का विशेष परिचय जान सकते हैं ?"

"नृपवर ! मैं अंगिरस के वंश का हूँ। मैं उचथ्य पुत्र ऋषि दीर्घतमस का पुत्र हूँ।"

रानी प्रसन्न हो गई। रानी ने प्रफुल्लित नयनों से अपनी कन्याओं की तरफ देखा। राजा ने कहा :

"ऋषिकुमार ! हमारे और आपके गोत्र तथा वर्ण में विरोध नहीं है। हम एक-दूसरे से सम्बन्ध कर सकते हैं।"

"सम्बन्ध ?" काक्षीवत चकित हुआ।

"निश्चय !" राजा ने मुसकराते हुए कहा।

"विचित्र बात होगी ?" कुमार गम्भीर हो गया।

"ठीक बात है। काक्षीवत ! ये हमारी दस कन्याएँ हैं।" राजा ने अपनी सुन्दर युवती कन्याओं की तरफ देखा।

कक्षीवान् की दृष्टि कन्याओं पर पड़ी । वे लज्जित हो गयीं । नारी जन्य लज्जा में उनका यौवन और निखर आया । लावण्य में अत्यधिक वार्धक्य अकस्मात् हो गया । युवक मन कक्षीवान् विचलित होने लगा ।

वेद-वेदांग शास्त्रों का अध्ययन उसकी सहायता इस फिसलन से नहीं कर सका । शरीर की शक्ति, शरीर का यौवन, शरीर के विपरीत योनि यौवन की ओर आकर्षित हो गया । कक्षीवान् उन सुन्दरी कन्याओं पर लोगों की दृष्टि बचाकर दृष्टिपात कर देता था । उसे ज्ञान नहीं रहा । उसका यह कार्य अशोभनीय था । उसने ऐसी स्थिति तथा ऐसी घटना का कभी सामना नहीं किया था । अभ्यस्त नही था । राजा कक्षीवान् की मृदुल मुद्रा देखकर प्रसन्न हो गया । उसने पूछा :

"यदि इच्छा हो तो—?"

कक्षीवान् हाँ या ना कुछ नहीं कर सका । उसे अपने कार्य पर लज्जा आने लगी । उसने दृष्टि दूसरी ओर फेर ली ।

× × ×

राजा स्वनय ने अपनी दस कन्याओं का एक साथ पाणी-ग्रहण संस्कार कक्षीवान् के साथ कर दिया । कक्षीवान् गृहस्थी बन गया । उसके जीवन का एक अध्याय समाप्त हुआ । दूसरा खुला ।

राजा ने आभूषणों से भूषित कन्याओं को कक्षीवान् को दिया । कन्याओं के वाहनार्थ दस रथ दिये । प्रत्येक रथ में स्वस्थ सुदृढ़ शरीर विभिन्न वर्णों के अश्व, धन, बर्तन, बकरियां तथा भेड़ें भेंट कीं । साथ ही साथ राजा ने कक्षीवान् को एक शत निष्क तथा एक शत वृषभ दिये ।

राजा ने कक्षीवान् को एक हजार साठ गायें और दीं । कक्षीवान् धन और अपनी पत्नियों के साथ दस रथों पर आरूढ़ हुआ । अपने पिता के आवास की ओर चलने के लिए उद्यत हुआ । राजा की बन्दना की । अपनी बुद्धि द्वारा स्तोत्र भेंट किया । पशुधन तथा पत्नियों के साथ प्रस्थान किया ।

× × ×

कक्षीवान् पत्नियों के साथ पितृ-गृह की ओर जा रहा था । सहस्त्रों गायों की पंक्तियां साथ चल रही थीं । पंक्तियों के आगे दस रथ चल रहे थे । स्वर्णाभूषणों द्वारा रथों के अश्व सजे थे ।

वह अपने निवास स्थान पर पहुंचा । उसे देखकर प्रजवंशी प्रसन्न हो गये ।

उनके पुत्रगण अश्वों को हाथों से थपथपाने लगे । मलने लगे । उसने अपने कुटुम्बियों को तीन जुते हुए रथ दिये । आठ उत्तम गायें दीं । उसने शकट रखने वाले कुटुम्बियों की समृद्धि के लिए स्तवन किया ।

कक्षीवान् ने अपने पूजनीय पिता को गऊ दी । तत्पश्चात् श्रद्धापूर्वक सूक्त स्तवन किया :

"दानी व्यक्ति सूर्य की उदय होती किरणों के साथ दान देता है । विद्वान् लोग उस दान को ग्रहण करते हैं । उस धन से सन्तान, आयु, बल सहित रक्षा होती है । उसे असंख्य अश्व, गाय, स्वर्ण राशि मिलती है । इन्द्र की दानियों पर कृपा होती है। वे उन्हें सामर्थ्य देते हैं । प्रातः काल उन्हें धन से पूर्ण कर देते हैं । शोभन कर्म युक्त यज्ञ के अवलोकनार्थ निमित्त में रथारूढ़ आ गया हूं ।

"यजमान् ! इन्द्र को सोम निष्पन्न कर पिलाओ । उन्हें स्तवन से प्रसन्न करो । गौस्वरूप कल्याणकारी सरिताएं यज्ञेक्षु यजमान के समीप प्रवाहित होती हैं । यज्ञेच्छु व्यक्ति को चारों ओर से घृत की धाराएं प्राप्त होती हैं। दानी का स्वर्ग में सत्कार होता है । वे देवताओं के वर्ग में पहुंचते हैं । जलस्वरूप घृत नदियां उनके निमित्त प्रवाहित होती हैं । उनकी दक्षिणा सर्वदा वार्धक्य प्राप्त करती है । दानियों के पास ऐश्वर्य है । दानी के निमित्त आकाश में सूर्य स्थित है । दानी दान स्वरूप अमृत प्राप्त करता है । उन्हें दीर्घायु प्राप्त होती है । दानी के समीप दुःख नहीं आता । उसे पाप आवृत नहीं करते । जगत के शोक केवल अदानी व्यक्ति को व्याप्त करते हैं ।

× × ×

समय बीतता गया । कक्षीवान् ने राजा स्वनय की इच्छानुसार एक शत यज्ञानुष्ठान किये । उशिज पुत्र कक्षीवान् ने अपनी विद्या तथा कार्यों से ख्याति प्राप्त कर ली । उसकी प्रसिद्धि दूसरों के लिए अनुकरणीय हो गयी ।

अश्विनी द्वय उसकी सर्वदा रक्षा करने के लिए उद्यत रहते थे । उन्होंने उसके लिए वर्षा की ।

कक्षीवान् की बुद्धि उत्तरोत्तरप्र शस्त होती गयी । कक्षीवान् ने विद्वान् ऋषि तथा द्रष्टाओं में यश प्राप्त किया । उसने देवताओं को सोम दिया । उसके बदले में देवताओं ने उसे पशुधन प्रदान किया । हर्षदायक सोम पान से उसकी बुद्धि दिन-प्रतिदिन कुशाग्र होती गयी ।

वह अश्विनी कुमारों को आहूत करता था । उसने उनके आशीर्वाद से दीर्घ-

कालीन शत वर्षीय जीवन प्राप्त किया। उसके वयस्क हो जाने पर भी इन्द्र ने प्रसन्न होकर उसे 'वृचवा नामक पत्नी दी।'

× × ×

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १ : १८ : १, १ : १२५:, १ : ११७ : ६
१ : ५१ : १३, १ : १२६ : २-४, १ : १२०
१ : ११२ : ११, ४ : २६ : १, ८ : ६ : १०
१:११६ : ७, ६ : ७४ : ८, १० २५ : १०
१० : ६१ : १६

ऐतरेय ब्राह्मण : १ : २१
जैमिनी ब्राह्मण १ : ६ : ११, १६ : ४ : ५
सारवांपन श्रौत सूत्र : १६ : ११ : ५
बृहद्देवता ३ : १४२-१५६

नोट : इस कहानी में वैदिक विवाह प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। पिता कन्या के विवाह के लिये उत्तरदायी होता था। साधारणतः वही वर का चयन करता था। कन्याएँ उसका पालन करती थीं। बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी, इसका भी प्रमाण इस कथानक से मिलता है। विवाह के लिए सम्पत्ति की अपेक्षा गुण पर जोर दिया जाता था। गुणवान से विवाह करना उत्तम समझा जाता था।

कक्षीवत—प्रज वंश के थे। औशिज वंशीय भी कहे जाते हैं। इनके वंशज प्रज कहे गये हैं। सिन्धु देश के राजा स्वनय भाव्य की उनके दिव्य दान के कारण प्रशंसा की है। वृद्धावस्था में कुमारी वृचवा से विवाह किया था। शतजीवी थे। एक आचार्य थे। एक वैदिक ऋषि थे। एक मत है कि वे क्षत्रिय थे। दीर्घतमस् के पुत्र थे। माता का नाम उशिज था। तप द्वारा मालूम होता है ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। ऋग्वेद काल में भी यह पुरातन व्यक्ति माना जता था। इसकी कन्या का नाम 'घोष' था। वह सूक्त द्रष्टा था। आगे चलकर इसे कक्षीवत, औशिज अथवा कक्षीवान् कहा जाने लगा था। अंगिरस कुल का मंत्रकार था।

भावयव्य—भाव्य भी इसे कहा गया है। स्वनय राज्य का पैतृक नाम है।

स्वनय—कक्षीवत के आश्रयदाता थे। सिन्धु तट वासी एक राजा थे। उन्हें स्वनय भाव्य कहा गया है।

नमुचि

यज्ञस्थल में भगदड़ मच गयी। ऋषिगण भयग्रस्त हो गये। देखते-देखते असुर नमुची ने यज्ञ भंग कर दिया।

त्रस्त ऋषियों ने इन्द्र का आह्वान किया। मायावी असुर नमुचि के संहार की प्राथना की।

× × ×

दास नमुचि की माया से मनवे (मानव) क्षुब्ध थे। मनुष्यों को देवताओं के पास पहुँचने का सरल मार्ग अवरुद्ध हो गया था। यज्ञादि करना कठिन था। मनु की प्रार्थना पर इन्द्र का ध्यान गया।

× × ×

ऋषियों तथा मनु की स्तुति पर इन्द्र ने निश्चय किया। वज्र से असुर नमुचि का संहार किया जाय।

× × ×

युद्धस्थल उपस्थित योद्धा के साथ युद्ध करना सरल था। किन्तु मायावी असुरों के साथ युद्ध करना कठिन था। पराक्रमी इन्द्र ने अपनी शक्ति का प्रयोग किया। दास नमुचि को माया शक्ति से हीन कर दिया। असुर की एक शक्ति का लोप हो गया।

× × ×

नमुचि प्रबल था। उसकी माया का नाश हुआ। किन्तु उसकी शक्ति का नाश नहीं हुआ था। वह इन्द्र के भय से दूर देश में पलायन कर गया।

इन्द्र नमुचि का दूर देश तक पीछा करते पहुँचे।

× × ×

नमुचि प्रबल था। उसे हराना सरल नहीं था। युद्ध-स्थल में नमुचि और इन्द्र निर्णायक युद्ध निमित्त उठ आये।

नमुचि की शक्ति देखकर अश्विनीकुमारगण इन्द्र की सहायता हेतु पहुँचे। मरुतों का भी महाभयकर सुर-असुर संग्राम देखने के लिए आगमन हुआ।

× × ×

इन्द्र ने देखा। जगत ने देखा। मायावी असुर नमुचि ने स्त्रियों को युद्ध का साधन बनाया। स्त्रियों की माया उनके यौवन रूप पाश में है। इन्द्र फँस जायेंगे। नमुचि ने सोचा था।

बात उल्टी हुई। इन्द्र कटिबद्ध थे दैत्य वध के लिए। वे समरांगण में निकले। नमुचि की दो सर्वश्रेष्ठ स्त्रियों को बन्दी बनाकर पृष्ठ भाग में भेज दिया। इन्द्र उनके कारण वचलित नहीं हुए। वे इन्द्र का कुछ बिगाड़ नहीं सकीं। रण निमित्त इन्द्र अग्रसर हुए। रूप इन्द्र को प्रभावित नहीं कर सका।

× × ×

वज्रिन इन्द्र परम वेग से नमुचि सेना की ओर बढ़े। उनके सहायक अश्विनी-कुमारगण थे। अश्विनीकुमारों ने उन्हें पुष्टिकर सोम पान कराया।

सोम पीते ही इन्द्र ने अतुलित बल का अनुभव किया। उनका रूप अत्यन्त उग्र हो गया। रुद्र रूप इन्द्र नमुचि की सेना पर टूट पड़े। अश्विनीकुमार उनकी रक्षा में तत्पर थे।

इन्द्र ने भयंकर गर्जन किया। उस गर्जन के सम्मुख मेघ गर्जन फीका पड़ गया। वे असुर वध की तीव्र आकांक्षा से युद्धोन्मत्त हो गये। उनका संहार जगत ने देखा। मरुतों के प्रभाव के कारण आकाश और पृथ्वी चक्र की तरह घूमने लगे।

× × ×

असुर वाहिनी पराजित हो चुकी थी। शत्रु सेना का संहार हो चुका था।

नमुचि बच गया था। नमुचि ने युद्ध स्थल से पलायन किया। इन्द्र ने असुरों के ९९ नगरों को नष्ट किया। एक नगर अपने निवास निमित्त नष्ट होने से बचा लिया।

× × ×

नमुचि भागकर प्राण नहीं बचा सका। इन्द्र प्रबल वेग से उसके समीप पहुँच गये। अपने शत्रु को इन्द्र ने प्रत्यक्ष देखा। पराक्रमी इन्द्र का स्वरूप जाज्वल्यमान अग्नि तुल्य प्रज्ज्वलित हो उठा।

इन्द्र ने नमुचि को पकड़ लिया। प्राणियों की रक्षा निमित्त उन्होंने जल के फेन से उसका सर मरोड़ दिया। शरीर को मरोड़ कर उन्होंने उसे चूर्ण कर दिया। इन्द्र को प्रबल पराक्रम करते देखकर श्येन पक्षी इन्द्र के लिए सोम लेकर आया। सोम पान की अभिलाषा में नमुचि का मरोड़ा चूर्ण होता मस्तक इन्द्र ने फेंक दिया। मनु की भलाई के लिए इन्द्र ने नमुचि का वध किया।

× × ×

इन्द्र के द्वारा नमुचि हनन से मनु का मार्ग सरल हो गया। वे देवताओं के पास सीधे पहुँच सकते थे। असुर का व्यवधान मार्ग से दूर हो चुका था और दूर हो गया ऋषियों का असुर आतंक।

देवता यज्ञों से अपना भाग प्राप्त करने लगे। और नमुचि अर्थात् जो जाने न दे, वह स्वयं जल फेन द्वारा इस जगत से चला गया।

नोट : यह कथा शतपथ ब्राह्मण में एक दूसरे रूप में दी गयी है। कालान्तर में यह कथा नरसिंहावतार की कल्पना का मूल स्रोत हुई है। पुराणों में अस्त्र-शस्त्रों भूमि अथवा आकाश में न मरने का वर प्राप्त हिरण्यकश्यप को भगवान नृसिंह ने अवतार लेकर पलथी पर रख कर मारा। इस प्रकार न तो वह भूमि पर मरा और न आकाश में। हिरण्यकश्यप का हृदय अपने नखों से विदीर्ण किया। किसी प्रकार के आयुध का प्रयोग नहीं किया। यहाँ भी जल के फेन से इन्द्र ने नमुचि का सिर मरोड़ कर उसे चूर्ण किया। किसी आयुध अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग नहीं किया।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १ : ५३ : ७, २ : १४ : ५, ५ : ३० : ७, ६ : २०, ७ : १९ : ५, ८ : १४ : १३, १० : ७३ : ७, १० : १३ : ४
शतपथ ब्राह्मण : ५ : ४ : १ : ९, १२ : ७ : ३ : ४, १२ : ७ : ३ : १-३, १२ : ७ : १ : १०
वाजसनेय संहिता : १० : १४, १९ : ३४, २० : ५९
तैतरीय ब्राह्मण : १ : ७ : १ : ६-७

नमुचि—यह एक असुर तथा इन्द्र का शत्रु है। ऋग्वेद में इसके लिए असुर उपाधि का प्रयोग किया गया है। इसे दास तथा माया भी कहा गया है। इन्द्र ने इसके एक शत दुर्गों को ध्वस्त किया था। पाणिनी ने इस शब्द की व्युत्पत्ति 'न-मुचि' जो जाने न दे, की है।

मनु—प्रथम पुरुष तथा मानवों के जन्मदाता हैं। विवस्वान द्वारा सुरण्यू की छाया से उत्पन्न हुए थे। प्रथम यज्ञकर्ता हैं। विवस्वान के पुत्र होने के कारण इन्हें विवस्वत कहा गया है।

मरुत—मरुतों की माता वृश्नि है। वे देवों के विश् हैं। वह वायु के देवता हैं। इनकी संख्या सात का तिगुना इक्कीस तथा साठ की तीन गुना अर्थात् एक सौ अस्सी है। वेद में कई स्थलों पर इन्हें सात व्यक्तियों का समूह कहा गया है। इन्द्र का इन्हें पुत्र कहा गया है। रुद्र का भी इन्हें पुत्र कहा गया है। रुद्र पुत्र होने के कारण इन्हें 'रुद्रिय गण' तथा 'वृश्नि' का पुत्र होने के कारण 'वृश्नि मातरः' कहा गया है। इन्हें 'गोमातारः' भी कहा गया है। वैदिक कथा है। अग्नि ने इन्हें उत्पन्न किया। वायु ने इन्हें आकाश के गर्भ में अवस्थित किया। आकाश में उत्पन्न होने के कारण इन्हें 'आकाश पुत्र' कहा गया है। इन्हें 'समुद्र का पुत्र' कहकर इन्हें 'समुद्र मातारः' की उपाधि दी गई है। मरुत परस्पर भाई हैं। इनमें कोई छोटा बड़ा नहीं है। पृथ्वी, वायु एवं आकाश में इनका निवास है। देवी के वे एक गण हैं।

दीर्घतमा

"ममते !" बृहस्पति ने अपने ज्येष्ठ भ्राता उच्चथ की भृगुवंशीय पत्नी को कामलोलुप दृष्टि से देखा ।

"बृहस्पति !" ममता के कण्ठ से जिज्ञासा उद्भूत हुई, "क्या आज्ञा है !"

"ममते !" बृहस्पति किंचित् लज्जित हुए । वह ममता की तरफ बढ़ते-बढ़ते रुक गये ।

"देव !" ममता बृहस्पति के अप्रत्याशित व्यवहार को देखकर किंचित् चकित हुई ।

"भ्रातुर्जाये !" बृहस्पति का मुखमण्डल रक्तावर्ण हो गया था ।

"पतिभ्राता !" ममता सहसा भयभीत हुई ।

"प्रिये !" बृहस्पति की आँखों में काम-तृष्णा चमक रही थी ।

"यह क्या ?" ममता पीछे हटने लगी ।

ममता सुन्दर थी । युवती थी । सरस थी । मधुरभाषिणी थी । आकर्षक थी । स्वर्णिम वर्ण में प्रतिभा थी । काम सहचरी रति तुल्य रूपवती थी । सहसा उसमें उत्पन्न हुए संकोच ने उसका अप्रतिम रूप और बढ़ा दिया । उस रूप को देखकर बृहस्पति का मन चंचल हो गया ।

"ममते !" कामार्त बृहस्पति ममता के समीप आते बोले, "तुम्हारा यह रूप, यह यौवन, यह आकर्षण, मेरे लिए असहनीय हो गया है ।"

"बृहस्पति !" ममता वस्त्रों में अपने अंग उपांगों को समेटती बोली, "आपका यह अशोभनीय व्यवहार ? मैं आपके ज्येष्ठभ्राता की पत्नी हूँ । इस शरीर पर आपका अधिकार नहीं है ।"

"यौवन और रूप सबकी आँखें देखती हैं । उन्हें छिपाकर रखना होता, तो देव इतनी सुन्दर रचना क्यों करते !" रति सुख के अभिलाषी बृहस्पति ने लज्जा को तिलांजलि दे दी थी ।

"ओह !" ममता सहमी ।

स्थान एकान्त था। पादपों की मंजरियाँ सुरभि दान कर रही थीं। मरुत के शीतल स्वास्थकर प्रवाह ने कामोत्तेजित शरीर में बल बढ़ा दिया था। बृहस्पति की सतर्क दृष्टि ने चारों ओर देखा।

प्रकृति मुसकरा रही थी। सरोवर में हंस-हंसिनी किलोलरत थे। पद्म प्रफुल्लित थे। कुमुदिनी अमुकुलित थी। पद्म सूर्य को देखकर प्रसन्न था। कुमुदिनी शशि के वियोग में उदास थी। पुष्पित पुष्प पर भ्रमरी बैठी थी। उसके चारों ओर भ्रमर फिरता था। गुनगुनाता था। आकुल होता था। भ्रमरी का पीछा करता उड़ता था।

न्यग्रोध वृक्ष से फल जलाशय में 'डब्ब-डब्ब' गिरते। सर द्वारा उद्भूत ध्वनि स्थान की नीरवता भंग कर देती। गिरे फल को लेने हंस और हंसिनी दौड़ते। हंस बाजी मार लेता। लम्बी चोंच डुबाकर फल निकालता। स्नेह से हंसिनी के मुख में डाल देता था। हंसिनी प्रसन्न हो जाती। हंस की लम्बी ग्रीवा पर अपनी कोमल ग्रीवा रख देती थी।

प्रकृति के सरस वातावरण में बृहस्पति आन्तरिक काम जन्य सरसता का अपूर्व अनुभव करने लगे। मन को ढील देने में उन्हें विचित्र अनुभूति होने लगी। ममता के स्पर्श सुख में खो जाने के लिए तैयार हो गये। वे ममता की ओर बढ़े।

"नहीं-नहीं-नहीं !" कृशांगी लतातुल्य ममता बल खा उठी।

ममता के उस नारी रूप ने, उस सलज्ज रूप ने, उसकी लावण्यता को असीमित छोर तक पहुँचा दिया। बृहस्पति पर पूर्वा सब भूल गये। काममय हो गये।

सुन्दरी युवती नारी की भीरुता ने कामाग्नि में घृत का कार्य किया। कामाग्नि प्रज्ज्वलित हो गयी। ज्वाला उठने लगी। उन लपटों में बृहस्पति ने लीन होना चाहा। अस्तित्व खोना चाहा। पागल कामी बनना चाहा।

अबला ममता पुरुष बल का सामना न कर सकी। बृहस्पति के बाहुपाश में लता तुल्य सिकुड़ गयी। विकलित ममता ने बृहस्पति से आर्त निवेदन किया, "बृहस्पति ! मेरे गर्भ में तुम्हारे बड़े भाई की सन्तान है—।"

"ममता ! मैं तुम्हारे रति-दान का अभिलाषी हूँ। तुम्हारा गर्भ मेरे कर्म में बाधा नहीं डाल सकता।"

वासना के तीव्र प्रवाह में बृहस्पति प्रवाहित हो चुका था। वर्षाकालीन क्षुद्र नदी की प्रचण्ड वेगवती धारा की तरह वासना-वेग किसी व्यवधान से रुकने वाला नहीं था। सबका अतिक्रमण करता जल प्लावन तुल्य बह चला।

बृहस्पति कामवासना के प्रचण्ड वेग में ममता को लेकर डूबना चाहता था। उसमें एकाकार हो जाना चाहता था। वासना प्लावन में उसे प्लावित कर मिट जाना चाहता था।

"निर्दय !" ममता बाहुपाश में छटपटाती बोली, "अपने ज्येष्ठ भ्राता का गर्भ नष्ट करना चाहते हैं ?"

कामार्त के बाहुपाश में किसी नारी की दया-याचना, उसका व्याकुल होना कामाग्नि में आहुति होती है। बृहस्पति की कामाग्नि धूम्रहीन अंगार सदृश हो गई। उस मैथुनार्थी ने निर्दयता पूर्वक कहा, "ममता !" तुम्हारी विनय नहीं, प्रसंग का इच्छुक हूँ।" सीमाहीन वासना में बृहस्पति का दुराग्रह मर्यादा पार करता गया।

कामिनी कामवासना के प्रबल प्लावन में भूमि पर आ गयी।

× × ×

"बृहस्पति !" गर्भस्थित गर्भ ने बृहस्पति के शुक्रोत्सर्ग के समय कहा, "मैं यहाँ पूर्व से ही सम्भूत हूँ।"

"बैठा रह।" बृहस्पति ने उपेक्षापूर्वक कहा।

"शुक्र को संकर करने का अनुचित कार्य मत कीजिए।"

"चुप—।"

किन्तु गर्भ ने प्रतिरोध किया। बृहस्पति को प्रतिरोध सहन नहीं हुआ। वे साहस करने लगे।

गर्भ का प्रतिरोध बढ़ता गया। कामोत्तेजना में ठेस लगती गई। रति-सुख में बाधा पड़ती गयी। अतृप्त वासना की प्रतिक्रिया प्रतिहिंसा में हुई। काममूर्ति क्रोधमूर्ति हो गई। उन्होंने आवेश में शाप दिया :

"तुम जन्म लेते ही अन्धे होगे।" कामान्ध बृहस्पति ने गर्भस्थित निर्दोष शिशु को जन्मान्ध होने का शाप दिया।

ममता रो उठी। बृहस्पति ने क्रूरतापूर्वक कहा, "ले तेरा शिशु दीर्घ तमस्वती होगा।"

मां का हृदय, ममता का हृदय, शिशु के अन्धकारमय भविष्य की कल्पना कर विचलित हो गया और काममूर्ति बृहस्पति की परिवर्तित क्रोधमूर्ति, शीघ्रता-पूर्वक पादपों में लोप होने लगी।

× × ×

दीर्घतमा ने गर्भ का त्याग किया। भूमि का स्पर्श किया। उनके विमल नेत्र थे। सब लोग प्रसन्न थे। परन्तु शाप के कारण नेत्रों की ज्योति लुप्त हो गयी। शिशु अन्धा हो गया।

दीर्घतमा मेधावी थे। उन्हें माता के नाम पर "मामतेय" कहा गया। वे कुशल गायक हुए।

दीर्घ तम अर्थात् दीर्घ अन्धकारमय जीवन कष्टप्रद होगा। दूसरों का आश्रित रहना पड़ेगा। देवतागण दीर्घतमा की इस स्थिति पर दुःखी हो गये।

कालान्तर में दीर्घतमा ने देवताओं की शरण ली। नेत्र प्राप्ति के लिए स्तवन किया, उसने जातवेदस अग्नि निमित्त स्तवन आरम्भ किया। दिव्य वाणी का संचार कण्ठ में अनायास होने लगा। मन्त्र मुख से स्वयं उच्चरित होने लगे। उसने मन्त्रों का दर्शन किया।

"वेदों में प्रतिष्ठित ज्योतिर्मय अग्नि के लिए हवि सम्पादन कीजिए। अपने स्तोत्रों के वसन द्वारा तमनाशक पवित्र ज्योतिस्वरूप रथ वाले अग्नि को आच्छादित कीजिए। अग्नि एक मुख से हवि और दूसरे मुख से वन वृक्षों को भक्षण करते हैं। दो बार प्रकट हुए अग्नि तीन प्रकार के अन्नों को प्राप्त करते हैं। और उन्हें पुनः एक वर्ष में वार्धक्य प्रदान करते हैं। अग्नि चारों तरफ से स्पर्श करते हैं।

शब्दवान् अग्नि जब श्वास लेते हैं, उनके श्वास द्वारा उद्भूत स्फुलिंग दिशाओं में विकसित होते हैं। अन्धकार का नाश करते हैं। अग्नि औषधियों को व्याप्त करते हैं। उनके कारण औषधियाँ वार्धक्य प्राप्त करती हैं। उनमें दिव्य गुण व्याप्त हो जाता है। तत्पश्चात् अग्नि तथा औषधियाँ संयुक्त होकर पृथ्वी तथा आकाश को दिव्य करती हैं।

"लम्बी शिखाएँ अग्नि का स्पर्श करती हैं। मृत्यु प्राप्त होने पर अग्नि मिलन आकांक्षा में प्राणमय हो उठती है। अग्नि उनका वृद्धत्व तिरोहित कर गरजते चलते हैं। माता पृथ्वी के परिधान स्वरूप तृण और औषधियाँ हैं। अग्नि देव उन्हें चाटते हैं। विद्युत गति से चलते हैं। द्विपद तथा चतुष्पदीय प्राणियों को शक्ति देते हैं। वे जिस मार्ग से गमन करते हैं, उनका पार्श्ववर्ती भाग काला होता चलता है। दानशील के घर अग्नि प्रदीप्त होते हैं। वृषभ तुल्य श्वास लेते हैं। किशोरावस्था में कवचधारी व्यक्ति के समान, अग्निदेव कुमार प्रतीत होते हैं।

"अग्ने ! तुम्हें उत्तम रूप से कथित यह स्तोत्र सर्वाधिक प्रिय हो। आपका निर्मल भासुर शरीर दमकता है। रमणीय धन को आप दें। हमारे गृह के मनुष्यों तथा योद्धा रथी को यज्ञस्वरूप नाव पर, पार लगाकर, आश्रय प्रदान

करें। आपकी कृपा से अभीष्ट सिद्ध होता है। सत्य वाणी प्रसारित होती है।

"अग्ने ! आप अन्न में व्याप्त हैं। कल्याणकारी सात मातृस्वरूप धातु में व्याप्त हैं। आपको घर्षण द्वारा दस उंगलियाँ उत्पन्न करती हैं। ऋत्विजों ने यज्ञ सिद्ध करने वाले अग्नि को उत्पन्न किया है। अग्नि को उत्कृष्टता निमित्त चारों तरफ ले जाते हैं। वह औषधियों पर आरोहण करते हैं। अरणि मंथन द्वारा प्रकट होते हैं। उस समय उनका युवा रूप होता है। वे सब प्रकार की औषधियों की तरफ गति करते हैं। विश्वधारक अग्नि, पोषण निमित्त, बल बुद्धि द्वारा मानवों के स्तोत्रों में प्राप्त होते हैं। एतदर्थ उन्हें होता स्वरूप वरण किया जाता है।

"वे यजमान तथा देवता दोनों के लिए अन्न की कामना करते हैं। पूजनीय अग्नि मरुत की प्रेरणा द्वारा अबाध गति से गतिशील होते हैं। उस समय उनकी यात्रा समाप्त होती है। पीछे काला मार्ग तथा राख ही अविष्ट रह जाती है। रथी के समान अग्नि आकाश की यात्रा करते हैं।

"अग्ने ! धृत नियमा वरुण, दान शील, अर्यमा तथा मित्र तुम्हारे द्वारा प्रेरणा प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार रथ का चक्र अरों को व्याप्त कर रहता है, उसी प्रकार यज्ञकर्मों द्वारा अग्नि प्रकट होते हैं।

"युवा अग्ने ! सोम निष्पन्न करने वाले स्तोता को वैभव दो। हम आपकी भग के समान पूजा करते हैं। आप दोनों लोकों को अश्वों के रासों के समान अपने नियन्त्रण में रखते हो। हमारी स्तुति को आप देवताओं के पास पहुँ-चाते हैं।

"अग्ने ! प्रदीप्त होकर हम यजमानों के लिए देवताओं को लाइये। इस सोम अभिषय करता के लिए, पुरातन यज्ञ को बढ़ाइये। अग्ने ! हम आपकी स्तुति करते हैं।

"इन्द्र को यहाँ लाइये। हमारा यह स्तोत्र आपके निमित्त कहा गया है। ऋत्विज यज्ञ स्थान में कुशा बिछाते हैं। विशाल मण्डप को देवताओं के आह्वान तथा इन्द्र के लिए सुसज्जित करते हैं।

"देवों द्वारा स्थापित भारती, सरस्वती और इला तीनों हमारे बिछाए कुशासन पर बैठें। त्वष्टा पुष्टिकारक जल की वृष्टि करे। वनस्पते ! आप स्वयं देवताओं के समीप जाकर यज्ञ कीजिए। मेधावी अग्नि देवताओं को हवि पहुँचाते हैं। हे इन्द्र ! हमारे मन्त्रों के आह्वान पर आइए। हवि का सेवन कीजिए। हम आपका यज्ञ में आह्वान करते हैं।

"वल के पुत्र अग्नि हैं। उन्हें नवीन स्तोत्र की भेंट करता हूँ। वे जल से

उत्पन्न हुए हैं। होता स्वरूप, धनसहित, यज्ञ स्थान में विरजाते हैं। अग्नि मातरिश्वा के आकाश में उत्पन्न हुए हैं। उनके उज्ज्वल कर्मों से आकाश एवं पृथ्वी दोनों प्रकाशित हैं। वे समुद्र तुल्य रात्रि को पार करते हुए कभी कम्पित नहीं होते। मरुतों के शब्द, आक्रमक सेना तथा वज्र के समान अग्नि बाधा रहित हैं। वनों को भस्म करते हैं।

"अग्नि की ज्वालाएँ देवस्थान में वेदी से निकलती हैं। जल ने अन्त में अन्तर्हित अग्नि से प्रकट होकर अपना गुण ग्रहण किया है। समान वय के दो व्यक्ति अग्नि की सर्वदा पूजा करते हैं। वे अग्नि कभी वृद्ध नहीं होते। सर्वदा युवा रहते हैं। हवि का भक्षण करते हैं। वे वाण वेग से नवीन स्तुतियों को धारण करते हैं।

"अग्नि सर्वत्र हैं। सर्वत्र गमनशील हैं। स्तुति पात्र हैं। अभीष्टयुक्त हैं। महा-बली हैं। स्थिर चित्त व्यक्ति किसी की प्रथम तथा अन्तिम बात को विस्मरण नहीं करता। अतएव अहंकार शून्य व्यक्ति अग्नि का आश्रय ग्रहण करता है। यज्ञ के सिद्धिदायक अग्नि, बालक के समान बल वृद्धि प्राप्त करते हैं। अग्नि प्रकट होते ही विचरणशील हो जाते हैं। अविलम्ब हवियाँ ग्रहण करते हैं। श्रान्ति की क्लान्ति मिटाकर उसे प्रसन्न करते हैं। वन में विचरणशील अग्नि, ईंधन में प्राप्त होते हैं। यज्ञ ज्ञाता अग्नि, यज्ञ में रहकर, यज्ञ कर्म में प्रेरित करते हुए ज्ञान प्रकाश करते हैं।

"तीन मस्तक, सप्त रश्मि वाले, अन्तरिक्ष में विद्यमान, ज्योतिर्मय नक्षत्रों में तेज स्वरूप स्थित, अग्नि का स्तवन कीजिए। अग्नि जरारहित हैं। रक्षा, साधनयुक्त हैं। पृथ्वी के मस्तक पर अपने पादों को रखते हैं और ज्वालाएँ मेघ स्वरूप स्तन का पान करती हैं। अग्नि की इच्छा से समुद्र को सब ओर से देखा गया, तो मनुष्यों का कल्याणकारी सूर्य उत्पन्न हुआ। दिशाओं के विजेता अग्नि लघु तथा विशाल प्राणियों के जीवनदायक हैं।

"अग्नि ! आपको एक मनुष्य पीड़ा पहुँचाता है। एक स्तुति करता है। मैं आपकी स्तुति करने वाला हूँ। अद्‌भुत अग्नि वृक्षों का चर्वण करते हैं। प्रकाश द्वारा वन ज्योतिर्मय होता है। इनकी ज्वाला को मरुत वेग से बढ़ाता है। मेधावी अग्नि ! आप अत्यन्त यशस्वी हैं। सबको प्रसन्न करते हैं। हम आपके साधक सर्वदा वृद्धि प्राप्त करें।"

दीर्घतमा ने फिर मित्रा-वरुण का स्तवन किया :

"मित्रा वरुण ! अभीष्टदायी सोमरस को ऋत्विजों ने अर्पण किया है। आपकी उत्पत्ति आकाश पृथ्वी से बतायी गई है। यज्ञों में स्तुतियों द्वारा आप

प्राप्त होते हैं। आप जब धर्म मार्ग को उन्नत करते हैं, तो यज्ञस्थ ज्वालाएँ आपका स्तवन करती हैं। हवि देने वाला स्तोता तथा स्तोत्रकार कवि, दोनों के यज्ञों को आप काम्य बनाते हैं। आप दोनों तेज स्वरूप वस्त्रों को धारण करते हैं। आपकी सृष्टियाँ सुन्दर हैं। छिद्र रहित हैं। पद रहित उषा पदीय मानवों से आगे जाती है। रात्रि का गर्भस्थ पुत्र सूर्य है। संसार का भार वहन करता है। सत्य को दृढ़ करता है। असत्य को मिटाता है। जल रूप घृतवर्षक मित्रा-वरुण घृतयुक्त हवियों से आपकी पूजा करते हैं। आपकी स्तुति तेज प्रेरक है। आपकी स्तुतियों से मैं तेज प्राप्त करता हूँ।"

दीर्घतमा ने तत्पश्चात् विष्णु का स्तवन किया :

"विष्णो ! आपने तीन पद से लोकों को नाप लिया है। उसमें सम्पूर्ण जगत निवास करता है। त्रिगुणात्मक आकाश, पृथ्वी तथा लोकों को आपने धारण किया है। उस विष्णु के विस्तृत पदाम्बुज का मैं आश्रय चाहता हूँ।

"विष्णु बन्धु हैं। उनका परम पद माधुर्य का केन्द्र है। इन्द्र वृष्टि से अन्न देते हैं। अन्न रूप वीर्य रज से सन्तान प्राप्ति होती है। उसी से त्रितीय नाम पौत्र पड़ा है। प्राणियों की उत्पत्ति इन्द्र और विष्णु के अधीन है। प्राणी विष्णु के केवल दो पदों को देखते हैं। तीसरे पद तक पहुँचने का कोई साहस नहीं करता। आकाशगामी मरुत गण भी वहाँ नहीं पहुँच पाते हैं। विष्णु ने काल के ९४ अंशों को चक्र की तरह घुमाया है। उत्तम कर्मा विष्णु और इन्द्र की सेवा में हम तत्पर हैं। वे त्रैलोक्य पति हैं। यजमान को यज्ञ फल का भागी बनाते हैं।"

दीर्घतमा ने अश्विनी कुमारों का स्तवन किया :

"अश्विनौ ! मातृभूमि को मधु और घृत से सिंचित कीजिये। जिस प्रकार तीन पहियों वाले द्रुतगामी रथ शीघ्रगामी अश्वों के कारण युद्ध में दौड़ जाते हैं, उसी प्रकार मैं आपकी शरण शीघ्रतापूर्वक प्राप्त करूं। मैं पृथ्वी पर आपके शरण निमित्त नत मस्तक खड़ा हूँ।

"अश्वि द्वय आप मुझे वली बनाइए। आयु की वृद्धि कीजिए। पाप को हर लीजिए। आप श्रेष्ठ वैद्य हैं। रथी हैं। मैं अपने चित्त से हवि देता हूँ।"

दीर्घतमा ने द्यावा पृथ्वी का स्वतन किया :

"ज्ञानवर्द्धिनी आकाश और पृथ्वी की मैं उपासना करता हूँ। यजमान आपके पुत्र स्वरूप हैं। मैं आकाश रूप पिता और पृथ्वी रूप माता के महत्त्व का चिन्तन करता हूँ। आप एक स्थान से उन्पन्न हुई हैं। किरणें आपका विभाजन करती हैं।"

दीर्घतमा ने ऋतुओं की स्तुति की :

"सुधन्वा पुत्रो ! आपने गौओं को पुनर्जीवन दान दिया है। वृद्ध पिता को युवावस्था दी है। आपने अश्व से अश्व उत्पन्न किया है। प्राणियों के लिए ऊँचे स्थान पर तृणादि तथा निम्न स्थानों में जल प्रकट किया है। हम पर दया करो।"

दीर्घतमा ने अश्वौऽग्नि की स्तुति की :

"अश्व ! आप समुद्र से निकलकर शब्द करते हैं। श्येन के समान आपके पंख हैं। हरिण के समान बाहु हैं। इन्द्र प्रथम बार आप पर आरूढ़ हुए थे। गन्धर्वों ने आपका रास पकड़ा था। आप पय रूप हैं। सूर्य रूप हैं। गोपनीय नियम वाले त्रित हैं। आकाश, जल, अन्तरिक्ष, आपके तीन बन्धन स्थान हैं। आप वरुण हैं। आपके पीछे रथ चलता है। मनुष्य, गौ आदि आपके पीछे चलते हैं। नारियों का सौभाग्य आपके पीछे चलता है। आपका मस्तक स्वर्ण से सुसज्जित है। पाँवों पर लौह आवरण चढ़ा है। आप उड़ने में समर्थ हैं। वायु वेग से चलते हैं। विविध स्थानों में भ्रमणशील हैं।"

दीर्घतमा ने विश्व देवों की स्तुति की :

"सूर्य के आप मध्यम भ्राता हैं। वायु के कनिष्ट भ्राता अग्नि हैं। प्रजापालक ज्येष्ठ भ्राता सूर्य सात रश्मियों से युक्त हैं। एक पहिये वाले रथ में सात अश्व जोते गये हैं। इसे सात अश्व चलाते हैं। किरण स्वरूप सात बहनें इसके आगे चलती हैं।

"एक चक्र और तीन नाभि वाले रथ को एक अश्व खींचता है। जगत इस एक चक्र पर आश्रित है। सूर्य का बारह राशियों रूप अरों से युक्त रथ-चक्र आकाश के चारों ओर बारम्बार घूमता है। वह कभी पुरातन नहीं होता। इस चक्र में ७२० पुत्र रूप बन्धु स्थित हैं। पाँच पैर और बारह रूप से युक्त जल स्वामी को आकाश के परले ऊर्ध्व भाग में स्थिर बनाते हैं। कोई उन्हें सात चक्र और छः अरों वाले रथ पर आरूढ़ बताते हैं। इस चक्रित पाँच अरों वाले रथ में लोक स्थित हैं। उसका धुरा भार वहन करने पर भी क्षीण नहीं होता। अक्षय चक्र घूमता है। दस घोड़ें इसे चलाते हैं। अन्धकाराच्छदित सूर्य का तेज चमकता है। उसमें सब भुवन स्थित हैं। सहजात ऋतु में अधिक मास वाली ऋतु एकांकी रहती है। छः ऋतुएँ परस्पर जुड़ी हैं। क्रमशः गमनशील होती हैं।

"जिसमें प्राणी अमर भाव के चिन्तनार्थ स्तुति करते हैं। वह लोकपालक सबका स्वामी इस सूर्य में विद्यमान है। पृथ्वी पर गायत्री छन्द, अन्तरिक्ष में त्रिष्टुप छन्द, आकाश में जगती छन्द, जिसने स्थापित किया है, उसे जो जानता है वह देवत्व प्राप्त कर चुका है। गायत्री छन्द से ऋचाएँ रची गई हैं। ऋचाओं

से साम की रचना की गयी है। त्रिष्टुप छन्द से यर्जुवाक्य बनाया गया है। दो पद और चार पद वाली वाणी से वाक् रचना की गयी है। अक्षर से सात छन्द बनाये गये हैं। जगती से आकाश में जलों को स्थापित किया गया है। रथन्तर साम में सूर्य को देखा गया है। गायत्री के तीन चरण हैं। अतएव वह बल और महत्त्व में सबसे बड़ी है।

"पालन कर्त्ता पिता आकाश है। विस्तीर्ण पृथ्वी माता है। आकाश पृथ्वी के मध्य अन्तरिक्ष योनि रूप है। वहाँ पिता गर्भ स्थापन करता है। जलों की प्रेरक विद्युत शब्दवान हुई है। वह उन्नत आकाश में एक, दो, चार, आठ और नौ पदों से युक्त सहस्त्र अक्षरोंवाली हुई। उसी से समुद्र प्रवाहित है। उससे चारों दिशाएँ रक्षित हैं। उससे मेघ जल वर्षा करते हैं। संसार उससे प्राणवान है। केश युक्त तीन देवता नियम क्रम से दर्शन देते हैं। एक वर्ष में बोता है। एक बलों से संसार देखता है। एक का रूप नहीं दिखाई देता। केवल गति दिखायी देती है। सूर्य, अग्नि, वायु, और वाणी चार हैं। उसके तीन पद अज्ञात हैं। चौथे पद को मनुष्य बोलते हैं। उसे इन्द्र मित्र वरुण कहते हैं। वह आकाश में सूर्य है। वही अग्नि है। वही मातारिश्वा है। वह एक है। परन्तु सदा विप्र उसे बहुत कहते हैं।

"मैं अनभिज्ञ होने के कारण पूछता हूँ। इन छः लोकों को स्थिर रखने वाले अजन्मा क्या एक ही हैं? इस आदित्य रूप पक्षी के स्थान का कौन ज्ञाता है? आकाश से नीचे पृथ्वी के ऊपर वत्स को धारण करती हुई, किरणें ऊपर उठती हैं। वे कहाँ जाती हैं? कहाँ से आती हैं? कहाँ से दिव्याचरण वाला मन उत्पन्न हुआ है? जो यहाँ आने वाले हैं। वे वहाँ जाते हैं। वहाँ वाले यहाँ आते हैं। यह कौन है?

"मैं पृथ्वी का छोर पूछता हूँ? संसार की नाभी कहाँ हैं? अश्व का वीर्य कहाँ है? वाणी का परम स्थान कहाँ है? क्या वेदी पृथ्वी का अन्त है? क्या यज्ञ संसार की नाभी है? क्या सोम अश्व का वीर्य है? ब्रह्म वाणी का परम स्थान नहीं है?

'अमर मरण धर्मा के साथ रहता है। अन्नमय शरीर पाता है। कभी ऊपर जाता है। कभी नीचे आता है? दोनों विरुद्ध गति वाले हैं। विश्व उनमें एक को पहचानता है। किन्तु दूसरे को नहीं जानता। जिस रथ के बाहर घेरे, एक चक्र और तीन नाभियाँ हैं, उस रथ का ज्ञाता कौन है?

"यजमानों ने अग्नि से यज्ञ किया। वही प्रथम धर्म था। जल का एक ही रूप है। यह कभी ऊपर जाता है कभी नीचे आता है। मेघ वर्षा द्वारा पृथ्वी

को तृप्त करता है। अग्नियाँ आकाश को प्रसन्न करती हैं। जल तथा औषधियों के कारण भूत प्रत्यक्ष्य हुए, स्रोताओं के निमित्त वर्षा से तृप्त करने वाले, रस-युक्त आकाश में स्थित दर्शनीय सूर्य का बारंबार आह्वान करता है।"

दीर्घतमा के मार्मिक, दार्शनिक स्तवन से देवताओं को उस पर दया आ गई। उसे चक्षु प्राप्त हो गये। दीर्घतमा लोक में द्रष्टा तथा देवता बन गया।

× × ×

"यह वृद्ध मरता नहीं ?" दीर्घतमा के एक परिचायक ने मुँह बनाते हुए कहा।

"केश श्वेत हो गये। शरीर चलता नहीं। तथापि जीने की लालसा है।" दूसरे ने कहा।

"आँखों से दिखाई नहीं देता। उसे ढोते-ढोते थक गया हूँ।" त्रैतन ने मुँह बनाकर कहा।

"देखें ! इससे कब छुट्टी मिलती है। लाठी के सहारे चलता है। जीवन से उबता नहीं।" परिचायक ने वृद्ध दीर्घतमा का उपहास करते हुए कहा।

"पिण्ड छुड़ाना चाहिए।" दूसरे परिचायक ने कहा।

"ठीक कहा तुमने।" त्रैतन ने कहा।

खिन्न परिचायक षडयन्त्र में लग गये। अपने स्वामी वृद्ध तपस्वी दीर्घतमा से छुटकारा पाने के लिए।

× × ×

गम्भीर नदी थी। निर्मल जल था। स्नान करने की अनायास इच्छा होती थी।

दीर्घतमा के परिचायक उसे स्नानार्थ नदी तट पर ले आये। दीर्घतमा की इन्द्रियाँ शिथिल थीं। यष्टि का सहारा लेकर खड़ा था। कमर झुकी थी। तथापि तपस्वी था। द्रष्टा था। उसकी हत्या सरल नहीं थी।

स्नान निमित्त परिचायकों के सहारे नदी में उतरा। क्रूर परिचायकों ने उसे गहरे जल में धकेल दिया। दीर्घतमा हाथ-पैर पटकता सहायता के लिए आर्तनाद करने लगा। परिचायक उसे डूबता न देखकर घबराये।

त्रैतन ने तुरन्त अपनी कृपाण निकाली। दीर्घतमा जल में मृत्यु से जूझ रहे थे। त्रैतन ने कृपाण द्वारा उन पर आक्रमण किया। क्रूर त्रैतन को वृद्ध पर दया नहीं आई।

आश्चर्य—! परिचायक भागे। त्रेतन का शस्त्र दीर्घतमा पर आक्रमण नहीं कर सका, बल्कि उसी के शरीर के शिर, स्कन्ध एवं वक्षस्थल के टुकड़े उसी की कृपाण से हो गये। उसका मृत शव जल में बह चला।

दीर्घतमा संज्ञाशून्य हो गये। जल प्रवाह में बहते रहे। कहीं सरिता-तट पर जाकर लगे। वहाँ वे पुन: जीवन प्राप्त कर सके। शत वर्षीय आयु प्राप्त की और एक दिन अनेक सूक्तों का द्रष्टा ब्रह्मलीन हो गया।

नोट: पुराण तथा महाभारत में दीर्घतमा की कथा दी गयी है। ऋषि बहते-बहते अंगदेश में पहुँचे। वहाँ जलधारा से निकाले गये।

अंगराज की दासी उशिज सन्तानहीन थी। पुत्र कामना से राजा ने उसे ऋषि के पास भेजा। ऋषि द्वारा उसे कक्षीवत आदि सन्तानें उत्पन्न हुईं। सत्कृत होकर ऋषि ने वहाँ सुख-पूर्वक जीवनयापन किया।

ऋग्वेद में यह घटना नहीं वर्णित है, वृहद्देवता में है। परन्तु ऋग्वेद-कालीन आर्यों को अंगदेश का ज्ञान नहीं था। यह घटना कथा को पूरा करने के लिए कालान्तर में मिला दी गयी है। अतएव उसे यहाँ नहीं दिया गया है।

आधार ग्रन्थ :

ऋषि : दीर्घतमा : देवता : अग्नि ऋग्वेद १ : १४०-१६४
तथा १ : १५२ : ६, १ : १५८ १, ६ १ : १४७ : ३, ४ : ४ : १३,
८ : ६ : १०
एतरेय ब्राह्मण : ८ : २३
वृहद्देवता : ४ : ११-२५
साव्यायन आरण्यक : २ : १७

१. इड़ा—ऋग्वेद में एक देवी के रूप में उल्लिखित है। गौ का पर्यायवाची कहा गया है। अग्नि को इड़ा का पुत्र माना गया है। इड़ा को मनु की पुत्री भी कहा गया है। इला रूप से भी यह शब्द प्रचलित है।

२. उचथ्य—अंगिरस का पुत्र था। इसकी माता का नाम स्वराज्य था। पत्नि का नाम ममता था।

३. त्रेतन—एक दास था। त्रित का सहायक था। त्रित जिन्दावस्था वर्णित 'थ्रित' है।

४. दीर्घतमस—ममता का पुत्र होने के कारण नाम मामतेय पड़ा था। इसे औचथ्य भी कहते हैं। सूक्ष्मद्रष्टा ऋषि था। मन्त्र गायक था। सौ वर्ष तक जीवित रहा।

५. भारती—एक देव पत्नी। ऋग्वेद काल में सरस्वती के लिये भी इस शब्द का प्रयोग किया गया है।

६. ममता - उचथ्य की पत्नी और दीर्घतमस की माता थी। कालान्तर में ममत्व के अर्थ में इसका प्रयोग होने लगा।

७. विष्णु—वेद में प्रकाश तथा सूर्य का मूर्त रूप माना गया है। विशेषतः उस काल में जब उनके पदन्यास का वर्णन आता है। यहाँ सूर्य, विद्युत तथा अग्नि किंवा उदय प्रकाश एवं अन्न से तुलना की जा सकती है। वेद में इन्द्र के सहायक रूप में भी वर्णन है।

८. बृहस्पति—वैदिक साहित्य में एक देवता का नाम है। उन्हें उपासना तथा प्रार्थना का स्वामी कहते हैं। देवों के पुरोहित हैं। प्रज्ञा के देवता हैं। इनका 'सदस्पति' 'ज्येष्ठ राज' तथा 'गणपति' नाम भी वेद में मिलता है। इन्द्र के साथ युगल रूप में भी इनका वर्णन वेद में मिलता है। बृहस्पति रूप से वेद में १२० और ब्रह्मणस्पति रूप से लगभग ५० बार नाम आया है। आकाश के महान प्रकाश से इन्होंने जन्म ग्रहण किया था।

९. सरस्वती—यहाँ पर वाक् देवी के अर्थ में सरस्वती शब्द का प्रयोग किया गया है।

मित्रावरुण—वेद में युगल रूप से उनका उल्लेख बहुत स्थानों पर मिलता है। अग्नि जब प्रज्वलित होते हैं तो मित्र और जब जन्म लेते हैं तो वरुण होते हैं। मित्र दिन तथा वरुण रात्रि के देवता हैं।

मित्रा—वैदिक देवता हैं। मित्र से सम्बन्धित केवल एक सूक्त वेद में मिलता है। शेष वरुण के साथ मित्रावरुण रूप में मिलता है। पारसियों के ग्रन्थ में वर्णित 'मिथ्र' वैदिक देवता मित्र है। मित्र एक सूर्य किंवा सूर्य से सम्बन्धित प्रकाश के देवता हैं। मित्र का अर्थ साथी होता है। अतएव वेद में यह देवता दयालु स्वभाव के चित्रित किये गये हैं। मित्र का शान्ति देवता के रूप में वर्णन मिलता है। इन्हें महान आदित्य कहा गया है। यह मनुष्यों में एकता लाते हैं। यह आकाश तथा पृथ्वी को पोषित करते हैं। मानवों की पाँच जातियाँ इनके आदेश का पालन करती हैं। मित्र दिन के देवता हैं।

वरुण—वैदिक देवता हैं। देवों तथा मर्त्यों दोनों के राजा हैं। वरुण के नेत्र सूर्य हैं। दूरदर्शी तथा सहस्र नेत्र वाले हैं। वरुण का गृह स्वर्ण निर्मित है। वरुण के गुप्तचर दोनों लोकों का अवलोकन करते हैं। उन्हें प्रतिदिन सूचना देते हैं। वह जल के देवता हैं। सृष्टि के भौतिक तथा नैतिक नियमों के सर्वोच्च प्रतिपालक हैं।

सुधन्वा—अंगिरस वंशज था। इसके पुत्रों तथा वंशजों के लिये 'सौधन्वन' तथा सुधन्वन' शब्द ऋग्वेद में प्रयुक्त किया गया है।

इन्द्र, मरुद्गण और अगस्त्य

आकाश में इन्द्र भ्रमण कर रहे थे। एक समय मरुतों के साथ नीचे चले। मरुतों को नीचे गिरा देखा। इन्द्र ने उनको तुष्ट किया।

इन्द्र ने मरुतों को सम्बोधित किया, "मरुद्गण ! किस सौभाग्य के कारण आप समवयस्क हैं ? समस्थानीय हैं ? समशोभा युक्त हैं ? आप किस देश से आये हैं ? आपका मन्तव्य क्या है ? वृष्टिकारक ! आप क्या धन की कामना से शक्ति की पूजा करते हैं ?"

"तरुणवर !" इन्द्र ने पुनः प्रश्न किया, "किनकी हवियाँ आप ग्रहण करते हैं ? आपको अपने यज्ञ के लिए कौन आकर्षित करता है ? अन्तरिक्ष में श्येन पक्षी की तरह विचरणशील मरुतो ! आप लोगों का किन श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा स्तवन किया जाय ?"

"देवेन्द्र !" मरुतों ने स्वयं इन्द्र से प्रश्न किया, "आप गौरव के पात्र हैं। तथापि एकाकी कहाँ जा रहे हैं ? इसका क्या अर्थ है ? हम आपका अनुकरण करते हैं।"

"शोभन !" मरुतों ने पुनः कहा, "आप पूछते हैं ? आप सुमधुर शब्दों में हम से कहिये आप क्या कहना चाहते हैं ?"

"मरुद्गण !" इन्द्र ने अपने वज्र की ओर देखते हुए कहा, "स्तुतियाँ तथा निष्पन्न सोम से मुझे सुख मिलता है। हवियाँ मेरे लिए हैं। मेरा लक्ष्य एवं वज्र शत्रुओं पर सीधा प्रहार करता है। मानव मेरी पूजा करते हैं। उनका स्तोत्र मैं प्राप्त करता हूँ। मेरे अश्व मेरे उपासक हैं। पूजा स्थान पर ले जाते हैं।"

"इन्द्र !" मरुतों ने कहा, "अपनी पूर्ण गरिमा के साथ हम स्वयं सजकर, अपने अनुशासित अश्वों के साथ यज्ञ के समीप आपकी सेवा में खड़े रहते हैं। और आप हमारे यज्ञीय हवि को सचमुच ग्रहण करते हैं।"

"मरुद्गण !" इन्द्र ने उपालम्भ देते हुए कहा, "कहाँ वह यज्ञीय हवि

आपके लिए रखी गयी है ? मैंने वृत्र का वध किया है। हवियाँ केवल मेरे लिए निश्चित हैं। मैं विकराल हूँ। मैं बली हूँ। मैं दुर्जय हूँ। मैंने शत्रुओं पर वज्र द्वारा विजय प्राप्त की है।"

"ऐश्वर्य शालिन् !" मरुतों ने कहा, "आपने बहुत कर्म किये हैं। परन्तु वह सब हमारी संयुक्त शक्ति के कारण सम्पादित हुए हैं। महाबले ! हम लोगों ने भी बहुत कर्म किये हैं और अपने कर्म द्वारा अपनी इच्छानुसार हम मरुत हैं।"

"मरुद्गण !" इन्द्र ने मरुतों की गर्वोक्ति का उत्तर दिया, "मैंने अपने पराक्रम से, मैंने अपने उग्र क्रोध से, वृत्र-वध किया है। मैं वज्रधर हूँ। मैंने प्राणियों के हित निमित्त निर्मल मृदु गतिशील सलिल का सृजन किया है।"

"मघवन् !" मरुतों ने उत्तर दिया, "आपसे बढ़कर कौन धनी है ? आपके समान और कोई ज्ञानी तथा देवता नहीं है। आपके द्वारा किया गया कोई कर्म निरर्थक नहीं होता। आपके जैसा कोई न पैदा हुआ है और न है, जो आपके किये हुए, गौरवपूर्ण कार्यों की समानता कर सके।"

"मरुतो !" इन्द्र ने आत्मश्लाघा से कहा, "मेरा पराक्रम सर्वत्र अप्रतिहत है। जो सोचता हूँ, मैं उसे तुरन्त पूर्ण कर लेता हूँ। मैं मेधावी हूँ। उग्र कर्मा हूँ और जिस उद्देश्य से, जिस विचार से, जिस ओर उठता हूँ, मैं उनका स्वामी और शासक हो जाता हूँ।"

मरुतों तथा इन्द्र का संवाद कुछ उग्र हो चला था। किन्तु मरुतों से अपनी प्रशंसा सुनकर इन्द्र कुछ सरल हुए।

"मरुद्गण ! आपके स्तोत्र मुझे प्रिय लगे हैं। सब के द्वारा वह सुना जाना चाहिए। मैं तुम्हारा मित्र हूँ। मैं अभीष्ट फल देने वाला हूँ।"

"मरुतो !" इन्द्र ने पुनः कहा, "मेरी प्रशंसा कर, और असीमित प्रसिद्धि तथा भोज्य पदार्थों का आनन्द लेकर, क्या स्वर्ण वर्ण आप गौरवशाली हैं ? क्या मुझे आप लोग सचमुच पूर्ण करेंगे।"

अगस्त्य ऋषि तप कर रहे थे। उन्होंने तप द्वारा इन्द्र तथा मरुतों के संवाद को जान लिया।

× × ×

इन्द्र और मरुद्गणों ने अपने सम्मुख उपस्थित देखा—तपः पूत महर्षि अगस्त्य को। अगस्त्य ने इन्द्र तथा मरुतों की वन्दना की। इन्द्र और मरुत उनकी वन्दना से प्रसन्न हुए। उनकी प्रसन्नता में अगस्त्य ने देखा वैमनस्य का

तिरोभाव। अगस्त्य ने दोनों की मैत्री की कामना करते हुए कहा, "मरुद्गण!" आपकी मनुष्य स्तुति करते हैं? अपने मित्रों के समीप शीघ्रतापूर्वक गमनशील होइये। उत्तम धनों की प्राप्ति के साधन होते हुए, लोगों में कर्म की प्रेरणा कीजिये।"

"मरुद्गण!" अगस्त्य ने पुनः अंजलिबद्ध कहा, "आप स्तुति कर्ताओं के समीप पधारिए।"

× × ×

अगस्त्य ने इन्द्र निमित्त एक हविष्य का निर्माण किया। तत्पश्चात् वेगपूर्वक इन्द्र के समीप गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मरुतों की स्तुति की। अनन्तर इन्द्र की स्तुति की। उन्होंने इन्द्र तथा मरुतों के मध्य सन्धि स्थापित करने के विचार से मरुतों को वह हवि देने का निर्णय किया, जिसे वे इन्द्र को देना चाहते थे।

अगस्त्य की दाहक भावना इन्द्र समझ गये। इन्द्र ने अगस्त्य को सम्बोधित किया :

"अगस्त्य! आज तथा कल कुछ नहीं है। जिसका कभी अस्तित्व ही नहीं रहा, उसे कौन जानता है? जिनका मन चंचल है। वे चिंतन किये हुए विषय को भी भूल जाते हैं।"

"इन्द्र!" अगस्त्य ने कहा, "मरुतों के साथ अच्छी तरह आप यज्ञ का भाग स्वीकार कीजिए। मरुद्गण आपके भ्राता हैं।"

"अगस्त्य!" इन्द्र ने अगस्त्य को उपालम्भ देते हुए कहा, "आप मित्र हैं। तथापि हमारा आप अनादर क्यों करते हैं? हम आपके भाव को जानते हैं। आप हमें कुछ देना नहीं चाहते।"

'वज्रिन्!" अगस्त्य ने उत्तर दिया, "आप धन के स्वामी हैं। मित्रपते! आप मित्रों के आश्रय हैं। आप मरुतों के समान हैं। हमारी हवि को ग्रहण कीजिए।"

क्षुब्ध इन्द्र को सांत्वना देने के पश्चात् अगस्त्य ने ऋषियों से कहा :

"ऋत्विज! वेदी सज्जित कीजिए। अग्नि प्रदीप्त कीजिए। अमृत स्वरूप गुणप्रद यज्ञ का विस्तार किया जाय।"

अगस्त्य की बातों से इन्द्र प्रसन्न हुए। अगस्त्य ने मरुतों को हवि समर्पित की।

सोम बनाया गया। इन्द्र ने मरुतों के साथ सोमपान किया।

अगस्त्य ने मरुतों की स्तुति की। इन्द्र की स्तुति की। जहाँ-जहाँ इन्द्र मरुतों के साथ गये वहाँ वे मरुत्वत् हुए।

× × ×

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १ : १६५ : १४, १५
१ : १६६ : १
१ : १६६-१६८
१ : १६७ : १
१ : १६९
१ : १७० : १-४
बृहद्देवता : ४ : ४६-५५

नोट : वेद में यह कथा संवाद रूप से दी गयी है। अगस्त्य ऋषि ने इन्द्र तथा मरुतों में सन्धि करायी थी।

लोपा मुद्रा — अगस्त्य
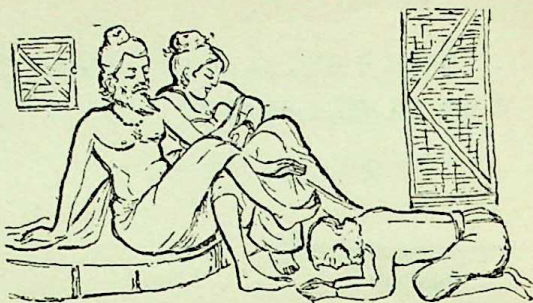
वसन्त की शोभा है—वासन्ती वायु । वसन्त की शोभा है—रंग-बिरंगे कुसुमों की प्रफुल्लित पंक्तियाँ । वसन्त की शोभा है—मंजरियों का सुरभि-दान। वसन्त की शोभा है—वायु मण्डल की सुगन्धि । वसन्त की शोभा है—चेतना का स्फुरण । वसन्त की शोभा है—मन की उड़ान । वसन्त की शोभा है—वसन्त सखा का आगमन । और वसन्त की शोभा है—मिलन सुख की कामना ।

वासन्ती भैरवी में लोपा मुद्रा ने सुना—हृदय का राग । सरसिप पुष्प से भी सुकुमार अनुभव करने लगी शिराओं में सरसराहट । वासन्ती वायु उसे स्पर्श करती आई । गुदगुदी पैदा करती आई। स्पर्श सुख की भावना जागी—उस भामिनी में ।

वह कामना करने लगी । किसी के अंक के स्पर्श सुख की । वह शीतोष्ण वासन्ती वायु में कामना करने लगी । किसी के उष्ण उच्छ्वास उसके मुख-मण्डल पर फैलकर उसके रक्तिम कपोल को आर्द्र कर दें ।

ज्ञानी के ज्ञान की सीमा है । कल्पना की सीमा है । ज्ञान की सीमा बुद्धि निर्धारित करती है । कल्पना की सीमा मन निर्धारित करता है । मन असीम है । कल्पना असीम है । बुद्धि की एक सीमा है । कहीं जाकर रुक जाती है । ज्ञान अपनी सीमा तक पहुँचकर रुक जाता है । किन्तु उस सीमा के परे, कल्पना कूदती-फांदती जाती है । वह उड़ती है । जहाँ पक्षी उड़ नहीं सकते । ज्ञान प्रकाश पहुँच नहीं सकता ।

अगस्त्य का साथ यौवन त्याग चुका था । अगस्त्य का साथ बुद्धि ने प्रार्थक उचित नहीं समझा । पर्वत है अग । पर्वत का स्तम्भन करने वाले का नाम है अगस्त्य । किन्तु कामवेग में पर्वत उड़ जाता है ।

कल्पना मन की कल्पना नहीं रोक सकती । उसके चारु प्रवाह में बहता है । लीन होता है । सब भूलता है । मन गतिमान होता है । मन स्व स्रजित

कल्पना में सुख लेता है। जैसे कोई स्वयं पकवान बनाकर उसके स्वाद पर मुग्ध हो जाता है।

तपोवृद्ध वयोवृद्ध अगस्त्य को देखा लोपामुद्रा की चंचल आँखों ने। काम की आँखों ने। उसने देखा अगस्त्य में काम। रति लोलुप लोपामुद्रा चली काम से मिलने। वसन्त ने दुंदुभी बजायी। अगस्त्य ने देखी एक नारी।

रूप आकर्षण है। रूप का यही प्रयोजन है। प्रकृति सहायक हुई। अनुरूप वातावरण पैदा किया। प्रकृति ने नर-नारी बनाए। काम-रति बनाये। आकर्षण बनाया। लावण्य बनाया। मिलन बनाया। मिलन सुख बनाया और उस सुख का परिणाम बना प्राणी।

अगस्त्य के पवित्र नेत्रों ने देखा—नारी—लोपामुद्रा। यशस्विनी आ रही थी। गजगामिनी की तरह। लिये सौन्दर्य भार ऋतु स्नान से निवृत्त होकर।

"मान्य !" लोपामुद्रा ने नारीजन्य लज्जा मुद्रा में कहा, "मैं आपकी सेवा जरा की संदेश वाहिका उषाओं के समान करती रही हूँ।"

अगस्त्य ने कामाभिलाषा से अरुण हुए तरुणी के कोमल कपोलों पर उभरते काम की ओर देखा।

"सुमेधस !" लोपामुद्रा ने वासन्ती वायु के मृदु उड़ाने में लीन अपने अधो-वसन को वक्षस्थल पर रोकते हुए कहा, "जरा शरीर सौन्दर्य को नष्ट करती है। वह आयु को पीती रहती है।"

"हूँ—!" ऋषि ने जराक्रान्त अपने शरीर की ओर देखा।

"और्वशेप !" लोपामुद्रा ने नम्र स्वर में कहा, "यौवनकाल इसीलिए है। उसमें गार्हस्थ्य धर्म फलता है। पति-पत्नी के मिलन का यही उद्देश्य है। यही धर्म है।"

लोपामुद्रा किंचित् प्रगल्भ थी। काम याचना मुद्रा में थी। बात करती लोपामुद्रा की ओर अगस्त्य की दृष्टि उठी। लोपामुद्रा ने ऋषि के तप से शुष्क चमकते नेत्रों को जैसे अपनी निर्मल आँखों से शीतल करते हुए कहा :

"मैत्रवरुण !" प्राचीन ऋषि देवताओं से सत्य बातें कहते थे। वे क्षीण हो गये। जीवन के परम प्राप्य फल को प्राप्त नहीं कर सके।"

"शुभानने !" अगस्त्य ने मृदु स्वर में कहा, "तुम्हारी कामना का अर्थ समझता हूँ।"

"कुम्भज !" लोपामुद्रा ने संयत स्वर में कहा, "संयमशील, विद्याध्ययन-शील, विज्ञ, विद्वान्, समय पर पति-पत्नी भाव प्राप्त करते हैं। उनमें भी काम भाव उत्पन्न होता है।"

"सुश्रोणी !" अगस्त्य के स्वर में काम ने प्रवेश किया, "काम प्रकृति का गुण है।"

"सिन्धुशासनि !" लोपामुद्रा अपना अर्थ सिद्ध होते देखकर बोली, ' अनुकूल पत्नी प्राप्त कर प्राणी प्रजनन करता है। अन्यथा यह सृष्टि कैसे चलेगी।"

"तन्वी !" अगस्त्य ने काम-दृष्टि से लोपामुद्रा के उत्फुल्ल मुख कमल की ओर देखते हुए कहा, "हमारा परिश्रम व्यर्थ नहीं हुआ है। देवता हमारे रक्षक हैं। हम स्पर्धाशीलों को वश में करते हैं। शत-शत साधनों का उपयोग करते हैं।"

लोपामुद्रा प्रसन्न हो गई। अगस्त्य ने उसके प्रसन्न मुख की ओर देखते हुए सस्मित कहा :

"प्रिये !" हम नर-नारी रूप से, स्त्री-पुरुष रूप से, पति-पत्नी रूप से, गृहस्थ धर्म का पालन करेंगे।

× × ×

और रति काम को पाकर मुसकराई। सुगुम्फित केश से वासन्ती कुसुम भूमि की ओर चले। वेणी शिथिल हुई। अधोवसन ने हिलोरा लिया। ऋषि का मन कुचों की द्रोणी में लगा लोप होने।

× × ×

"गुरुवर !" शिष्य ने नतमस्तक अगस्त्य और लोपामुद्रा के सम्मुख आकर प्रणाम किया।

"शिष्य !" कहो—क्या बात है ?" अगस्त्य ने मुसकराते हुए पूछा। उनके तप से ओजस्वी मुख-मण्डल की अबूड़न मानवीय सरल प्रतिमा में परिणत हो चुकी थी।

शिष्य का मुख लज्जा से नत था। वह चाहकर भी नहीं बोल सका। ऋषि ने उसे उत्साहित करते हुए कहा :

"कहो वत्स—!"

"पीताब्धि !" शिष्य ने पति-पत्नी को 'शिरसा नमामि' करते हुए कहा, "मैंने पाप किया है।"

"पाप ?" आश्चर्य से ऋषि ने प्रश्न किया।

"हाँ।"

"कैसा ?"

"मैंने आपका संभोग संलाप सुन लिया है। मैंने पाप किया है। मैं ब्रह्मचारी हूँ। मुझे नहीं सुनना चाहिए था।"

शिष्य ऋषि तथा ऋषि पत्नी के चरणों पर गिर पड़ा। लोपामुद्रा अपने प्रणय का रहस्योद्घाटन सुनकर कुछ लज्जित हुई। परन्तु वह सम्हल गयी।

"महात्मन् !" मुझसे भूल हो गयी है। मैं दोषी हूँ। मरणशील मनुष्य अनेक कामनाओं से युक्त होता है। मुझे क्षमा कीजिए गुरुवर !"

ऋषि में क्रोध का संचार नहीं हुआ। वे स्थिर दृष्टि से शिष्य को देखने लगे। लोपामुद्रा ने वात्सल्य प्रकट करते हुए कहा :

"वत्स ! तुमने कोई पाप नहीं किया है। तुम्हारा विचार दूषित नहीं था।"

"ठीक है। प्रिये ! यह निष्पाप है।'

शिष्य की आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली। उन अश्रु बिन्दुओं में ऋषि ने देखी प्रायश्चित्त की पवित्र रेखा।

"पुत्र !" अगस्त्य ने कहा, "तुम निष्पाप हो।"

सूक्तदृष्टा लोपामुद्रा ने प्रेम से शिष्य को उठाकर हृदय से लगा लिया। उसके मूर्धा का चुम्बन करते हुए बोली, "प्रिय ! तुम प्रशंसनीय हो।"

सूक्तदृष्टा अगस्त्य उठकर खड़े हो गये। उन्होंने शिष्य को अंक में लेकर उसके मूर्धा का चुम्बन लेते हुए कहा :

"शिष्य ! तुम पवित्र हो।"

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १ : ७९ : १-२, १ : ७९ : ३-४, १ : ७९ ५-६,
१ : ११ : ११, १ : १६५ : १३-१५, १ : १६६-१६९,
१ : १७० : २-५, १ : १७१-१७८; १ : १७७ : ५.
१ : १७९ : ३-६, १ : १८८-१९०-१९१, १ : १८२ : १,
१ : १८४, १ : १८५ : १०,, १ : १८९, ७ : ३३ : १३,
१० : ८० : ८

तैतरीय ब्राह्मण : १ : ७ : ११ : १
तैतरीय संहिता : ७ : ५ : ५ : २
मैत्रायणी संहिता : २ : १ : ८
काठक संहिता : १० : ११
पंचवश ब्राह्मण : २१ : १४ : ५
ऐतरेय ब्राह्मण : ५-१६

कौशीतकीय ब्राह्मण : २६ : ४
जैमनीय उपनिषद ब्राह्मण : ४ : १५ : १, १६ : १
बृहद्देवता : ४ : ५७-६१

नोट : काम प्राणी मात्र की स्वाभाविक प्रकृति है। काम के कारण ही प्राणी का गर्भाधान होता है। काम के अभाव में प्रजनन नहीं हो सकता। प्रजनन यदि रुक जाय तो जगत का काम चल नहीं सकता। हमारे अस्तित्व का लोप हो जायगा।

किन्तु काम में वासना का जब प्रवेश होता है तो वह दूषित हो जाता है। वह प्रकृति धर्म का त्याग कर वासना जन्य दूषित धर्म का वरण करता है।

इस कथा में मानसिक तथा शारीरिक अपराध तथा उसकी दण्ड प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है। शिष्य ने स्वयं अपना अपराध स्वीकार किया है। उसने मानसिक अपराध अपनी दृष्टि से किया था। उसका वह दण्ड पाना चाहता था। ऋषि अगस्त्य तथा लोपामुद्रा ने उसे अपराध नहीं माना। यह उस समय के सामाजिक व्यवहार तथा आचरण की ओर ध्यान आकर्षित करता है। शारीरिक के साथ मानसिक अपराध की गणना उन दिनों अपराधों में की जाती थी। मानसिक अपराधी भी दण्ड का भागी हो सकता था।

आधुनिक न्याय शास्त्र, जब तक अपराध प्रत्यक्ष रूप से पूर्ण नहीं हो जाता उसकी गणना अपराध में नहीं करता और न यह अपराध दण्ड की श्रेणी में आता है। मानसिक अपराध तथा अपराध के लिए तैयारी करना उस समय तक दण्डनीय नहीं होता जब तक घटना घट नहीं जाती। वैदिक Jurisprudence और आज के Jurisprudence में यही भेद है।

१. अगस्त्य—वे मान थे। मान, मान्य तथा मान्यार्य इन्हें कहा जाता है। मित्रा—वरुण के वे पुत्र थे इसका भी उल्लेख मिलता है। सायण ने उन्हें खेल राजा का पुरोहित माना है। इन्हें सुमेधस भी कहा गया है।

२. लोपामुद्रा—अगस्त्य की पत्नी का नाम है।

मण्डल : २

गृत्स्मद

वैन्य का यज्ञ था। अग्नि ज्वालायें आहुतियाँ ग्रहण कर रही थीं। स्वाहा-स्वाहा के पवित्र उच्च घोष से यज्ञ-मण्डप पूरित था। यज्ञ में अन्य देवताओं के सहित इन्द्र उपस्थित थे।

दैत्य, दानव और असुर इन्द्र के घोर विरोधी थे। वे इन्द्र को अपमानित, पराजित तथा व्यथित करने के लिए अवसर ढूँढ़ा करते थे। उन्हें पता चला। इन्द्र वैन्य के यज्ञ में अन्य देवताओं के साथ उपस्थित थे।

दैत्यों ने अच्छा सुयोग पाया। इन्द्र तथा देवताओं के प्रति उग्र प्रतिहिंसा भावना उनमें जागृत हो गयी। इन्द्र से संघर्ष करने का दृढ़ निश्चय किया। इन्द्र चाहे पराजित होते अथवा नहीं यह तो दूसरी बात थी। परन्तु यज्ञ में विघ्न उपस्थित होना अवश्यम्भावी हो गया। निर्विघ्न यज्ञ समाप्त होने की अपेक्षा विघ्न में यज्ञ की आहुतियाँ समाप्त होती दिखाई पड़ने लगीं।

यज्ञ में सूक्तद्रष्टा ऋषि गृतस्मद उपस्थित थे। दैत्यों के आसन्न आक्रमण का उन्होंने अनुभव किया। वे समझ गये। दैत्य सबल इन्द्र की हत्या करने पर तुले थे। दैत्य इन्द्र के वध हेतु पूर्ण वेग से आये।

यज्ञ रक्षा निमित्त गृतस्मद ने एक उपाय निकाला। उन्होंने इन्द्र का रूप धारण कर लिया। इन्द्र का पहचानना कठिन हो गया। गृतस्मद ने मुहूर्त में वहाँ से पलायन किया। लोप हो गये।

दैत्यों ने गृतस्मद को वास्तविक इन्द्र समझा। यज्ञ स्थित वास्तविक इन्द्र को त्याग कर गृतस्मद के पीछे दौड़े। दिव्यलोक आकाश तथा पृथ्वी पर पीछा करने लगे।

वैन्य का यज्ञ निर्विघ्न चलता रहा।

× × ×

भीम पराक्रम दैत्य धुनि और चुमुरि गृतस्मद का पीछा सायुध कर रहे थे।

वे ऋषि के वध हेतु तुल गये थे ।

ऋषि ने दोनों दैत्यों का पापपूर्ण भाव समझ लिया। बचते रहे। अन्ततोगत्वा दोनों दैत्य ऋषि पर टूट पड़े ।

ऋषि का जीवन संकट में पड़ गया । अपनी आसन्न मृत्यु देखकर वे जोर से बोले,

"दैत्यो ! मैं इन्द्र नहीं हूं ।"

"तो तुम कौन हो ?"—दैत्य ने ऋषि के समीप पहुँचकर पूछा ।

"मैं गृतस्मद हूँ ।"—भयभीत गृतस्मद ने कम्पित स्वर में उत्तर दिया ।

"इन्द्र कहाँ है ?" गृतस्मद पर अपनी क्रूर दृष्टि फेंकते हुए दैत्यों ने सक्रोध पूछा ।

"मैं इन्द्र नहीं हूँ । आप लोग इन्द्र को जानते हैं, वे परम तेजस्वी हैं ।" गृतस्मद का भयाकुल मन स्थिर होने लगा ।

"इन्द्र ?" दैत्यों ने आश्चर्य प्रकट किया ।

"हाँ—वे परम वीर हैं। उनके कर्मों से आप लोग परिचित हैं ?" गृतस्मद ने दैत्यों की चकित जिज्ञासा का लाभ उठाया ।

"नहीं—।" दैत्यों ने गृतस्मद की ओर ध्यान लगाया ।

"आप जानना चाहते हैं ?"

"हाँ—" दैत्यों में उत्सुकता ने प्रवेश किया ।

"सुनिये ।"

× × ×

गृतस्मद ने इन्द्र के कर्मों का कीर्तन किया :

"वे इन्द्र हैं, जो शक्तियुक्त प्रकट होकर मानवों के अग्रगणी हुए हैं । वे इन्द्र हैं, जिन्होंने देवताओं को अपने वीर कार्यों से सुशोभित किया है। वे इन्द्र हैं, जिनके भय से आकाश एवं पृथ्वी कम्पित हैं । वे इन्द्र हैं, जिन्होंने कम्पित पृथ्वी को दृढ़ता प्रदान की है। वे इन्द्र हैं, जिन्होंने क्रोधित पर्वत को शांत किया है । आकाश का सहारा अन्तरिक्ष का निर्माण किया है। वे इन्द्र हैं, जिन्होंने वृत्र का वध कर नदियों के जल प्रवाह को मुक्त किया है। वे इन्द्र हैं, जिन्होंने राक्षसों द्वारा अमुक्त गायों को मुक्त किया है। वे इन्द्र हैं, जिन्होंने मेघमालाओं में अग्नि उत्पन्न की है। वे इन्द्र हैं, जिन्होंने युद्ध में शत्रुओं का वध किया है । वे इन्द्र हैं, जिन्होंने संसार की रचना की है । वे इन्द्र हैं, जिन्होंने आततायियों को निम्न गुफाओं में रखा है। वे इन्द्र हैं, जिन्होंने शत्रु की सम्पत्ति पर विजय प्राप्त की है।

वे इन्द्र हैं, जिनके विषय में लोग जिज्ञासा करते हैं। वे इन्द्र हैं, जिनकी चर्चा की जाती है। वे इन्द्र हैं, जो शत्रुओं की सम्पत्ति को शासक तुल्य अपहृत कर लेते हैं।

धुनि और चुमुरि पर ऋषि के वाक्यों का प्रभाव पड़ने लगा। ऋषि ने उनका उत्साह शिथिल होता देखा और भयोत्पादक वाणी में ऋषि ने कहना आरम्भ किया :

"दरिद्र याचकों तथा स्तुतिकारों के धनदाता इन्द्र हैं। जल के प्रेरक, इन्द्र हैं। अश्व, गौ, ग्रह, रथादि के आदेशक, इन्द्र हैं। यज्ञ में जिन्हें आहूत करते हैं, वे इन्द्र हैं। श्रेष्ठ, अश्रेष्ठ, शत्रु-मित्र जिनका सब आह्वान करते हैं, वे इन्द्र हैं जिनकी उपेक्षा करने से जप सम्भव नहीं है, वे इन्द्र हैं। रक्षा निमित्त जिनका आह्वान किया जाता है, वे इन्द्र हैं। पर्वतों को स्थिर तथा चलाने में जो समर्थ हैं, वे इन्द्र हैं। पापियों के संहारक इन्द्र हैं। अकर्मियों को नष्ट करने वाले इन्द्र हैं। स्वाभिमानियों के सिद्धिदायक इन्द्र हैं। दुष्टों के दलनकर्ता इन्द्र हैं।"

गृतस्मद की ओजस्वी वाणी और इन्द्र के अद्‌भुत गुणों का वर्णन सुनकर धुनि और चुमुरि के हृदय में भय स्थिर होने लगा। उनकी मुद्रा भयाकुल होने लगी। गृतस्मद उनकी दयनीय होती मुद्रा देखकर उत्साहित हो गये। पुनः ओजस्वी भाषा में बोले :

"वे इन्द्र हैं, जिन्होंने पृथ्वी में छिपे शम्बर का हनन किया था। वे इन्द्र हैं, जिन्होंने महाबली अही को मारा था। वे इन्द्र हैं, जिन्होंने रोहिणी को रोका था। वे इन्द्र हैं, जिनके सम्मुख पर्वत काँपते हैं। वे इन्द्र हैं, जिन्हें आकाश प्रणाम करता है। वे इन्द्र हैं, जिन्हें पृथ्वी प्रणाम करती है। सोम पायी इन्द्र हैं। द्रढ़ांग इन्द्र हैं। वज्र बाहु इन्द्र हैं। सोम छानने वालों के रक्षक इन्द्र हैं। पुरोडाश सिद्ध करने वालों के स्तोता इन्द्र हैं। जिनके स्त्रोत हमारे लिए अन्न के समान हैं। वे इन्द्र हैं, वे जो वाराह रूप वाले हैं, वे महान विद्युत तुल्य तेजस्वी हैं। वे रश्मिवंत हैं। वे इच्छित वर्षक हैं। वे सप्त नदियों को प्रवाहित करते हैं। वे दक्षिण बाहु में वज्र धारण करते हैं।

"इन्द्र सोम छानने वालों को अन्न देते हैं। इन्द्र, यजमानों को अन्न देते हैं। इन्द्र, सत्य स्वरूप हैं। इन्द्र, हम तुम्हारी स्तुति सन्तानादि सहित करते हैं।"

इन्द्र के ऐश्वर्य एवं वीरता का वर्णन सुनकर दोनों दैत्यों में भय संचारित हो गया। वे जीवन भय से कायर हो गये।

× × ×

जिनका नैतिक बल गिर जाता है, उनको परास्त करने में विलम्ब नहीं लगता। इन्द्र तत्काल वज्र सहित असुरों के वध निमित्त वहाँ पहुँच गये।

उन अधमरों को मारने का इन्द्र ने सुअवसर देखा। असुरों को विचार करने का अवसर नहीं दिया। इन्द्र ने अविलम्ब उन पर आक्रमण किया। उन्हें पराभूत किया। वज्र प्रहार द्वारा उनके प्राण पखेरू उड़ गये।

× × ×

"ऋषिवर!" इन्द्र ने ऋषि गृतस्मद के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, "आप मेरे सखा तुल्य हैं।"

"सुरेश्वर!" ऋषि ने गद्‌गद् होकर कहा, "आपका यह मेरे ऊपर अनुग्रह है।"

"महात्मन्!" इन्द्र ने प्रसन्न-वदन कहा। "आप मुझे प्रिय हैं। आप मुझे अपने प्रिय रूप में देखिए।"

"शक्र!" ऋषि ने कहा "आपका प्रेम-पात्र कौन विश्व में नहीं होना चाहेगा?"

"ऋषिवर!" इन्द्र ने सस्नेह कहा, "आपका तप अक्षय होगा।"

"वज्र हस्त!" ऋषि ने प्रणाम करते हुए कहा, "आपकी कृपा।"

"ऋषिवर!" इन्द्र ने उत्साहित स्वर में कहा, "आप वर माँगिए।"

गृत्समद की मुद्रा विचारशील हो गयी। इन्द्र ने उन्हें उत्साहित करते हुए कहा :

"गृत्समद! आप वर माँगिए, मैं प्रसन्नता का अनुभव करूँगा।"

"शचीपते!" गृत्समद ने कहा, "शरीर तथा हृदयंगम होने वाली वाणी हमें आप दीजिए।"

"और—?" इन्द्र ने जिज्ञासा की।

"उस वाणी की सुरक्षा हो।"

"स्वीकार—और।" इन्द्र ने ऋषि को पुनः उत्साहित किया।

"हम सुवीर हों, सम्पत्तिसम्पन्न हों। उत्तम धन तथा ख्याति प्राप्त करें। सौभाग्य दान कर हमारे धन की वृद्धि कीजिए। हमारी वाणी मधुर हो। हमारे शरीर की रक्षा हो। हमारे दिन सुखमय बीतें।"

"और ऋषिवर?" इन्द्र ने मुसकराकर पूछा।

"इन्द्र!" हम विचारों द्वारा आपका ध्यान करते हैं। हम अपने प्रत्येक जन्म में आपको जान जाते हैं। आप हमसे दूर मत होइये।

"और—?"

"सुरेन्द्र !" जिस समय आप अश्वों को योजित करते हैं, उस समय आप ही श्रेष्ठ रथी दृष्टिगोचर होते हैं। आपके समान कोई अश्वारोही नहीं है। कोई बलवान नहीं है।"

"ऋषि ! हम आपके सब वरों को स्वीकार करते हैं। आपकी कामनाएँ पूर्ण होंगी।"

इन्द्र ने मैत्री भाव से गृत्समद को अपने दाहिने हाथ से पकड़ा। ऋषि इन्द्र के मैत्री भाव को देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने अपने हाथ से इन्द्र के हाथ का स्पर्श किया। दोनों ने सखा भाव से इन्द्रलोक की ओर गमन किया।

× × ×

पुरन्दर ने अपने आवास में गृत्समद का मित्र भाव से आदर-सत्कार किया। उनका विधिवत पूजन किया। आस्वस्थ होने पर इन्द्र ने सखा गृत्समद से कहा :

"श्रेष्ठ ऋषिवर ! आप अपनी स्तुतियों द्वारा हमें प्रसन्न करते हैं।"

गृत्समद इन्द्र के आदर-सत्कार और साख्य भाव से गद्गद् हो गये थे। लज्जाजन्य शील से उनका मस्तक नत हो गया।

"ऋषिवर !" इन्द्र ने सप्रेम कहा, "आप शुनहोत्र के पुत्र हैं। अतएव अब आपका नाम गृत्समद होगा।"

गृत्समद ने इन्द्र को प्रणाम किया। उनके मुख से इन्द्र के प्रति स्तुति मुखरित हुई :

"इन्द्र ! आप मेरी स्तुति सुनिये। आप मेरा कभी निरादर मत कीजिए। हम आपसे धन पाने योग्य हैं। नदी की धारा तुल्य, हवि यजमान के लिए धन की कामना करती है। वह आपकी वृद्धि करे। सुरेन्द्र ! आपके द्वारा वर्षा किये जल पर असुर वृत्र ने आक्रमण किया था। जलप्रवाह रोक लिया था। आपने उस जल को मुक्त किया। वृत्र समझता था, वह अमर है। परन्तु स्तुतियों से वार्धक्य प्राप्त कर आपने उसे धराशायी किया। पुरन्दर ! आप जिन सुखमय स्तोत्रों की कामना करते हैं, वे स्तोत्र ज्योतिर्मय होते हैं। यज्ञ में प्रकट होते हैं। वज्रहन ! स्तुतियों द्वारा हम आपके बल की वृद्धि करते हैं। आप दस्युओं को सूर्य के समान अपने तेज से पराजित करते हैं। वज्रबाहु ! गुफा में छिपे वृत्र ने अपनी अद्भुत शक्ति द्वारा अन्तरिक्ष तथा आकाश को चकित किया था। आपने वज्र प्रहार द्वारा उसका वध किया है।"

ऋषि ने सादर नमन करते हुए पुनः स्तुति की :

"आपके यश का इन्द्र ! हम गान करते हैं। आपके नवीन अद्‌भुत कर्मों की प्रशंसा करते हैं। आपके जाज्वल्यमान वज्र, ध्वजा तथा रथ की प्रशंसा करते हैं। आपके द्रुतगामी अश्व जलवर्षक मेघ की ध्वनि करते हैं। समतल भूमि मेघ गर्जन से प्रसन्न होती है। मेघ सर्वत्र वर्षा कर सुशोभित होते हैं। अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर मेघ जल सहित विचरण करते हैं। मरुतों ने उनके शब्दों की वृद्धि करते हुए उन्हें सर्वत्र व्याप्त किया है। संचारी मेघ में छिपे वृत्र का महाबले, आपने वध किया है। आपकी वज्र ध्वनि से आकाश एवं पृथ्वी भयभीत होकर काँप उठती है।

"आपने वृत्र को मारने की कामना की। आपका वज्र गरज उठा। आपने सोमपान किया। तत्पश्चात् दैत्य की माया को छिन्न-भिन्न किया है। पुरन्दर ! आप इस नीष्पीड़ित सोम का पान कीजिए। सोम आपको प्रसन्नता दे। उससे आपका पेट भरे। पेट भरने वाला सोम आपको तृप्ति प्रदान करे।

"इन्द्र ! हम आपके हृदय में स्थान प्राप्त करेंगे। कर्मफल की कामना से यज्ञ करेंगे। आपके आश्रय प्राप्ति निमित्त आपकी स्तुति करते हैं। आप द्वारा प्रदत्त धन हम शीघ्र प्राप्त करेंगे।"

ऋषि ने अकस्मात् वहाँ उपस्थित ब्रह्मणस्पति को देखा। ऋषि ने उनका प्रांजलिभूत नमन करते हुए स्तवन किया :

"ब्रह्मणस्पते ! देवताओं में आप दिव्य हैं। कवियों में श्रेष्ठ हैं। आपका अन्न सर्वोत्तम है। प्रशंसितों में आप सर्वश्रेष्ठ हैं। स्तोत्रों के आप स्वामी हैं। स्तुतियों से प्रसन्न होकर हमारे आश्रय निमित्त, यज्ञ स्थान में पधारिए। हम आपका आह्वान करते हैं।

"ब्रह्मणस्पते ! आप राक्षसों के हनन-कर्ता हैं। देवताओं ने आपका यज्ञ भाग प्राप्त किया है। जिस प्रकार रश्मियाँ सूर्य में प्रकाशित होती हैं, उसी प्रकार स्तोत्र आपसे प्रकट होते हैं। ब्रह्मणस्पते ! निंदकों तथा अन्धकार को छिन्न-भिन्न कीजिये, जाज्वल्यमान विकराल शत्रु नाशक मेघों को छिन्न-भिन्न करने वाले दिव्य रथ पर आरूढ़ होइये। आप हविदाता को उत्तम मार्ग पर ले जाते हैं। उनकी पाप से रक्षा करते हैं। आप अपनी महिमा द्वारा स्तुति न करने वालों को दण्ड देते हैं। क्रोधी का नाश करते हैं।"

तत्पश्चात् ऋषि ने इन्द्र और ब्रह्मणस्पति की एक साथ स्तुति की :

"इन्द्र ! ब्रह्मणस्पते !! आप ऐश्वर्यवान हो। सम्पूर्ण धन आप लोगों का है। आपके अभिप्राय को कोई रोक नहीं सकता। जिस प्रकार रथों में योजित

अश्व अन्न की ओर दौड़ता है, उसी प्रकार आप भी हमारी हवियों की ओर दौड़ते हुए आइये।"

अनन्तर गृत्समद ने अन्य देवताओं की स्तुतियाँ कीं। उनकी स्तुतियाँ समाप्त होते देखकर इन्द्र पुनः स्तुति सुनने की इच्छा से कपिंजल पक्षी बन गये। ऋषि इन्द्र को अनुपस्थित समझ बाहर जाने लगे। उन्हें बाहर जाते पक्षी रूप इन्द्र ने देखा। ऋषि को पुकारा। ऋषि चकित हुए। परिचित ध्वनि को सुनकर ऋषि ने वृद्ध कपिंजल पक्षी को देखा। आर्ष नेत्रों द्वारा ऋषि ने पक्षी को पहचान लिया। वह इन्द्र थे। ऋषि ने स्तुति की :

"निरन्तर बोलने वाला, भविष्य का निर्देश देने वाला, कपिंजल जिस प्रकार नाव को चलाता है, उसी प्रकार वाणी को प्रेरणा देता है। शकुने ! आप मंगलप्रद होइए। पराजय किसी दिशा से भी आकर आपको प्राप्त न हो।"

और गृत्स (प्राण) तथा मद (अपान) दोनों मिलकर शरीरधारी गृत्समद ने सर्वज्ञ इन्द्र को 'शिरसा नमामि' किया।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : २ : १, २ : २, २ : ३, २ : ४ : ६, २ : १०, २ : ११ : १, २ : १८ : ६, २ : १६ : १८, २ : २१ : ६, २ : २३ : २६, २ : २४ : १२, २ : ३६ : ८, २ : ४१ : ८, १४, १६

ऐतरेय ब्राह्मण : ५ : २ : ४

ऐतरेय आरण्यक : २ : २ : १

कौशीतकीय ब्राह्मण : २८ : २

वृहद्देवता : ४ : ६५-७५

नोट : प्राण और अपान वायु इस शरीर को चलाते हैं। योगी प्राण में अपान का और अपान में प्राण वायु का यज्ञ करता है। प्राण और अपान के मिलने पर योग का उद्देश्य सफल होता है। किसी एक के अभाव में शरीर निष्क्रिय हो जाता है। वैदिक शैली में रूपात्मक ढंग से इसका वर्णन किया गया है।

१. कपिंजल—एक पक्षी—पपीहा, चातक, गौरा तथा तीतर—पक्षी के लिए कपिंजल शब्द प्रयुक्त किया जाता है।

२. गृतस्मद—ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के ऋषि हैं। उन्हें भार्गव कहा गया है। पैतृक नाम के रूप में भार्गव शब्द अभिप्रेत है। शुनहोत्रो के रूप में भी उनका उल्लेख किया गया है, शुनहोत्र का पुत्र था। भृगुकुल का गोत्रकार, प्रवर तथा मन्त्रकार है। ऋग्वेद का सूक्त द्रष्टा

है। इसका पैतृक नाम शौनक भी है। शुनहोत्र का औरस तथा शुनक का दत्तक पुत्र था। प्रारम्भ में अंगिरस कुल का था, तत्पश्चात् भृगुकुल में चला गया।

३. चुमुरि—यह शब्द अनार्य भाषा का प्रतीत होता है। इसकी गणना दानवों या मनुष्यों में की गयी थी, निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। किन्तु इसका उल्लेख शम्बर, विप्रु और शुष्ण दानवों के साथ हुआ है। यह अनार्य राजा प्रतीत होता है। इन्द्र ने इसे पराभूत कर इसके दुर्गों को नष्ट किया था।

४. दैत्य—वास्तव में मानव थे। कश्यप द्वारा दिति के गर्भ से उत्पन्न होने वाले वंशजों का नाम दैत्य पड़ गया। दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य थे।

५. धुनि—चुमुरि तथा धुनि का नाम साथ आता है। दभीति के दोनों विरोधी थे।

६. पुरोडाश—याज्ञिक पदार्थ विशेष को पुरोडाश कहा गया है। इसकी हवि डाली जाती है। हवि के समय पढ़े जाने वाले मन्त्र को भी पुरोडाश कहते हैं।

७. वृत्र—शाब्दिक अर्थ ढकने वाला होता है। इन्द्र का प्रमुख शत्रु था। इन्द्र इसके वध करने के कारण वृत्रहन् कहे जाने लगे। वह एक अंतरिक्षीय दैत्य था। इसकी माता का नाम दानु था। इसी शब्द का पुल्लिंग शब्द दानव है।

८. वैन्य—वेन के वंशजों के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया है। पृथु का पैतृक नाम है। भृगुकुलोत्पन्न एक मन्त्रकार है।

९. ब्रह्मणस्पति—बृहस्पति का एक नाम है।

मराडल : ४

वामदेव

माता के गर्भ में वामदेव को आत्मानुभूति प्राप्त हुई थी। माता के गर्भ में जन्म सम्बन्धी ज्ञान हो गया था। उसने विचार किया। अन्य मर्त्यों के समान सर्वविदित साधारण रूप से वह क्यों जन्म ग्रहण करें? गर्भ से योनी द्वारा सभी प्राणी जन्म लेते हैं। उसने अपने जन्म ग्रहण की नवीन परिकल्पना की। माता के उदर को विदीर्ण कर जन्म लेना नवीनतम तथा विशिष्ट प्रकार उसकी समझ में आया।

वामदेव की माता ने अपना जीवन संकटमय देखा। संकटमोचनार्थ देवी अदिति का उसने ध्यान किया। इन्द्र के साथ अदिति वहाँ उपस्थित हुई।

"वामदेव !" इन्द्र ने गर्भस्त वामदेव का विचार जानकर उसे सम्बोधित किया, "योनि मार्ग से जन्म ग्रहण करना सनातन मार्ग है। अनादि काल से यह परम्परा चली आ रही है। इसी मार्ग से देवता जन्म ग्रहण करते हैं।"

"इन्द्र !" गर्भस्थ वामदेव ने प्रश्न किया, "आपकी क्या इच्छा है ?"

"गौतम !" इन्द्र ने कहा, "गर्भकाल पूर्ण होने पर सनातन योनि मार्ग से जैसे सब लोग जन्म ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार आप भी जन्म ग्रहण कीजिए।"

"यदि मैं दूसरे प्रकार से जन्म लूँ ?" वामदेव ने गर्भ से ही प्रश्न किया।

"वामदेव !" इन्द्र ने कहा, "अपनी जनयित्री माता का सनातन मार्ग त्याग कर आप अपमान करेंगे। उससे उनकी हानि होगी।"

"इन्द्र !" वामदेव ने कहा, "मुझे इस कठिन मार्ग से जन्म ग्रहण करने के लिए न कहिए। माता के पार्श्व से टेढ़े होकर जन्म लेना मेरे लिए सुखकर होगा।"

"वामदेव !" इन्द्र ने कहा, "आप परम्परागत मार्ग का त्याग क्यों करना चाहते हैं ?"

"इन्द्र !" वामदेव ने कहा, "बहुतों के द्वारा जो कार्य नहीं किये गए हैं उन्हें हमें करना है। मुझे युद्ध में एक शत्रु का सामना करना श्लाघ्य है। एक ही विरोधी से विवाद करना मान्य है।"

"वामदेव !" इन्द्र ने कहा, "सनातन मार्ग का त्याग मत कीजिए। यह उचित नहीं होगा।"

"इन्द्र !" वामदेव ने कहा, "मुझे इस गर्भ में ही अपने पूर्व जन्मों का ज्ञान प्राप्त हो गया है। मैंने समस्त देवताओं के प्राकट्य को जान लिया है। मैंने ही मनु तथा सूर्य रूप में पूर्व काल में जन्म ग्रहण किया था। इसका मुझे ज्ञान है।"

"वामदेव !"

"सुनो इन्द्र !" वामदेव ने कहा, "मैं ही मनु था। मैं ही सूर्य था। मैं ही विद्वान् ऋषि कक्षीवत हूँ। मैंने अर्जुनी के पुत्र कुत्स की प्रशंसा की थी। मैं ही कवि उशना हूँ। इन्द्र मुझे देखो।"

"वामदेव ! आपका पुनर्जन्म का ज्ञान अद्भुत है।" इन्द्र ने प्रशंसनीय स्वर में कहा।

"हाँ, इन्द्र !" वामदेव ने कहा, "जन्म त्रयी को मैं जानता हूँ।"

"पहला जन्म क्या है, वामदेव ?" इन्द्र ने जिज्ञासा की।

"पिता के शुक्र जंतु का माता के शोणित द्रव्य से जिस समय संगम होता है, उस समय को प्राणी का पहला जन्म कहते हैं।"

"दूसरा ?" इन्द्र ने प्रश्न किया।

"माता की योनि से जिस समय सन्तान जन्म लेती है, वह प्राणी का दूसरा जन्म है।"

"—और तीसरा ?" इन्द्र ने पुनः प्रश्न किया।

"मृत्यु के पश्चात् जिस समय प्राणी पुनः जन्म ग्रहण करता है, उसे प्राणी का तीसरा जन्म कहा जाता है।"

"और—"

"और यही प्राणी का अमरत्व है।"

× × ×

गर्भ में देवताओं तथा जन्मों का वृत्तान्त जानते हुए वामदेव ने सनातन मार्ग द्वारा गर्भ से बाहर निकलने का विचार त्याग दिया। उसे लौहपुर तुल्य माता

का गर्भ रोक नहीं सका। वामदेव ने योग सामर्थ्य से श्येन पक्षी का रूप धारण किया। माता के उदर से बाहर निकल आये।

× × ×

जन्म ग्रहण करने के पश्चात् इन्द्र ने वामदेव को युद्ध के लिए ललकारा।

वामदेव युद्ध विमुख नहीं हुए। इन्द्र ने वामदेव के विरुद्ध बल का प्रदर्शन किया। इन्द्र की शक्तियाँ वामदेव को विचलित न कर सकीं।

वामदेव ने दस रात्रि तथा दिन तक इन्द्र से युद्ध किया। इन्द्र को विजय नहीं मिली। ऋषि वामदेव युद्ध में विजेता हुए।

× × ×

ऋषियों की संसद थी। वामदेव ऋषि से, इन्द्र पराजित हो गये थे। अतएव वामदेव ऋषि ने सभा में देवताओं से कहा :

"कौन इस इन्द्र को दस दुधार गौओं को देकर खरीद सकेगा ?"

ऋषि लोग चकित हुए। एक-दूसरे का मुख देखने लगे। वामदेव ने पुनः कहा :

"किन्तु एक शर्त है—"

"उत्सुक संसद का ध्यान वामदेव की ओर लग गया।"

"देवगण ! इन्द्र यदि आपके शत्रुओं का हनन कर दें तो आप उन्हें पुनः मुझे वापस कर दीजिएगा।"

साथ ही वामदेव ने इन्द्र की स्तुति की :

"इन्द्र आपसे बढ़कर कोई श्रेष्ठ नहीं है। आपसे बढ़कर कोई प्रसिद्ध नहीं है। वृत्रहन् ! जगत में आपके जैसा कोई दूसरा नहीं है।"

इन्द्र अपनी स्तुति सुन रहे थे। उन्हें वामदेव पर क्रोध था। परन्तु संसद में वामदेव ने स्तुति गान किया। उनका क्रोध शान्त होने लगा।

वामदेव ने पुनः इन्द्र की स्तुति की :

"वृत्रहन् ! श्रीमान् इन्द्र !! आप अत्यन्त क्रोधित हो गये हैं। अतएव आपने दनु के पुत्र वृत्र का अन्तरिक्ष में वध किया था।"

इन्द्र का क्रोध शान्त हो गया। वामदेव इन्द्र की शान्त-मुद्रा देखकर अपनी आत्मस्तुति के व्याज से स्तुति करने लगे :

"मैं ही मनु रहा हूँ। मैं ही सूर्य रहा हूँ। मैं ही विद्वान् ऋषि कक्षीवत

हूँ। मैंने अर्जुनी के पुत्र कुत्स की प्रशंसा की है। मैं ही कवि उशना हूँ। इन्द्र मुझे देखो।

"मैंने ही मानव को भूमि दी है। मैंने ही मर्त्यों को वृष्टि दी है। मैंने ही कल-कल करते जल को प्रेरित किया है। देवता मेरी इच्छा का पालन करते हैं।

"सोमपान कर मैंने शम्बर के ९९ नगरों को नष्ट किया है। जिस समय मैं दिवोदास के यज्ञ की रक्षा कर रहा था, उस समय मैंने उसके निवास निमित्त एक सौ नगरों को उसे दिया था।"

इन्द्र का क्रोध अवसान प्राप्त करने लगा।

× × ×

सहसा दरिद्रता देवी की असीम कृपा वामदेव पर हो गयी। वे चाहकर भी दरिद्रता देवी की दया की छाया से बच नहीं सके। दरिद्रता को उस अनुप-मेय दया की कामना उन्होंने नहीं की थी। आजन्म प्रार्थना करते रहे। देवी उनसे दूर रहे। तथापि दरिद्रता देवी की अनायास ही उन पर महती कृपा हुई। अपना प्रदर्शन करने से वे बाज नहीं आईं।

देवी के आश्रय से वामदेव दूर भागे। दरिद्रता देवी भी उनके पीछे पापियों के पाप छाया की तरह बेतहाश दौड़ी। देवी के तीव्र वेग के सम्मुख वामदेव असमर्थ हो गये। शिथिल हो गये। दरिद्रता की दया ने उन्हें सुखद्, सुस्वादु से शीतल मरुस्थल के आतप से तृषित जलार्थी व्यक्ति के, जल की तरह ग्रहण कर लिया।

दरिद्रता देवी अपनी सखी विषाद के साथ आयी थी। दुःख के साथ आयी थी। शोक के साथ आयी थी। मन्त्रद्रष्टा वामदेव का तत्वज्ञान, उनका तप, दरिद्रता के प्रबल आक्रमण से उनकी रक्षा नहीं कर सका। उस आक्रमण में कुटी का सब कुछ उदर ज्वाला में स्वाहा हो गया। आश्रम के फलादि भी एक-एक कर पादपों का साथ छोड़ बैठे।

वामदेव की धर्मपत्नी दुःख से कातर हुई। पति ने क्षुधा की पीड़ा पत्नी के नेत्रों में देखी। पीड़ा नेत्रों में न थम सकी। अश्रु जल बनकर बाहर निकलने लगी। वामदेव ने भार्या के पुष्ट स्तनों को सिकुड़कर वक्षस्थल में समाते देखा। उदर त्रिवली को पीठ से सटते देखा। कुक्षि में कूप बनते देखा। कटि पर शरीर को झुकते देखा। सुघर पावों को काँपते देखा। कुंचित केश को रूखे होते देखा। कामिनी कलेवर में दरिद्रता का मलिन मन्दिर बनते देखा।

ऋषि की ग्रावश्यकताएँ थीं। उन ग्रावश्यकताग्रों ने ग्रपनी पूर्ति न होते देख ग्राँखें मूँद लीं। साथियों ने मुख मोड़ा। पशुग्रों ने दिशा बदली। पक्षियों ने तरु ग्राश्रय छोड़ा। किन्तु ग्रग्नि को साक्षी देकर साथ रहने की प्रतिज्ञा करने वाली पत्नी साथ न छोड़ सकी।

उनकी प्रिय पत्नी, उनकी प्रिय भार्या, उनकी जीवन सहचरी, समाज में दरिद्रता के ग्रभिशाप के कारण ग्राँख न उठा सकी। सम्मान न पा सकी।

पति ने ग्रनुभव किया। ग्रपनी पत्नी के प्रति लोगों की ग्राँखों में बैठता ग्रसम्मान। शायद ऋषि उस दरिद्रता का स्वागत करते, यदि सम्मान वह साथ लेकर ग्राती। लेकिन वह ग्रायी थी, विश्व का, इस जगत का पूरा दोष लेकर।

वह जागरूक थी। कम-से-कम एक बात में। उसकी छाया में रहने वाला कहीं भूलकर सुख की एक साँस न ले ले। कहीं भूलकर उसका सम्मान न हो जाय। कहीं सुख मार्ग भूलकर उसकी तरफ न निकल ग्राये, ग्रौर कहीं समवेदना के दो शब्द किसी उपेक्षित कोने से न निकल जायें।—ग्रौर कहीं देवताग्रों की उस पर करुणा न उत्पन्न हो जाय।

ऋषि का तप-व्रत उनकी सहायता के लिए नहीं ग्राया। वे भी दरिद्रता का ग्रावास ग्राश्रम में देखकर छूत की बीमारी की तरह उस ग्रोर भूलकर भी ग्राने का साहस नहीं कर सके। जिन देवताग्रों का उन्होंने स्तवन किया था, जो ग्राह्वान पर ग्राते थे, ग्राज दरिद्रता की छाया में, वे ऋषि का ग्राह्वान सुनने के लिए बधिर हो गये थे। इस दुःख की बेला में, उनके किसी उपास्य देव ने, उनके किसी ग्राह्वनीय देव ने, उन्हें सन्तोष देने की चिन्ता भूलकर भी नहीं की।

ऋषि का दुःख सीमा पार कर चुका था। दरिद्रता देवी ग्रपनी चरम सीमा पार कर चुकी थी। तथापि मूहुर्त मात्र के लिए विश्राम नहीं लेना चाहती थी। क्षुधा व्याप्त ऋषि की ग्रंतड़ियाँ उदर स्थल में टूटने लगीं। ऋषि की पत्नी क्षुधा, व्यथा, ग्रपनी ज्योतिहीन बुझी ग्राँखों में बुझा देना चाहती थी। इस विपन्नावस्था में ग्रपने प्रिय पति से कुछ कहकर उनका दुःख भार ग्रौर बोझिल नहीं करना चाहती थी।—फिर भी दरिद्रता की छाया गम्भीर होती गयी।

× × ×

"यह क्या ?"

इन्द्र ने देखा। ऋषि वामदेव कुत्ते की ग्रंतड़ियाँ पका रहे थे। ऋषि ग्रपनी

उस दरिद्रावस्था में शान्त थे। दरिद्रता के क्रूर आक्रमणों को सहते-सहते उसके आदी हो चुके थे। ऋषि ने एक श्येन को सूखी पल्लव विहीन आश्रम की शाखा पर बैठते हुए देखा।

ऋषि का सूखा आसनस्थ शरीर श्येन का प्रश्न सुनकर हिला।

"ऋषिवर ! कुत्ते की अंतड़ियाँ और आप—।" श्येन ने कहा, "जिस हव्य वाहन पर आप हवि अर्पण करते थे, उस पर अंतड़ियाँ पका रहे हैं ?"

"हाँ—पका रहा हूँ।" ऋषि ने पकती अंतड़ियों को चलाते हुए कहा।

अंतड़ियों के पकने के कारण आश्रम का पवित्र वातावरण दुर्गन्धित हो गया था। जहाँ यज्ञ व्योम की सुरभि फैलती थी, वहाँ दुर्गन्धि ने नरक तुल्य दृश्य उपस्थित कर दिया था।

"आपका कर्म क्या हुआ ऋषि ?" श्येन ने मन्द स्वर से प्रश्न किया।

"अपनी क्षुधा को अर्पण कर दिया है।"

"क्या यह धर्म है ?" श्येन ने गम्भीर स्वर में पुनः प्रश्न किया।

"यह आपद धर्म है।"

ऋषि की पत्नी अपनी सूखी तृणस्वरूप काया लिये श्येन के प्रश्न को सुन-कर आयी। उसकी काया को जैसे हवा ने उड़ाकर वहाँ पहुँचा दिया था।

ऋषि ने कहा—"श्येन ! मैं इस मात्र शेष उपेक्षित अंतड़ियों से आपकी भी सेवा कर सकता हूँ।"

ऋषि पत्नी ने दूसरी ओर मुख फेर लिया। ऋषि पत्नी को देखकर श्येन की मुद्रा करुण हो गई।

"पक्षी ! मनुष्यों ने साथ त्याग दिया। देवताओं द्वारा उपेक्षित हूँ। जगत के इस भूले मानव पर आपने करुणा प्रदर्शित की है। इसे कभी भूल नहीं सकूंगा। चाहे आप श्येन रूप में ही क्यों न यहाँ पधारे हों।"

श्येन ऋषि दम्पति की करुण कहानी, उस करुण दृश्य को देखकर विचलित हो गया। श्येन परिणत हो गया इन्द्र में।

× × ×

"आप !" ऋषि दम्पति ने उठकर इन्द्र की अभ्यर्थना की।

"ऋषिवर ! यह मधुर रस है। आप ग्रहण कीजिए।"

"देवेन्द्र !" ऋषि की आँखें भर आयीं। "आपकी कृपा, आपकी दया मुझे सब भूल गये। आपने स्मरण किया। मैं क्या कहूँ ?"

× × ×

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : ४ : ४ : ११, ४ : १५ : ९-१०, ४ : १६ : १८,
४ : १८ :, ४ : २४ : १०, ४ : २६ : १, ४ : २७ : १,
४ : ३० : १, ४ : ३२ : ९-१२, ४ : १२६, ४ : १३१

अथर्व वेद : १८ : ३ : १५-१६ ।

ऐतरेय आरण्यक : २ : २ : १, २ : ५ : १, ४ : १६ : १८

ऐतरेय ब्राह्मण : ४ : ३० : ३, ६ : १८ : १-२

पंचविंश ब्राह्मण : १३ : ९ : २७

काठक संहिता : १० : ५

मैत्रायिणी संहिता : २ : १ : ११-१३, ३ : २ : ६

ऐतरेय उपनिषद् : ४ : ५

वृहद.राण्यक उपनिषद : १ : ४ : १०-२२

वृहद्देवता : ४ : १३०-१३५

नोट : वामदेव उपाख्यान में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। यह आख्यायिका कालान्तर में भगवान के विराट स्वरूप की कल्पना का कारण हुई, जिसकी पूर्णता गीता के विराट-रूप वर्णन में देखने को मिलती है।

१. अर्जुनी—यह एक नक्षत्र का नाम है। अथर्व वेद में इसे फाल्गुनी कहा गया है।

२. कक्षीवत—एक ऋषि हैं। प्रजवंशीय रहे होंगे। अतएव पज्रिय संज्ञा इन्हें दी गई है। इन्होंने देशीय राजा स्वनय भाव्य द्वारा दान प्राप्त किया था। इन्हें कक्षीवान औशिज कहा जाता है। औशिज वंशीय प्रतीत होते हैं। उशिज नामक दासी इनकी माता थीं। एक मत यह भी है। शतजीवी थे। वृद्धावस्था में कुमारी वृचपा से विवाह किया था। दीर्घतमस के पुत्र थे। एक और मत है कि ये क्षत्रिय थे। आयवसु तथा मशशारि के तीन पुत्रों ने इन्हें कष्ट दिया था। ऋग्वेद काल में भी वह पुरातन व्यक्ति माना जाता था। इसकी कन्या सूक्तद्रष्टा घोषा थी। अंगिरस कुल के मंत्रकारों में इनका नाम है।

३. कुत्स—आर्जुनेय किंवा अर्जुन के वंशज थे। कुत्स के वंशजों को कौत्स कहते हैं। शुष्ण को इन्द्र के साथ पराजित किया था। उन्होंने स्मदिभ तथा वेतसु को पराजित किया था। अतिथिग्व और आयु के साथ इन्द्र द्वारा स्वतः पराजित होने का उल्लेख मिलता है। तूर्यापा ने भी इन्हें पराजित किया था। रुरु नामक राजर्षि के पुत्र थे। अर्जुनेय कहा गया है, इससे प्रतीत होता है कि इनकी माता का नाम अर्जुनी रहा होगा। अंगिरा कुल के गोत्रकार तथा मंत्रद्रष्टा थे।

४. दनु—प्राचेतस दक्ष प्रजापति तथा असिक्नी की कन्या, कश्यप की भार्या थीं। इसके पुत्र का नाम वृत्र था। दनु के पुत्र दानव कहलाये।

५. दिवोदास—वैदिक काल के राजाओं में एक प्रमुख राजा थे। इनके पिता का नाम बृहद् अश्व था। भरतों के प्रमुख तृत्सु वंशीय राजा सुदास के पिता किंवा पितामह थे। एक मत है कि पिजवन इनके पुत्र थे। सुदास के पिता पिजवन थे। तुर्वशों तथा यदुओं से इनकी शत्रुता थी। इनका शम्बरदास प्रमुख शत्रु था। वह पार्वत्य जाति का प्रमुख था। अग्निकल्प के समर्थक थे। इनका पणियो, पारावतो तथा बृसयो से लड़ने का उल्लेख है। इन्हें अतिथिग्व अतिथियों का सत्कार करने के कारण कहा गया है। इनके पुरोहित भारद्वाज थे।

६. वामदेव—गौतम ऋषि का पुत्र कहा गया है। अतएव गौतम कहे जाते हैं। ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के ऋषि हैं। प्रथममण्डल के चतुर्थ सूक्त के द्रष्टा हैं। 'जन्मत्रयी' सिद्धान्त के आचार्य हैं।

७. शम्बर—दास था। कुलीनर का पुत्र था। पर्वतीय था। इसके निन्नावे दुर्ग थे।

मण्डल : ५

त्र्यरुण - वृषजान

"पुरोहित !" राजा त्र्यरुण ने अपने पुरोहित वृषजान को सम्बोधित किया।

"इक्ष्वाकु !" पुरोहित त्रिवृष्ण पुत्र राजा त्र्यरुण के समीप सादर आया।

"ब्राह्मण !" राजा ने अपने सुन्दर स्वर्णालंकृत रथ की ओर देखते हुए सस्मित कहा, "मुझे एक कुशल सारथी की आवश्यकता है।"

"राजन् !" वृशजान ने मुसकराते हुए उत्तर दिया, "यदि कोई आपत्ति न हो तो मैं सारथी धर्म का निर्वाह करूँ ?"

"आप !" राजा चकित हुआ।

"हाँ, एक क्रीड़ा होगी।" पुरोहित ने सस्मित रथ में योजित अश्वों को देखते हुए कहा।

"विचित्र दृश्य होगा ?" राजा ने ध्यानपूर्वक पुरोहित को लक्ष्य किया। एकत्रित जन समुदाय में कौतूहल उत्पन्न हुआ।

"पधारिये राजन् !" पुरोहित ने विनम्र वाणी में नत मस्तक होते हुए साग्रह कहा।

"अशोभनीय लगेगा।" राजा ने हिचकते हुए कहा।

"आज यह भी देखिये।" पुरोहित ने सरलतापूर्वक कहा। राजा और पुरोहित का यह कार्य उपस्थित जन समुदाय के लिए कौतूहल की सामग्री हो गये थे।

पुरोहित शीघ्रतापूर्वक रथ की ओर बढ़ा। सारथी-स्थान पर बैठ गया। अश्वों की रश्मियाँ हाथों में लीं। किंचित् झटका दिया। अश्वों ने सारथी को सतर्क समझा। सावधान हो गये। पुरोहित का सारथी रूप देखकर राजा कुछ गम्भीर हुए। यह अपूर्व दृश्य जनता के कोलाहल का कारण बन गया।

राजा रथ के समीप आये। पुरोहित को सादर प्रणाम किया। अश्वों के पुट्ठों को थपथपाया। अश्वों ने स्वामी का आगमन जाना। प्रसन्न हुए। उनके

चारों पद चंचल हुए। उठने और गिरने लगे। खुरों से उखड़ी धूल अश्वों के पाँवों में लिपटने लगी।

राजा ने रथ की परिक्रमा की। सब कुछ ठीक था। सबको नमस्कार कर रथारूढ़ हुए। जनता ने हर्षनाद किया। पुरोहित ने रास सम्भाली। हल्का झटका दिया। अश्वों ने संकेत समझा। रथ वायु वेग से चल पड़ा। लोगों के लिए पीछे छोड़ती धूल।

× × ×

"शिशु! शिशु!! शिशु!!!"

राजा रथ में उठते-उठते चिल्लाने लगे। वेगवान रथ रुक नहीं सका। दूसरे ही क्षण ब्राह्मण कुमार का मस्तक रथ-चक्र से छिन्न हो गया। धरा रक्त रंजित हो गई।

पुरोहित ने अपनी पूर्ण शक्ति से रास खींची। अश्व ऊपर उठते-उठते रुक गये। किन्तु तब तक रथ का चक्र रक्त बूँदों से लाल हो गया। कौतुकाक्रान्त कुमार अपनी लीला समाप्त कर चुका था। राजा रथ से कूद पड़ा। रथ आगे निकल गया था। राजा पीछे बालक के पास दौड़े आये। बालक का मस्तक धड़ से छिन्न हो गया था। क्रूर रथ-चक्र बालक के कंठ पर से निकल गया था।

पुरोहित ने रास रथ के खम्भों से बाँधी। वेगपूर्वक नीचे उतरा। बालक के पास पहुँचा। मुद्रा विषादपूर्ण हो गई। राजा और पुरोहित ने एक-दूसरे की तरफ देखा। राजा की दृष्टि में क्रोध था। पुरोहित की आँखों में ग्लानि थी।

जनता एकत्रित हो गई थी। लोग कहने लगे—"अब्रह्मण्य" कार्य हत्या?" दोनों इस हत्या के उत्तरदायी थे। जनता का रोष रथी और सारथी पर बढ़ने लगा।

बालक बचाया नहीं जा सकता था। वह मर चुका था। उसकी रक्त धूसरित काया करुणा को रुला रही थी। लोगों की भर्त्सना से राजा विचलित हो गया। उसने क्रोध से कहा :

"सारथी! तुम्हारे कारण हत्या हुई है।"

"नहीं।" पुरोहित सारथी ने पश्चात्ताप-स्वर में उत्तर दिया।

"तुम इस हत्या के उत्तरदायी हो।" राजा ने पुरोहित को अपराधी माना।

"नहीं।" पुरोहित ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"तुम हत्यारे हो।" राजा ने क्रूर दृष्टि से देखा।

"नहीं।" पुरोहित ने गम्भीर स्वर में कहा।

"रथ तुम चला रहे थे।"

"किन्तु रथ के स्वामी आप हैं। उत्तरदायित्व आपका है।"

"मेरे हाथों में अश्वों की बागडोर नहीं थी। मैं अश्वों को नियंत्रित नहीं कर रहा था। मैं रथ नहीं चला रहा था।" राजा ने उपालम्भ का आश्रय लिया।

"आप उत्तरदायित्व से बच नहीं सकते। राजा अपनी प्रजा, अपने कर्मचारी सबके कर्मों के लिए उत्तरदायी होता है।"

"किन्तु मेरा इसमें क्या अपराध—?"

"और मेरा क्या अपराध?"

"आपने रथ रोका नहीं।"

"मैंने रोकने का भरसक प्रयास किया।"

"किन्तु कुमार की हत्या हुई।"

"मैंने प्रयत्न किया। मैंने अश्वों को रोका। वे वेग में थे। रुक नहीं सके। मैंने बालक को चक्र के नीचे आने के लिए विवश नहीं किया था।"

"नहीं पुरोहित! इस हत्या के अपराधी आप हैं।"

"राजन्! हत्या का अपराध आप पर है।"

"अरे लड़का तो मर गया। इस विवाद से क्या लाभ?" जनता क्रुद्ध हुई।

"दोनों हत्यारे हैं।" किसी ने कहा।

"नहीं राजा हत्यारा है।" दूसरे ने कहा।

"नहीं पुरोहित हत्यारा है।" तीसरे ने कहा।

"अपराधी को दण्ड मिलना चाहिए।" जनता का क्रोध उग्र हुआ।

"निश्चय।" राजा ने तुरन्त जनता का समर्थन किया।

"कौन निर्णय करेगा?" जनता ने प्रश्न किया।

"निर्णय इक्ष्वाकु करेंगे।" राजा ने उत्तर दिया।

"हाँ, ठीक है। अपराध का निर्णय इक्ष्वाकु करेंगे।" जनता की सम्मति गूँज उठी।

"किन्तु—।" पुरोहित ने कुछ कहना चाहा। उसकी ध्वनि जनरव में विलीन हो गई।

× × ×

कुमार के माता-पिता आ गये । उन्होंने अपने पुत्र को मृत देखा । उनके हृदयस्पर्शी रुदन से स्थान करुण हो गया । राजा उनका करुण रूप देखकर दुःखी हो गया । पुरोहित की चिन्तनशील मुद्रा कुमार के मृत शरीर पर लग गई । उसका हृदय विकलित था । बालक मृत हुआ था । माता-पिता ने अपना पुत्र खोया था । माता-पिता किस अपराध से अपने पुत्र-रत्न से वंचित किये जाएँ ? यह प्रश्न क्रूर रूप से मूर्तमान हो राजा और पुरोहित के सम्मुख खड़ा हो गया ।

पुरोहित शान्त था । आगे बढ़ा । बालक के पास आया । उसने अथर्वन् मन्त्रों का दर्शन किया । 'वार्श साम' स्तोत्र द्वारा स्तवन किया । मन्त्र-शक्ति ने अद्भुत शक्ति दिखाई । बालक पुनर्जीवित हो गया । जनता प्रसन्न हुई । राजा प्रसन्न हुए । कुमार माता-पिता के साथ खेलने लगा । शोक हर्ष में परिणत हो गया ।

× × ×

पुरोहित ने वल्गाओं को उँगलियों से सम्भाला । राजा रथारूढ़ हुआ । पुरोहित ने पूछा :

"किस दिशा में चलूँ ?"

"इक्ष्वाकु हमारा निर्णय करेंगे ।" राजा ने आदेश स्वर में कहा ।

पुरोहित विचलित नहीं हुआ । उसने स्पष्ट स्वर में कहा, "ठीक है ।"

रथ अपराध निर्णय निमित्त इक्ष्वाकुओं के निवासस्थान की ओर सवेग चल पड़ा ।

× × ×

"राजन् ! अग्नि में ताप नहीं है ।" परिचायक ने प्रांजलिभूत निवेदन किया ।

"यह कैसे होगा ?" राजा ने चकित होकर पूछा ।

"पृथ्वीपते ! अग्नि जलती है । ज्वाला उठती है । परन्तु उसमें ताप नहीं है ।" भय कम्पित स्वर में परिचायक ने कहा ।

राजा चिन्तित हो गया । परिचायिका ने प्रवेश कर विनयपूर्वक कहा :

"धर्मराज ! राजप्रासाद में पाक भोजनादि सबका बनना बन्द हो गया है ।"

"क्यों ?"

"अग्नि पर कुछ पकता नहीं ।"

"मेरी समझ में नहीं आ रहा । यह सब कैसे हो रहा है ?"

"यही हो रहा है । न्यायप्रिय !"

"चलो देखूँ ।" चिन्तित राजा ने परिचायक तथा परिचायिका के साथ अन्त:पुर में प्रवेश किया ।

× × ×

"महाराज ! महाराज !! महाराज !!!"

हा-हाकार करती जनता से राज्य-सभा भर गई । राजा की मुद्रा उदास थी । सिंहासन पर बैठे थे । राजा ने जनता की पुकार सुनी । सहसा वे खड़े हो गये । लोग बोले :

"घरों में चूल्हे नहीं जल रहे हैं । पानी, दूध, कुछ गरम नहीं हो रहा है । यह विपत्ति कैसे आ गई राजन् ?"

"यही मेरी चिन्ता का कारण है ।" चिन्तित राजा ने उत्तर दिया ।

"राजन् ! आप उत्तरदायी हैं । प्रजा कष्ट क्यों पा रही है ?"

"हमने क्या अपराध किया है ?" राजा का मस्तक नत हो गया ।

जनसमूह में से ध्वनि उठी : "पुरोहित कहाँ है ?"

राजा का नत मस्तक उठा ।

"पुरोहित ! पुरोहित !! पुरोहित !!! उनसे पूछा जाय । क्या देव अप्रसन्न हैं ?" दूसरी ध्वनि उठी ।

"वह विदेश चले गये हैं ।" राजा ने धीरे से कहा ।

"क्यों ?" वाणी में रोष था ।

"इक्ष्वाकुओं ने निर्णय दिया था ।"

जनसमूह शान्त हो गया । वह आगे सुनने के लिए उत्सुक हो गया । राजा ने कहा :

"कुमार की हत्या का उत्तरदायित्व इक्ष्वाकुओं ने पुरोहित पर रखा था ।"

"ओह—यह बात है ?" जनता में से कोई बोला ।

"हाँ—ठीक है । इक्ष्वाकुओं ने इक्ष्वाकु राजा का पक्ष लिया होगा ।" किसी ने व्यंग्य किया ।

"और—अधर्म देखकर पुरोहित ने क्रोध में राज्य त्याग दिया ।" जनता बोली ।

"उसकी क्रोधाग्नि के साथ यहाँ की अग्नि भी चली गई।" किसी ने भारी स्वर में चुटकी बजाते हुए कहा।

"वह निर्दोष है।" कुछ लोग बोले।

"और—अपने साथ अग्नि की ज्योति, उसका ताप भी ले गया।" आवाज उठी।

"न्यायहीन राष्ट्र में तेज कैसे रहेगा ?" जनता चिंतित हुई।

जनता का प्रकट रोष राजा ने देखा।

"ठहरो !" यह अन्याय नहीं है।" राजा ने गम्भीर स्वर में कहा।

"यदि नहीं तो किस न्याय के कारण हम पर यह विपत्ति आयी है ?" एक ने आगे बढ़कर प्रश्न किया।

"यज्ञ की अग्नि भी शान्त हो गयी है।" कमण्डलधारी ऋषि ने कमण्डल उठाते हुए राजा को सम्बोधित किया।

जनता ऋषि की ओर देखने लगी।

"यज्ञ हवि नहीं ग्रहण करता है।" दूसरे ऋषि ने अपना कृष्ण मृग चर्म ऊपर उठाकर हिलाते हुए कहा।

"महान् कष्ट। बिना यज्ञ वृष्टि कैसे होगी।" विद्वन्मण्डली बोली।

"अवर्षण होगा।" जनता से चिन्तित ध्वनि उद्भूत हुई।

"उपाय क्या है ?" राजा ने सविचार प्रश्न किया।

"पुरोहित वृशजान को वापस लाइये।" कोई जनता में से बोला।

"वापस लाइये ! बुलाइये !! बुलाइये !!!" जनता पुकारने लगी।

× × ×

"महात्मन् !" पुरोहित वृषजान के सम्मुख व्यथित राजा करबद्ध उपस्थित होकर बोला :

"राजन् ! चिरंजीव हो" पुरोहित ने आशीर्वाद दिया।

"राज्य में भयंकर स्थिति उत्पन्न हो गयी है।"

"जानता हूँ।"

"अन्याय का प्रतिकार——।"

"राजन् ! न्यायविहीन राज आत्मा विहीन शरीर तुल्य है।"

"महात्मन् ! क्षमा कीजिये।"

"पृथ्वीपते ! क्षमा धर्म है।" पुरोहित प्रसन्न हो गया।

"मनुष्य से अपराध होता है—" राजा ने प्रांजलिभूत लज्जित होते हुए कहा।

"क्या इच्छा है?" पुरोहित ने सस्मित पूछा।

"आप पुनः मेरे पुरोहित पद को सुशोभित कीजिये !"

राजा ने प्रणाम करते हुए निवेदन किया। ऋषि ने उत्तर नहीं दिया। "महात्मन् ! जिस जनता की आपने सेवा की है, जिसका मैं सेवक हूँ, उसका क्या अपराध है ? हमारे अपराध के लिए वह क्यों कष्ट पा रही है ?"

"राजन् !—"

"सुनिये ! आपका राज पौरोहित्य, मेरे राजपद का अस्तित्व, जनता के अस्तित्व पर निर्भर है। जिसके लिए हम हैं, यदि वही नहीं रहेगी, तो हमारी उपयोगिता का क्या अर्थ ?"

वृषजान गम्भीर हो गये।

"इस समय हठ करना शोभनीय नहीं कहा जायगा। मानव कर्त्तव्यों के कोमल सूत्र से हम सब बंधे हैं। उस कोमल सूत्र के खण्डित हो जाने पर, पुनः क्या शेष रह जायगा ?"

वृषजान में विवेक ने प्रवेश किया। राजा ने करबद्ध प्रार्थना की :

"सहस्रों अबोध शिशु, बालक, कुमार, नर-नारी, राजा-प्रजा सभी कष्ट में हैं। यह कष्ट सर्वव्यापी है। मुझे या राजवंश को केवल कष्ट नहीं मिल रहा है। यदि इस कष्ट की सीमा राजवंश तक सीमित होती तो चिन्ता की कोई बात नहीं थी, हम भुगत लेते। निरपराध जनता किस अपराध के लिये कष्ट की भागी बनायी जाय ?"

वृषजान राजा के समीप आ गये। राजा ने सादर कहा :

"आपका धर्म क्षमा है। मेरा धर्म दण्ड है। यदि आपने दण्ड का आश्रय लिया है, तो आप अपने धर्म से विरत हो गये हैं। आप अपने धर्म का आश्रय ग्रहण कीजिए। जनता के कष्ट समाप्ति की आवश्यकता है। यदि मेरे दोष का दण्ड जनता को दिया जा रहा है, तो यह स्वयं एक अपराध है। मुझे दण्ड दीजिए। मैंने आपसे क्षमा याचना की है। क्या आप क्षमा-धर्म भूल गये हैं ?"

"राजन् !" वृषजान ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "मैं आपका पुरोहित होना स्वीकार करता हूँ।"

राजा ने श्रद्धा भक्तिपूर्वक वृषजान को प्रणाम किया।

× × ×

जनता में विश्वास लौटा। राजा अपने पुरोहित वृषजान के साथ राज्य-प्रासाद में थे। प्रासाद के बाहर विपुल जनता थी। लोग उत्सुक थे जानने के लिये, क्या होता है, कितनी शीघ्र वर्षा होती है।

राजा ने प्रासाद में पुरोहित का यथाविधि सत्कार किया। पुरोहित राज्य-प्रासाद में लुप्त अग्नि-ताप को ढूँढ़ने लगा।

पुरोहित चकित हो गया। उसने राजा से साश्चर्य कहा :

"राजन्! मैंने कारण ढूँढ़ लिया।"

राजा प्रसन्न हो गये। सब लोग कार्य में होती प्रगति जान कर पुलकित हो गये। पुरोहित ने स्थिर स्वर में कहा :

"चलिये बैठा जाय।"

राजा सहित पुरोहित आसन्दी पर आकर बैठ गये। पुरोहित ने राजा से कहा :

"राजन्! रानी को बुलवाइये।"

"क्यों?" राजा स्तब्ध हुए।

"वह पिशाचिनी है।"

राजा हतप्रभ हो गये। उन्होंने पुरोहित की ओर देखा।

"राजन्! उस पिशाचिनी के कारण अग्नि लुप्त हो गयी है।"

राजा उदास हो गये। पुरोहित ने कहा :

"परिचायक को भेजिए। रानी का यहाँ आना आवश्यक है।"

× × ×

राजा ने देखा, रानी उदास मुख परिचारिकाओं के साथ अनिच्छापूर्वक चली आ रही थी। राजा ने उसे क्रूर दृष्टि से देखा। रानी ने पुरोहित को प्रणाम किया। राजा का अभिवादन छिपती निगाहों से किया। वह उद्विग्न थी, भयाकुल थी। उसे देखते ही पुरोहित ने कहा :

"रमणी! कुमार को तू गर्भ में धारण करती है। गर्भ में उसका पोषण करती है। कुमार जन्म ग्रहण करता है। जन्म लेने के पश्चात् उस कुमार को लोग जानते हैं। शिशु अपनी प्रारम्भिक अवस्था में वार्धक्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार मातास्वरूप अरणी, जिस कुमारस्वरूप अग्नि को जन्म देती है, उसे हम अपने नेत्रों से देखते हैं"

अग्नि ताप की कुमार से उपमा देते हुए पुरोहित ने रानी को सम्बोधित किया। रानी उदास हो गई। उसके मुख पर श्मशान की-सी शान्ति थी। कुछ

उत्तर नहीं दे सकी। पिशाचिनी रानी को पुरोहित ने पुनः सम्बोधित किया :

"अग्निदेव !" पुरोहित ने अग्नि का स्मरण किया। उन्हें अन्तर प्रणाम करते हुए बोले, "वे अपने महान् तेज द्वारा प्रकाशित हैं। उनकी महानता से सब कुछ प्रकट होता है। वे वृद्धि पाकर असुरों को कष्टकर योजनाओं को नष्ट करते हैं। असुरों के नाश निमित्त अपनी ज्वालाओं को दीप्तमान करते हैं।"

रानी वेत तुल्य काँपने लगी। साहस खो चुकी थी। राजा ने रानी की दशा देखी। उसे अपराधिनी समझा। राजा के नेत्रों से अग्निज्वाला निकलने लगी।

रानी को दण्ड देने के लिए आतुर हो गये। पुरोहित अग्निदेव का आह्वान करता अन्तर्मुख हो गया।

सहसा अग्निदेव प्रकट हुए। उनके प्रकाशित होते ही ताप लौटा। अन्धकार भागने लना। प्रकाश रश्मियाँ प्रस्फुटित हो गईं। अग्नि का दर्शन करते ही पिशाची कराहकर बैठ गयी। अग्नि-ज्वाला पिशाची रानी की ओर बढ़ी। रानी भाग नहीं सकी। ज्वाला उसे अपने अंकों में लेने लगी। मुहूर्त मात्र में रानी का भस्म मात्र अवशेष रह गया।

अग्निदेव को सबने दण्डवत किया। जनता हर्षित हो गयी। उछलने लगी।

पिशाचिनी आतंक से अन्तःपुर हो गया शून्य।

आधार ग्रन्थ :

ऋषि : कुमार आत्रेयो वृषो : देवता : अग्नि : । ऋग्वेद ५ : २

तथा ५ : २१, ५ : २१ : ३

पंचविंशत ब्राह्मण : १३ : ३ : १२

बृहद्देवता : ५ : १४–२३

नोट : यह एक सैद्धान्तिक कहानी न्याय शास्त्र की दृष्टि से है। रथ अथवा गाड़ी का चलाने वाला सारथी किंवा चालक दुर्घटना के लिये दोषी है अथवा रथ किंवा गाड़ी का स्वामी। रथ से अथवा गाड़ी से हत्या होने पर चालक अथवा सारथी उसके लिये उत्तरदायी अथवा दण्ड का पात्र है अथवा स्वामी? यह विचार ऋग्वेदकाल के समान आज भी दुर्घटना होने पर चलता है। जिसका निर्णय न्यायालय देता है।

१. इक्ष्वाकु—इक्ष्वाकु यह एक वैदिक राजा थे। यह शब्द इक्ष्वाकु वंशीय राजाओं के लिये प्रयोग किया गया है। इक्ष्वाकु राजाओं का वंश मूलतः पुरू राजाओं का वंश था, यह भी एक मत है। ऋग्वेद में केवल एक बार यह शब्द संदिग्धरूप से आया है।

२. त्र्यरुण—यह एक वैदिक राजा थे। त्र्यरुण को इक्ष्वाकु कहा गया है।

३. वृषजान—यह वृषजन का वंशज था। प्रसिद्ध पुरोहित था। इसे 'जान' किंवा 'वैजान' पैतृक नाम प्राप्त हुआ था।

श्यायाश्व

सूखी हवा थी। पुष्टकर वायु थी। आर्द्रहीन भूमि थी। शीतोष्ण कटि-बन्धीय पादप माला थी। गोमती का तट। पर्वत मालाओं से वेष्ठित था। गायों से पूर्ण था। दूरस्थ हिमालय में था और वहाँ का गऊ प्रतिपालक राजा रथवीति दाल्भ्य किंवा दार्म्य था।

वह चला जा रहा था, एकान्त कामना के साथ, यज्ञ करने की पवित्र अभिलाषा में।

वह पहुँचा, महर्षि अत्रि के आश्रम में। आश्रम के पवित्र वातावरण में ऋषि की पवित्रता मुखरित थी। ऋषि की आत्मा आश्रम की आत्मा में मुखरित थी। वहाँ का व्यवसाय था आत्मदर्शन।

रथवीति ने आश्रम में मुहुर मुहुर प्रवेश किया। उन्हें देखा ऋग्वेद के पंचम मण्डल के अनेक सूक्तों के ऋषि अत्री पुत्र अर्चनाना की आँखों ने। महर्षि उठे रार्जाष का अभिनन्दन करने। राजर्षि ब्रह्मर्षि का सुन्दर मिलन था। मिलन मूर्तमान हो उठा। वाक् द्वारा।

"राजर्षे ! आपका पवित्र दर्शन—।"

"मुने ! हमारा प्रणाम स्वीकार कीजिए।" रथवीति विनीत खड़े हो गये। करबद्ध प्रणाम करते हुए बोले :

"अतिथि देव !" महर्षि अर्चनाना ने विनयपूर्वक कहा, "पाद्य, अर्घ्य, मधु-पर्क ग्रहण कीजिये।"

रथवीति ऋषि के विनय से प्रसन्न हो गये। ऋषि ने उन्हें कुशासन दिया। दूर से जाने के कारण विश्रान्ति निमित्त जल दिया। रथवीति ने प्रदत्त जल से हाथ, पैर तथा मुख धोया। तत्पश्चात् मधुपर्क में राजर्षि ने अपनी श्रान्ति को तिरोहित किया।

× × ×

"राजर्षे ! आपका अकस्मात् यहाँ आगमन लोभी के खोये धन की पुनः प्राप्ति तुल्य मुझे सुखकर लगा है।" अर्चनाना ने सहृदयता प्रकट करते हुए कहा।

"महर्षे ! पवित्रात्माओं का दर्शन पूर्व जन्म के पवित्र पुण्य प्रताप के कारण होता है। मैं भी अपने पूर्व पुण्यों का उदय आज होता देखता हूं।" रथवीति ने अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहा।

"राजन् !" अर्चनाना ने और विनम्र स्वर में कहा, "आपके उत्तम मनोरथ की जिज्ञासा करने का मैं अधिकारी हो सकता हूँ ?"

"महर्षे !" रथवीति ने आशान्वित स्वर में कहा, "हमारी इच्छा यज्ञ करने की है।"

"उत्तम विचार है। राजन् !" महर्षि अर्चनाना ने उत्साह प्रकट करते हुए कहा।

"महात्मन् ! यदि आपको कष्ट न हो तो यज्ञ में—।"

"अवश्य राजन् ! मैं आपके यज्ञ में आऊँगा।"

"अत्रिकुल नन्दन ! आने की बात नहीं है। मैं आपसे ऋत्विज होने की प्रार्थना करने आया हूँ।"

"ओह !" निष्कलुष कोमल हृदय ऋषि प्रसन्न हो गये।

"महर्षे ! आप सर्वशास्त्र विशारद वेदज्ञ तपस्वी हैं। आपने ऐहिक एषणाओं का त्याग किया है।"

ऋषि अपनी प्रशंसा से प्रसन्न नहीं हुए। वे निर्विकार रथवीति की बात सुनते रहे।

"आप सुपात्र हैं। आपके द्वारा यज्ञ सुचारु रूप से सम्पन्न होगा।"

"देवेच्छा।" अर्चनाना ने अपने इष्टदेव का जैसे स्मरण करते हुए कहा।

"निस्संदेह ! महर्षे ! मेरी यज्ञेच्छा आपके आश्रम में फलवती होगी। इससे बढ़ कर मेरे लिए और सौभाग्य की बात क्या हो सकती है।"

"पूर्ण होगी राजन् !" महर्षि ने गम्भीरतापूर्वक कहा, "तुम्हें ऐहिक आयुष्मिक सुख की प्राप्ति होगी।"

"भगवन् ! यही कामना है।" रथवीति ने महर्षि को 'शिरसा नमामि' किया।

× × ×

राजा रथवीति का यज्ञ मण्डप था। शास्त्रीय साज-सज्जा से सम्पन्न था। मण्डप में आगमन हुआ, महर्षि अर्चनाना का यज्ञ-सिद्धि निमित्त। उनका अनुसरण कर रहा था एक भव्य-यौवन सम्पन्न सुन्दर युवक ऋषि। लोगों की अनायास दृष्टि उस पर चली गयी। वह थे महर्षि अर्चनाना के पुत्र तथा अत्रि के पौत्र श्यायाश्व। उन्हें सांगोपांग सब वेदों की शिक्षा पिता अर्चनाना से प्राप्त हुई थी।

रथवीति ने पिता-पुत्र दोनों महर्षियों का सादर स्वागत किया। अर्चनाना ऋत्विज्ञ बने। यज्ञ की सफलता की कामना में लोग दत्तचित्त लग गये।

× × ×

यज्ञ में हवि पड़ रही थी। श्रुवा से गिरती घृत-धारा यज्ञ-ज्वाला को तीव्र कर देती थी। यज्ञ धूम्र ले कभी हवा की दिशा उलटती थी। लोगों की आँखों में धुआँ लगता था। आँखों में जल आने लगता था। गर्मी मालूम लगने लगती थी। पुनः वायु स्थिर होती थी। धूम्र-शिखा ज्वाला की शक्ति से गगन-मण्डल में सीधी जाने लगती थी।

यज्ञ-मण्डप में यज्ञीय विधि के अनुसार लोग बैठे थे। पूर्ण गरिमा में यज्ञ हो रहा था। स्वाहा की ध्वनि देवताओं का स्मरण दिलाती थी। उनके प्रति सहज श्रद्धा भावना उत्पन्न कर देती थी।

× × ×

एक ओर राजा की यशस्विनी कन्या आसन पर बैठी थी। वह परम सुन्दरी थी। यौवन उसके सौम्य वस्त्रों से बरबस झाँकता नहीं थकता था। उसकी युवा शरीर कान्ति, यज्ञ प्रभा से और कान्तिमय हो उठी थी। ऋषि अर्चनाना की दृष्टि कन्या पर हठात् पड़ी। उसे देखते ही मुग्ध हो गये। उसे अपनी पुत्र-बधू रूप में देखने की कल्पना की।

श्यायाश्व पिता की दृष्टि यज्ञ से हटकर दूसरी ओर लगते देख चकित हुआ। पिता की दृष्टि-मार्ग का अनुकरण किया। उसकी दृष्टि युवती पर जाकर रुक गयी। युवती का यौवन जैसे सुदृढ़ बाँध स्वरूप हो गया था। उसके दृष्टि प्रवाह को आगे जाने से रोक दिया। ऋषि कुमार राजकन्या पर आसक्त हो गया।

श्यायाश्व ने देखा यौवन का सफल रूप और उसमें अपने यौवन के साफल्य की कामना। वह चकित था, कामिनी के इस रूप को देखकर। उसका मन

कह उठा—यह मेरी पत्नी होती तो कितना अच्छा होता ?

पिता और पुत्र दोनों के चर्म-चक्षुओं की क्रिया-प्रतिक्रिया एक ही रूप को देखकर भिन्न-भिन्न हुई। पिता की दृष्टि ने उसे पुत्र-वधू के रूप में देखा। पुत्र ने कामिनी रूप में देखा।

× × ×

"ऋषिकुमार !" रथवीति ने नतमस्तक श्यायाश्व की तरफ देखते हुए पूछा, "मैं आपके किस प्रयोजन को सिद्ध कर सकता हूँ।"

श्यायाश्व नीरव थे। रथवीति ने किंचित चकित होते हुए पूछा, "आत्रेय !"

श्यायाश्व की आँखें लज्जित थीं। वाणी कण्ठ तक आकर रुक जाती थी। रथवीति ने उन्हें उत्साहित करते हुए पूछा :

"कहिये ! मेरे लिए आपकी आवश्यकता पूर्ति शुभ होगी।"

"यदि आप आज्ञा दें तो कहूँ ?" श्यायाश्व ने विनत नेत्रों से कहा।

"वेदविद् ! इसमें लज्जा कैसी ? मनुष्य एक-दूसरे से अपना प्रयोजन कहता है।"

"मैं विवाह करना चाहता हूँ।" श्यायाश्व भूमि की ओर देखने लगा।

"आप ?" राजा चकित हुए।

"हाँ।" श्यायाश्व ने दूसरी ओर दृष्टि फेरते हुए कहा।

"शुभ कार्य है। पवित्र बन्धन है। शुभ मुहूर्त में कर डालिये।" राजा को कौतूहल हुआ।

"आपकी अनुमति—।" श्यायाश्व की अंजलि बँधने लगी।

"निश्चय। विवाह-संस्कार है, धर्म है। उसे तो एक दिन करना ही है।" रथवीति ने निर्विकार भाव से कहा।

"किन्तु—।" ऋषिकुमार कहते-कहते रुक गया।

"कहिये ! वह सौभाग्यशालिनी कौन है ?" राजा ने मुसकराकर पूछा।

"आपकी राजकुमारी।"

श्यायाश्व का मुख नत हो गया। वह लज्जित हो गया। वाणी रुद्ध हो गयी। जो नहीं कहना चाहिए था उसे कह दिया था।

राजा प्रस्ताव सुनकर चकित हुए। उन्होंने ऋषि को कई बार ऊपर से नीचे तक देखा। जैसे उनके शरीर तथा आत्मा को कुछ निश्चय करने के पहले तोल रहे थे। वह कुछ कहना चाहते थे। महर्षि अर्चनाना वहाँ आ गये।

राजा तथा अपने पुत्र को नीरव देखकर अर्चनाना को कौतूहल हुआ। उनकी जिज्ञासु दृष्टि कभी राजा पर और कभी पुत्र पर पड़ने लगी। पुत्र की लज्जित मुद्रा देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। रथवीति की प्रश्नपूर्ण दृष्टि देखकर रहस्य समझ में नहीं आया। उन्होंने राजा की ओर जिज्ञासु-मुद्रा से देखा :

"महर्षे !" राजा ने ऋषि अर्चनाना को प्रणाम करते हुए कहा, "ऋषि श्यायाश्व की कामना है, राजकुमारी से पाणिग्रहण-संस्कार में बँध जाएँ।"

"ओह—!" अर्चनाना प्रसन्न हो गये।

अर्चनाना की प्रसन्न मुद्रा देखकर राजा किंचित चकित हुए।

"राजन् ! आपकी कन्या मैंने यज्ञ-मण्डप में देखी थी। मेरे मन में अनायास भावना उठी कि वह मेरी पुत्र-वधू होती तो अच्छा होता।"

श्यायाश्व पिता की बात सुनकर प्रफुल्लित हो गया। राजा ने कण्ठ साफ करते हुए कहा :

"महात्मन् ! कौन अपनी कन्या का विवाह किसी ऋषि से नहीं करना चाहेगा ? यह मेरे लिए सौभाग्य की बात होगी।"

श्यायाश्व प्रसन्न हो गया। उसका हृदय खिल गया। अर्चनाना का भार जैसे हल्का हो गया। उन्होंने आभार प्रकट करते हुए कहा :

"राजन् ! आपने मुझे कृतार्थ किया।"

"महर्षे ! कृतार्थ हुआ मैं।"

"पाणिग्रहण संस्कार—?"

"ठीक है महर्षे ! किन्तु ?"

"किन्तु क्या ?"

"रानी से पूछ लेना आवश्यक है। उसकी अनुमति बिना मेरे लिए कुछ करना सम्भव नहीं होगा। वह कन्या की माता है, मैं पिता हूँ। वह मेरी अर्द्धांगिनी है। पूर्ण अंग की अनुमति कार्य को पूर्ण करने के लिए अपेक्षित होना स्वाभाविक है।"

"ठीक है राजन् !" अर्चनाना ने कहा, "अनुमति तथा रानी का परामर्श इस प्रकार के कार्यों में उचित होगा।"

श्यायाश्व का मन राजा तथा पिता का संवाद सुनकर अज्ञात शंका से शंकित हो गया।

× × ×

"देवी !" राजा रथवीति ने रानी से पूछा, "कन्या विवाह योग्य हो गई है।"

"हाँ !" रानी असमय प्रश्न सुनकर किंचित चकित हुई।

"उसका विवाह कर देना उचित होगा।"

"यह सब प्रश्न आप आज क्यों कर रहे हैं ?" रानी ने राजा के गम्भीर मुख पर दृष्टि स्थिर करते हुए पूछा।

"मुझे एक वर मिल गया है। सुपात्र है, वेद-विज्ञ है, स्वस्थ और सुन्दर है।" राजा ने मुसकराते हुए रानी के मुख की तरफ देखा।

"अपना सौभाग्य !" रानी ने मुसकराकर पूछा, "कहाँ वर मिल गया ?"

"यहीं।" राजा ने गगन मण्डल की ओर देखते हुए कहा, "वर ने स्वयं ही विवाह का प्रस्ताव रखा है।"

"अच्छा !" रानी ने साश्चर्य पूछा, "वह है कौन ?"

"तुमने उसे देखा है।"

"मैंने ?" रानी याद करने लगी, "मुझे स्मरण नहीं आता।"

"ऋषि श्यायाश्व !" राजा ने रानी के मुख-मण्डल पर चुभती निगाहों से देखते हुए उत्तर दिया।

"नहीं—।" रानी ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

"क्यों ? उसमें क्या अवगुण है ?"

"मैं राजर्षि की कन्या हूँ। मेरे पति आप राजर्षि हैं। राजर्षि की कन्या—।"

"वह भी ऋषि है।"

"मन्त्रद्रष्टा नहीं है।"

"वह दुर्बल जामाता नहीं है।"

"उसमें बल नहीं है। मन्त्रों का दर्शन नहीं किया है।"

"उसके पितामह अत्रि महर्षि हैं, मन्त्रद्रष्टा हैं। उसके पिता अर्चनाना मन्त्रद्रष्टा हैं, महर्षि हैं।"

"पितामह और पिता का ज्ञान पुत्र के किस काम आयेगा ? पिता का भोजन जिस प्रकार पुत्र और पौत्र के पेट में जाकर नहीं पचता, उसी प्रकार ज्ञान स्वतः वंश परम्परा के कारण पुत्र और पौत्र में नहीं स्थान कर लेता।"

"किन्तु—!"

"अत्रि मन्त्रद्रष्टा हैं, अर्चनाना मन्त्रद्रष्टा हैं। उन्होंने मन्त्रों का दर्शन किया है। हमारी आँखों से नहीं। उनका मन्त्रदर्शन श्यायाश्व की आँखों से नहीं

हुआ है और श्यायाश्व की आँखें उनके दर्शन निमित्त काम नहीं आयी हैं।"

"शुभे!" राजा ने सोचते हुए कहा। "श्यायाश्व ज्ञानी है, होनहार है।"

"मेरी कन्या वेद-माता होगी। उसका पति ऋषि होगा। मन्त्रद्रष्टा ऋषि वेद-पिता होता है।"

"फिर—?"

"फिर क्या?" रानी ने तीखे स्वर में कहा, "उससे कहिए। हम अपनी कन्या का पाणिग्रहण मन्त्रद्रष्टा से करेंगे। वह हमारा जामाता नहीं हो सकता।"

"यदि वह मन्त्रद्रष्टा हो जाय—?"

"तो खुशी से कर दीजिए।"

रानी राजप्रासाद में तेजी से चली गयी। गम्भीर राजा यज्ञ-मण्डप की ओर लौटा।

× × ×

"राजन्!" आश्रम स्थित महर्षि अर्चनाना ने उत्सुकतापूर्वक पूछा। "रानी ने कृपापूर्वक क्या सम्मति दी है?"

श्यायाश्व का हृदय राजा की उदासीन मुद्रा देख कर धक्-धक् करने लगा। राजा ने एक बार श्यायाश्व की ओर देखा। उसकी उदास स्थिर आँखें ऋषि कुमार के चंचल सुखद समाचार सुनने की आकांक्षी आँखों से मिलीं। राजा ने पुत्र की तरफ से पिता की ओर आँखें फेर लीं। श्यायाश्व अकस्मात् राजा की ठण्डी आँखें देखकर उदास हो गया। राजा ने स्थित स्वर में कहा :

"महर्षि! रानी ने सम्मति नहीं दी।"

अर्चनाना उत्तर सुन उदास हो गये। राजा ने ऋषि की उदासीन मुद्रा देखी, उन्हें दुःख हुआ। ऋषिकुमार को धक्का लगा। उसकी आँखें भर आयीं। वह दूसरी ओर अपनी मुद्रा छिपाने के लिए देखने लगा।

"राजन्! पुत्र में क्या दोष है? ऋषिकुमारों तथा राजकुमारियों का विवाह प्रचलित है।" पुत्र पर एक दृष्टि फेंकते हुए महर्षि ने पूछा,

"दोष कुछ नहीं है ऋषिवर! वह सर्वांगीण उत्तम वर है। केवल एक कमी है—।"

"क्या—?" महर्षि अर्चनाना ने वेग से पूछा। श्यायाश्व के कान प्रश्नोत्तर की ओर लग गये।

"वह मन्त्रद्रष्टा नहीं है। उसने वैदिक मन्त्रों का दर्शन नहीं किया है।"

"किन्तु ऋषि है—।"

"रानी ने यही कहा है ऋषिवर ! ऋषि होने से कोई मन्त्रद्रष्टा नहीं होता। वेदज्ञ होने के कारण कोई वैदिक मन्त्रों का दर्शन नहीं करता।"

श्यायाश्व का मुख लटक गया। महर्षि अर्चनाना ने दबी जबान से पूछा :

"और कोई बात है—?"

"नहीं महर्षि !"

श्यायाश्व का कोमल युवकजन्य मुख मुरझा गया। महर्षि अर्चनाना ने पूछा :

"यदि वह मन्त्रद्रष्टा हो जाय ?"

"मैं सहर्ष विवाह कर दूँगा।"

"निश्चय—?"

"हाँ। मैं वचन का उल्लंघन नहीं करूँगा। मेरी कन्या वेदमाता होगी। उसका पति वेद-पिता होगा।"

"और—?"

"राजर्षि माता-पिता की कन्या के लिए मन्त्रद्रष्टा वर होना मैं समझता हूँ, उचित होगा।"

राजा ने दृढ़तापूर्वक कहा।

महर्षि अर्चनाना उदास हो गए। श्यायाश्व की आँखों के सम्मुख अँधेरा छा गया। उसका हृदय धड़कने लगा। राजा ने कहा :

"अच्छा हो हम यज्ञ का कार्य आरम्भ करें।"

"अवश्य।" महर्षि अर्चनाना के मस्तिष्क में राजा का प्रत्याख्यान गूँज रहा था। कर्म का भाव उठते ही उन्हें हल्केपन का बोध हुआ। वे निर्विकार भाव से यज्ञ-मण्डप की ओर बढ़े।

श्यायाश्व ने अनिश्चित दशा में भूला-सा पिता का अनुसरण किया। राजा को उसकी दशा पर अत्यन्त दया आयी। ऋषिकुमार के हृदय में अलौकिक सुन्दरी राजपुत्री की मूर्ति स्थापित हो चुकी थी। बाहर की मूर्तियाँ उसे मृण्मयी निर्जीव-सी लगने लगीं।

× × ×

यज्ञ समाप्त हुआ। महर्षि अर्चनाना तथा श्यायाश्व हताश मन आश्रम की ओर लौटे। ऋषिकुमार का मन खोया था। उसे कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। उसके कानों में राजा की बात गूँज रही थी—'कन्या का विवाह मन्त्रद्रष्टा से करूँगा।' उसे मन्त्रद्रष्टा बनने की धुन सवार हो गयी। पिता पुत्र की इस

शुभ इच्छा को उत्साहित करने लगा।

मार्ग में विद्दश्व के पुत्र राजा तरन्त तथा पुरुमीढ़ उन्हें मिले। दोनों ही ऋषियों के आश्रयदाता स्वरूप थे। दोनों राजा थे। परन्तु अपने कर्म तथा तपस्या से ऋषि तुल्य हो गये थे।

अर्चनाना तथा श्यायाश्व दोनों राजाओं से मिले। राजाओं ने ऋषियों की पूजा की। सत्कार किया। तरन्त की स्त्री महारानी शशीयसी थी।

राजा तरन्त रानी के पास श्यायाश्व को ले गये। रानी शशीयसी को देखकर श्यायाश्व ने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। ऋषि पर रानी ने अनुकम्पा की। श्यायाश्व को रानी ने गाय, अश्व, अज, भेड़ तथा पशुधन से पूर्ण किया।

श्यायाश्व ने शशीयसी का स्तवन किया :

"शशीयसी ! आप उन लोगों से श्रेष्ठ हैं, जो देवों की उपासना नहीं करते, दान नहीं देते। आप दु:खी, तृषित तथा धनेच्छु को जानती हैं। आपका देवताओं के प्रति अगाध प्रेम है।"

युवती रानी शशीयसी प्रसन्न थीं। श्यायाश्व को रक्तवर्ण के दो अश्व दिये।

श्यायाश्व उन अश्वों के साथ विद्दश्व के पुत्र पुरुमीढ़ के पास आया। पुरुमीढ़ ने भी तरन्त के समान श्यायाश्व को एक शत गाय तथा ऐश्वर्य प्रदान किया।

शशीयसी तथा पुरुमीढ़ द्वारा दान प्राप्त कर पिता-पुत्र अत्रि आश्रम में लौट आये।

× × ×

आश्रम में तेज से दीप्त महर्षि अत्रि को दोनों ने प्रणाम किया। महर्षि का आशीर्वाद पाकर पिता-पुत्र अपने कार्यों में लग गये।

सर्वांग शोभनीय राजकुमारी की मंजुल मूर्ति श्यायाश्व की आँखों के सम्मुख अनायास आ जाती थी। आश्रम के पादप, कुसुमावली, प्रकृति जो उसमें पवित्रता का सृजन करती थी, दैहिक एषणाओं से दूर रहने में सहायक होती थी, वह उसमें एक रमणी के प्रति तीव्र आसक्ति उत्पन्न करने लगी। घृत शरीर को पुष्ट करता है, परन्तु वही चिता पर शरीर जलाने में सहायक होता है। घृत शीतल भी करता है, परन्तु उसमें अग्नि भी छिपी रहती है।

मन कल्पनाशील है, वह उत्तम कल्पना करता है, और दूषित भी। श्यायाश्व की यही दशा हुई। उसकी चित्तवृत्तियाँ युवती की वेणी में फँस गईं। वह उनसे छूट नहीं सका, उलझता गया। आश्रम की शान्ति उसे शान्ति देने

में असमर्थ हो गयी। आश्रम की यज्ञाग्नि उसकी एषणाओं को जलाने में असमर्थ हो गयी। आश्रम की वेदध्वनि उसके हृदय के उठते प्रेम-संगीत को दबाने में सफल न हो सकी। उसे जगत् रमणीमय दिखायी देने लगा। उसकी तीव्र आसक्ति ने उसका मानसिक सन्तुलन नष्ट कर दिया।

चित्तवृत्ति का निरोध उसने करना चाहा। परन्तु एक कामिनी की कामना के लिए। उसने निश्चय किया कि राजकुमारी के बिना उसका जीवन अधूरा रहेगा। उसे शान्ति नहीं मिलेगी। उसे सुख नहीं मिलेगा। बिना उस कमनीय कोमलांगिनी के प्राप्त किये, वह केवल एकांगी रहेगा।

किन्तु विकट प्रश्न उसके सम्मुख दण्डायमान खड़ा हो गया। वह राजकुमारी को प्राप्त कैसे करेगा ? उसके अन्तर ने तुरन्त प्रतिउत्तर दिया—मन्त्रद्रष्टा बनकर।

राजकुमारी-प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा ने उसे त्याग, तपस्या तथा मन्त्र-द्रष्टा बनने के लिए उन्मुख किया। उसने नीरव वन में, एकान्त में, एकान्त कामना के साथ, कामिनी प्राप्ति की उत्कट इच्छा के साथ प्रवेश किया। वह तपस्या रत हो गया।

× × ×

"श्यायाश्व की तपस्या से निर्मल हुए नेत्र उन्मीलित हुए। उसने अपने पार्श्व में अपने तुल्य रूप रुक्म वक्ष देवों को देखा। उसमें किसी प्रकार की प्रति-क्रिया नहीं हुई। वह दूषित वृत्तियों को पार कर चुका था, विमल हो गया था। उसने स्थिर शान्त स्वर में पूछा :

"आप कौन हैं ?"

दिव्य पुरुष सस्मित उसकी ओर देखने लगे। श्यायाश्व ने दृष्टि अन्तर किया। वह जान गया। वे मरुद्गण थे। उसने श्रद्धापूर्वक पूछा :

"मरुद्गण ! आप अन्तरिक्ष से यहाँ पधारे हैं। आपके अश्व कहाँ हैं ? आपके श्येन कहाँ हैं ? आपका गमन कैसा है ? अश्वों के पृष्ठ प्रदेश पर आस्तरण (यय) और दोनों नासों में लगाम लगा दृष्टिगोचर होता है। अश्वों को शीघ्र-गामी बनने के लिए उनकी जंघन पर चाबुक से स्पर्श किया जाता है। आप अश्वों के जंघनों को विस्तृत करते हुए, द्रुतगामी होने के निमित्त उन्हें प्रेरित करते हैं। शत्रु नाशन् ! वीरवर !! मंगलप्रद !!! भद्रजन्य !!!! मरुद्गण ! अग्नि में तप्त ताम्र पात्र तुल्य आपका वर्ण शोभनीय है।"

श्यायाश्व को अपने कार्य पर खेद हुआ। उसे कष्ट होने लगा। उसे स्मरण

हो गया। उसने स्वागत-पद्धति का अतिक्रमण किया था। उन्हें जानकर सर्व-प्रथम उनकी स्तुति नहीं की। 'कौन हैं'—यह अव्यावहारिक अशोभनीय प्रश्न पूछ बैठा। मर्यादा का उल्लंघन किया था। उसने अपनी त्रुटि का अनुभव किया। अपने दोष को ठीक करते हुए, उनकी स्तुति की :

"वे मरुद्गण जो शीघ्रगामी अश्वों पर चलते हैं, जो मदिर मधु का पान करते हैं। वे मरुद्गण जो विविध प्रकार की स्तुतियों को स्वीकार करते हैं, उनका शुभ आगमन हुआ है।"

श्यायाश्व ने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मरुद्गणों की पूजा की। मरुद्गण ऋषि की स्तुति से तुष्ट हुए।

प्रश्नि पुत्र मरुद्गण आशीर्वाद देकर जाने लगे। जाते समय उन्होंने रुक्म उतारकर श्यायाश्व को दिया। श्यायाश्व ने अप्राप्य निधि पाकर उन्हें शिरसा नमामि किया। आभार प्रकट किया। मरुद्गण अन्तर्ध्यान हो गये।

× × ×

महा यशस्वी श्यायाश्व मरुद्गणों के चले जाने के पश्चात् पुनः अपने विचारों में लग गया। वह ऋषित्व प्राप्त कर चुका था। मन्त्रद्रष्टा हो चुका था, जिसके लिए उसने इतना कष्ट तथा तपस्या की थी। उस तपस्या तथा कष्ट की जो फल-प्राप्ति थी, उसे स्मरण हो आया—रथवीति की युवती कन्या। उसका मन उस तरफ चला।

वह उठा। रथवीति के आवास की ओर प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान किया। उसे विश्वास था। रथवीति और उसकी रानी अपने वचनों का पालन करेगी। वह मन्त्रद्रष्टा हो चुका था। सूत्रों का साक्षात्कार कर चुका था। उसने अपने कर्त्तव्य का पालन किया था। रथवीति अपने वचन से विमुख नहीं होंगे। उसके मार्ग की दूरी मनोवेग के समान शीघ्रातिशीघ्र पद एक के पश्चात् दूसरे पड़ते समाप्त करने लगे—राजकन्या के पाणिग्रहण की मधुर कल्पना में।

× × ×

श्यायाश्व चला जा रहा था। मार्ग शीघ्र समाप्त करना चाहता था। फिर भी मार्ग समाप्त नहीं कर पा रहा था। मनोवेग का साथ पैर नहीं दे पा रहे थे। वह रथवीति को यथाशीघ्र अपनी बात बताना चाहता था।

सहसा उसे लज्जा का अनुभव हुआ। उसे अपने भावी श्वसुर से स्वयं बात नहीं करनी चाहिए। आत्मश्लाघा का उन्हें कहीं भ्रम न हो जाय। किसी

दूत से यह समाचार उनके पास भेजना उत्तम होगा। दूत के द्वारा उनकी प्रतिक्रिया का ज्ञान हो जायगा।

मार्ग में रात्रि के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। वह था' उसका प्रशस्त मार्ग था। और रात्रि देवी सब को अपनी अंक में लिये सो रही थी। उसे विचित्र सूझ सूझी। उसने रात्रि देवी को दूत बनाने की कल्पना की। अपनी कल्पना से प्रसन्न हो गया। उसने रात्रि की स्तुति की :

"देवि ! हमारी स्तुति आप मरुतों के पास पहुँचाइये। मैं स्तोत्र का मरुतों के हेतु स्तवन करता हूँ। निशादेवी ! जिस प्रकार रथ पर रथी सामग्रियों को रखकर यथा स्थान पहुँचाता है, उसी प्रकार आप मेरे स्तोत्र को कृपया पहुँचा दें।"

श्यायाश्व ने अत्यन्त विनीत स्वर में निवेदन किया :

"देवि ! सोमपान की समाप्ति पर रथवीति को बताइगा कि मेरी कामना कम नहीं हुई है।"

"श्यायाश्व ! मैं तुम्हारा दौत्य-कार्य सम्पन्न करूँगी। तुम बताओ रथवीति कहाँ निवास करते हैं ?" घनीभूत निशा से ध्वनि प्रतिध्वनित हुई।

श्यायाश्व प्रसन्न हो गया। निशादेवी को आर्ष नेत्रों से देखते हुए कहा :

"देवि ! रथवीति का स्थान गौमती तट पर है। हिमाच्छादित पर्वत पर है।"

× × ×

"राजन् !" निशा से ध्वनि उद्भूत हुई।

राजा रथवीति चकित हुए। उन्होंने ध्वनि-दिशा की ओर लक्ष्य किया।

"नृपवर ! मैं निशादेवी हूँ। आप मुझे देख नहीं सकेंगे। अन्धकार हमारा परिधान है।"

राजा खड़ा हो गया। अपने चारों ओर घोर अन्धकार देखा। प्रणाम कर बोला, "कष्ट का कारण देवी ?"

"पृथ्वीपते !" निशा ने कहा, "मैं आपको शुभ समाचार सुनाने आई हूँ।"

"अनुग्रहीत हूँगा।" राजा ने विनयपूर्वक कहा :

"मैंने श्यायाश्व के लिए दौत्य-कार्य करने का बीड़ा उठाया है।"

राजा चकित हुए।

"तुम्हारा जामाता मन्त्रद्रष्टा हो चुका है।"

राजा ने अनुभव किया जैसे निशादेवी स्वयं मुसकरा रही है। राजा

समाचार सुनकर प्रसन्न हुआ।

"देवी ! आज्ञा ?" राजा ने गम्भीर होते हुए निवेदन किया।

"उसने अपने कर्त्तव्य का पालन किया। क्या आप अपने वचन का पालन करेंगे ?"

"अवश्य—देवी !" राजा ने दृढ़ स्वर में कहा।

"तुम्हारे लिए यह सम्बन्ध मंगलप्रद होगा राजन्।"

निशा-वाणी लोप हो गई। राजा को कौतूहल हुआ। तथापि प्रसन्न था। मंगलसूत्र सम्बन्ध के बीच एक व्यवधान था। वह दूर हो गया।

× × ×

"महात्मन् !" रथवीति ने महर्षि अर्चनाना का चरण कमल का स्पर्श किया। अर्चनाना ने देखा। राजा के पीछे सलज्ज शीलवती राजकन्या नतमस्तक खड़ी थी।

"राजन् ! पुत्री कुशल से है ?" अर्चनाना ने स्नेह से अपनी भावी पुत्र-वधू की ओर देखते हुए पूछा।

राजकुमारी ने ऋषि के युगल पद्म पर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अपना मस्तक रख दिया। ऋषि ने राजकुमारी के मस्तक पर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद दिया। उनका मन प्रसन्न था। रथवीती किंचित लज्जित स्वर में बोले, "महात्मन् !" दर्भ पुत्र रथवीति ने कहा, "आपने इस कन्या को पुत्र-वधू बनाने की इच्छा प्रकट की थी। मैंने रानी की सम्मति पर अज्ञानवश अस्वीकार कर दिया था।"

"राजन् ! उससे उपकार ही हुआ। श्यायाश्व मन्त्रद्रष्टा हो गया।"

राजकुमारी लज्जित हो गई। स्त्रीजन्य लावण्य उसमें निखर आया। रथवीति ने अंजलिबद्ध कहा :

"मैं अपनी अज्ञानता के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।"

"राजन् ! इसमें क्षमा का प्रश्न नहीं है। एक प्रत्याख्यान था, हो गया। एक अध्याय था, बन्द हुआ।"

"भगवन् ! आप ऋषि पुत्र हैं, स्वयं ऋषि हैं। ऋषि के पिता हैं। मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिये।"

राजा ने प्रांजलिभूत ऋषि को नमन किया।

"राजन् ! मैं—।"

"आत्रेय !" रथवीति ने बीच में ही टोक कर कहा, "आपकी पुत्र-वधू उपस्थित है।"

राजकुमारी ने ऋषि के चरणों पर पुनः श्रद्धापूर्वक मस्तक रख दिया। "कौन इसे पुत्र-वधू स्वीकार नहीं करेगा राजन् ?" महर्षि अत्यन्त स्नेह से कन्या के सिर पर अभय मुद्रा में हाथ फेर कर आशीर्वाद देते हुए बोले।

स्वयं राजा पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क द्वारा ऋषि की पूजा की। उन्हें एक शत शुक्ल अश्व प्रदान किये। ऋषि प्रसन्न हो गये। महर्षि और राजर्षि दोनों ने एक-दूसरे का आलिंगन किया। वे सम्बन्ध-सूत्र में बँध गये। ऋषि पुलकित हो गये थे। कन्या की आँखें भर आईं

और श्यायाश्व ने अपने कर्म द्वारा सौभाग्यशालिनी पत्नी प्राप्त की।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १ : १५१ : २, १ : १८३ : ५, ४ : ४६-७६, ५ : ५०-८१,
५ : ५४ : ७, १४ : ५ : ५५ : ४, ५ : ६१ : ५, ५ : ६३ : ६४,
५ : ६१ : १७, ५ : ८१ : ५ : ८२, ८ : ३५ : ३८, ८ : ३५ : १६,
८ : ३६ : ७, ८ : ३७ : ७, ८ : ३८ ८, ९ : ५, ९ : ३२,
९ : ५८ : ३

अथर्ववेद : ४ : २९ : ४, १८ : ३ : १५

शतपथ ब्राह्मण : ७ : ४

पंचविंशत ब्राह्मण : ८ : ५ : ९

बृहद्देवता : ५ : ५०—९०

नोट : विवाह प्रथा पर इस कहानी से प्रकाश पड़ता है। मनचाही कन्या के लिये कर्म द्वारा उसके योग्य होने पर माता-पिता विवाह कर देते थे। विवाह के लिये वर में गुण होना आवश्यक समझा जाता था। वर तथा कन्या पक्ष में समान गुण अथवा समकक्ष गुण होने पर महत्व दिया जाता था। किसी शर्त के पालन पर कन्या का विवाह कर देना प्रचलित प्रथा मालूम होती है। कालान्तर में राम के विवाह के लिये भी जनक के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने की शर्त सीता के विवाह के लिये रख दी थी। यहाँ पर भी माता-पिता की इच्छा को ही प्राथमिकता दी गयी है। कन्या को मावा-पिता की आज्ञा मानकर विवाह सूत्र में बन्ध जाना अनिवार्य माना जाता था।

१. अत्रि—इनके ऐतिहासिक व्यक्ति होने में कुछ विद्वानों ने शंका प्रकट की है। अत्रि तथा अत्रि वंशज ऋग्वेद के पंचम मण्डल के ऋषि हैं। यह वंश परुष्णी तथा यमुना नदी तक फैला था। अत्रि सूक्त द्रष्टा थे। इन्हें पाञ्चजन्य कहा गया है। अत्रिगोत्र के सूक्तकारों का वर्णन वेद में है।

२. अर्चनाना (अर्चनानस्-आत्रेय)—श्यामाश्व के पिता प्रतीत होते हैं। सूक्त द्रष्टा हैं।

३. तरन्त—श्यामाश्व के आश्रय दाता थे। विद्दश्व का पुत्र और क्षत्रिय था। 'वैदिदार्शव' इसका पैतृक नाम था। पुरुमीढ़ का भाई था।

४. पुरुमीढ़—एक प्राचीन ऋषि थे। उन्हें विददश्व का पुत्र (पुरुमील्कट) कहा गया है।

५. रथवीति—दर्भ का वंशज था। इन्हें दार्म्य किंवा दाल्म्य कहा जाता है। गो बहुल प्रदेश सम्भवतः हिमालय निवासी थे। कालान्तर में इन्हें एक राजा कहा जाने लगा। इनकी कन्या से श्यामाश्व ने विवाह किया था।

६. विद्दश्व—इसके पुत्र तरन्त, पुरुमोढ़ तथा रथवीति थे। एक राजा था।

७. शशीयमी—यह तरन्त राजा की स्त्री थी।

८. श्यामाश्व—ऋग्वेद के पंचम, अष्टम एवं नवम् मण्डलों के अनेक सूक्त श्यायाश्व द्वारा कहे गये हैं। यह अर्चनाना के पुत्र थे। इन्हें श्यामावत् नामांतर भी प्राप्त था।

सप्तवध्रि

श्रुति है। भरतवंशी राजा अश्वमेध थे। वे पुत्रहीन थे। उन्होंने पुत्र-प्राप्ति निमित्त सप्तवध्रि ऋषि की सात बार सहायता ली। परन्तु ऋषि को सफलता नहीं मिली। राजा को पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई। राजा ने ऋषि की सहायता आठवीं बार ली। फिर भी राजा को पुत्र प्राप्त नहीं हो सका। ऋषि विफल हुए। राजा क्रुद्ध हो गये।

ऋषि को वृक्षद्रोणी में रख कर एक गर्त में फेंक दिया गया। ऋषि वहाँ रात्रि पर्यन्त पड़े रहे। उन्होंने अपनी दयनीय स्थिति का अनुभव किया। मुक्ति का कोई उपाय दिखायी नहीं दिया। अपने स्वामी शुभस्पति की स्तुति की :

"अश्विनी ! कृपया यहाँ आइये। नासत्य !! अप्रसन्न मत होइये। जिस प्रकार दो हंस निर्मल जल पर उतरते हैं, उस प्रकार यहाँ उतरिये।

"अश्विन् ! जिस प्रकार दो मृग, जिस प्रकार दो वन-पशु नव तृण की ओर आते हैं, जिस प्रकार दो हंस निर्मल जल पर उतरते हैं, उसी प्रकार आप उतरिए।

"अश्विनी !! आपके पास यथेष्ट अन्न है। आप अपने प्रसन्न काल में यज्ञ से सन्तुष्ट होते हैं। जिस प्रकार दो हंस निर्मल जल पर उतरते हैं। उस प्रकार आप भी उतरिए।

"अश्विनी ! जिस प्रकार पत्नी अपने पति को अपनी विनम्रता से प्रसन्न करती है। जिस प्रकार स्तवन से प्रसन्न होकर आपने ऋषि अत्रि का तप्त कुण्ड शीतल किया था, उनकी रक्षा की थी। जिस प्रकार नवोत्पन्न श्येन पक्षी वेग के साथ आता है, उसी प्रकार अपने मंगलमय रथ के साथ आप वेग से आइये।

"अश्विनी ! जिस प्रकार प्रसूता स्त्री का गर्भ खुलता है। कारागार तुल्य बन्द गर्भ से शिशु मुक्त होता है, उसी प्रकार मेरी स्तुति सुन कर, मुझ सप्त-वध्रि को इस कारागार से मुक्त कीजिए।

"अश्विनी ! मुझ भयापन्न की मुक्ति निमित्त स्तवनकर्त्ता सप्तवध्रि को अपने साधनों द्वारा आप इस पेटी से मुक्त कीजिए।"

सप्तवध्रि ने अपनी अमुक्तावस्था की तुलना गर्भस्थ शिशु के साथ करते हुए स्तुति की : "जिस प्रकार मरुत सरोवर जल को चारों ओर से उद्वेलित करता है, उसी प्रकार गर्भाधान द्वारा गर्भ स्थित स्पन्दनशील शिशु अपना मास पूर्ण कर बाहर निकले।

"जिस प्रकार वायु, वन तथा समुद्र कम्पित होते हैं, उसी प्रकार दस मास तक गर्भस्थ शिशु गर्भ में कम्पित रह कर, जरायु से लिपटा हुआ बाहर निकले।

"जननी के गर्भ में दस मास तक सुरक्षित शिशु अक्षत, जीवित माता के गर्भ से जन्म ग्रहण करे।"

स्तुति करते हुए गर्भस्थ शिशु की तरह, चेतन होकर, कम्पित होकर, जीवित तुल्य होकर सप्तवध्रि ने पुनः द्रोणी में सुप्तावस्था प्राप्त की।

× × ×

जलवर्षक अश्विनी प्रसन्न हो गये, अपने आश्रित सप्तवध्रि पर। जिस प्रकार गर्भ योनि द्वारा शिशु मुक्त होकर बाहर निकलता है, उसी प्रकार उन्होंने नौकाकार द्रोणी से ऋषि को बाहर निकाल कर मुक्त किया!

और सप्त इन्द्रियों को स्तब्ध करने वाला, सूक्तद्रष्टा, अश्विनियों का कृपा-पात्र, सप्तवध्रि, अपनी स्तुति के प्रसाद तुल्य कारा मुक्त हुआ।

नोट : प्रथम पैरा में वर्णित कथा वेद में नहीं है। वृहद्देवता से इतना अंश कथा को स्पष्ट करने के लिए और जोड़ दिया है। कथा का वैदिक अंश दूसरे पैरा से आरम्भ होता है। वैदिक आख्यान का रूप मौलिक रूप में जानने के लिए द्वितीय पैरा को प्रथम मानकर पढ़ना चाहिए। लेखक ने केवल कथा को बोधगम्य बनाने के लिए वृहद्देवता का उक्त अंश लिया है। यद्यपि वेद में प्रथम पैरा में दर्शित घटना का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

इस कथा में गर्भ तथा अमुक्तावस्था की तुलना की गयी है। मालूम होता है गर्भ से शिशु जन्माने के लिये संकटावस्था में भिषगों की सेवा लेने की प्रथा थी।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : ५ : ७३-७८, ५ : ७८ : ५-९, ५ : ७३ : ९, ८ : ९२, १० : ३९ : ९

अथर्व वेद : ४ : २९ : ४

वृहद्देवता : ५ : ८२-८५

अश्वमेध राजा—एक वैदिक कालीन राजा है।

भरत वंश—भरत एक जन थे। ऋग्वेद सप्तम मण्डल में सुदास तथा तृत्सुओं के प्रसंग में उल्लेख हुआ है। तृत्सुओं ने भरतों को पराजित किया था। वे पुरुओं के भी भरत शत्रु थे। ऋग्वेद के तीसरे तथा सातवें मण्डल में सुदास तथा तृत्सुओं के सम्बन्ध में इनका निर्देश प्राप्त है। ऋग्वेद में विश्वामित्र को 'भरतों का ऋषभ' अर्थात् भरतों में श्रेष्ठ बताया है। ऋग्वेद में 'अग्नि-भारत' को भरतों की अग्नि के अर्थ में और भारती का प्रयोग भरतों की देवी के रूप में किया गया है।

सप्तवध्रि—अश्विनी के एक कृपा-पात्र हैं, जिन्हें उन्होंने मुक्त किया था। इन्हें कुछ विद्वान् अत्रि भी मानते हैं।

भृगु, अंगिरस और अत्रि का जन्म

कथा इस प्रकार चलती है। प्रजा-काम की कामना प्रजापति को हुई। इच्छापूर्ति निमित्त प्रजापति ने यज्ञ करने का विचार किया। अतएव साध्यों तथा विश्वदेवों के साथ तीन वर्ष के यज्ञसत्र का आयोजन किया गया।

यज्ञ आरम्भ हुआ। दीक्षा के समय वाच का सशरीर यज्ञ-मण्डप में आगमन हुआ। वह सुन्दर रूप-धारिणी थी। किसी को मोहित कर सकती थी। उसकी काया से यौवन-कान्ति दीप्तमान थी।

× × ×

प्रजापति तथा वरुण ने उस तन्वी को देखा। दोनों का शुक्र स्खलित हो गया। प्रश्न उपस्थित हुआ। शुक्र का क्या किया जाय? वायु की ओर प्रजापति तथा वरुण ने सलज्ज नेत्रों से देखा।

वायु ने शुक्र लिया। उसे अग्नि में छोड़ने का विचार किया। उन्होंने दोनों देवताओं से अपनी इच्छा व्यक्त की। उन लोगों ने वायु को अनुमति दे दी। वायु ने शुक्र अग्नि में डाल दिया।

शुक्र ज्वाला में पड़ा। उस ज्वाला से मूर्तमान ऋषि भृगु उत्पन्न हुए। अंगारों से अंगिरा ऋषि ने जन्म ग्रहण किया।

× × ×

वाच के कारण दोनों पुत्र उत्पन्न हुए थे। अतएव वह उनकी माता हुई। अपने पुत्रों को देखकर प्रजापति से बोली :

"दोनों पुत्रों के अतिरिक्त में एक तीसरे पुत्र की भी कामना करती हूँ।"

प्रजापति ने वाच के स्निग्ध मुखमण्डल की ओर देखा। वाच ने पुनः कहा :

"प्रजापते ! मुझे यहीं एक त्रितीय पुत्र उत्पन्न हुआ, मिलना चाहिए।"

"भारती !" प्रजापति ने कहा, "तुम्हें तीसरा पुत्र यहीं होगा।"

अविलम्ब सूर्य तथा अग्नि तुल्य द्युतिमान पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम अत्रि पड़ा। अत्रि ऋषि हुए। मन्त्रद्रष्टा हुए। उनके नाम से गोत्र चला।

× × ×

अंगिरस के पुत्र बृहस्पति हुए। बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज हुए। भरद्वाज को विदधिन् भी कहते हैं। वे मरुतों के गुरु थे। वे अंगिरस के पौत्र हुए।

—और अंगिरस हुए अंगों के रस, अत्रि हुए (अतति) भ्रमणशील उद्धारक। भरद्वाज (भरत+वाज:) हुए अन्न के दानी। अंग, भ्रमण तथा अन्न से दुनिया हो गयी प्रसन्न।

ऋग्वेद षष्ट मण्डल के वे तथा उनके वंशज प्रणेता हुए। मन्त्रद्रष्टा हुए। उस मण्डल के देवता हुए वैश्वानर अग्नि, इन्द्र, गाव:, गावइन्द्र, प्रगाथ, पूषा, इन्द्राग्नि और सरस्वती।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : ५ : ७३-१०३, ६ : १-४६

ऐतरेय ब्राह्मण : ३ : ३४-१

बृहद्देवता : ५ : ९७-१९

नोट : यह एक रूपक प्रतीत होता है। भृगु, अंगिरस तथा अत्रि गोत्र तथा उनके वंशजों का मूल स्रोत एक ही माता से जन्म ग्रहण करा कर दिखाया गया है।

१. अंगिरस—ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं कहे जा सकते। उन्हें अंगिरस जाति का प्रवर्तक बताया गया है।

२. अत्रि—ऐतिहासिक व्यक्ति होने में सन्देह है। अत्रि तथा उसके वंशजों का ऋग्वेद के पंचम मण्डल का ऋषि होने का गौरव प्राप्त है। इसे पाञ्चजन्य कहा गया है। इसके नाम से अत्रि गोत्र चला है।

३. भारती—देववत्ती वाक् किंवा सरस्वती के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया है। भरत जाति की देवी के रूप में भारती शब्द का उल्लेख वेद में मिलता है।

४. भरद्वाज—ऋग्वेद के षष्ठ मण्डल के रचनाकार हैं। बृहस्पति के पुत्र तथा अंगिरस का उन्हें पौत्र कहा गया है। पुरुपंथ राजा इनके आश्रयदाता थे। यह वैदिक सूक्त द्रष्टा हैं। स्तोता रूप से इनका उल्लेख किया गया है।

५. भृगु—वरुण के पुत्र थे। उनका पैतृक नाम वारुणि है। उन्हें अग्निपूजक कहा गया। उनका वंश ऐतिहासिक मालूम होता है। वैदिक कालीन एक पुरोहित वर्ग था। एक प्राचीन

जाति है। इनकी तुलना सूर्य से की गई है। इन्होंने लकड़ी से अग्नि को उत्पन्न किया था। भृगु का अर्थ ही प्रकाशमान है।

६. वाच—शब्द का अर्थ वाणी है। मानव, पशु, पक्षी और सरीसृपों के वाणी भेद हैं। वाणी का उच्चारण इन्द्र द्वारा हुआ है। दैवी और मानुषी वाणी का भी एक भेद किया गया है। तूणव, वीणा और दुन्दुभी का उल्लेख मिलता है। कुरु-पंचालों की वाणी ख्याति प्राप्त थी। अर्थ वाणी और ब्राह्मण वाणी का भी उल्लेख मिलता है।

७. वायु—एक वैदिक अंतरिक्ष देवता है। विश्वरूप के श्वास से वायु का जन्म हुआ था। इसने आकाश के गर्भ में मरुतों को उत्पन्न किया था। इसके रथ को एक सहस्र अश्व खींचते हैं।

८. विश्वदेव—यज्ञीय देवता समूह।

मण्डल : ६

अभ्यावर्तिन

वरशिख वीर थे। वे तुर्वश तथा वृचीवन्त के नेता थे। युद्ध में अभ्यावर्तिन चापमान और संजय के पुत्र प्रस्तोक को पराजित किया था। चापमान तथा प्रस्तोक पराजय के कारण लज्जित हो गये थे। बृहस्पति के पुत्र और अंगिरस के प्रपौत्र भरद्वाज आश्रम के लिए उन्होंने विषादित मन से प्रस्थान किया। उन्हें आशा थी भरद्वाज की सहायता द्वारा वे अपना लुप्त गौरव पुनः प्राप्त करने में सफल होंगे।

× × ×

चापमान तथा प्रस्तोक का भरद्वाज के आश्रम में आगमन हुआ। महर्षि भरद्वाज ने उन्हें देखा। उठकर अभ्यर्थना की। उनका पाद्य, अर्घ्य तथा मधुपर्क से स्वागत किया। आगन्तुकों के मार्ग की श्रान्ति-विश्रान्ति में तिरोहित हुई। उन्होंने सविनय भरद्वाज की स्तुति की :

"महात्मन् !" भरद्वाज ने जिज्ञासा की, "आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ ?"

"ऋषिवर !" मैं अभ्यावर्तिन चापमान हूँ और यह मेरे साथी सांजेय प्रस्तोक हैं।"

"महात्मन् ! आपका आगमन शुभ हो। आपके आगमन का हेतु जान सकेंगे।" भरद्वाज ने उनके मुख-मण्डल पर दृष्टि फैलाते हुए प्रश्न किया।

"ऋषिवर !" वे बोले, "बिना प्रयोजन ऋषियों का दर्शन पुण्य माना गया है। हम अर्थी हैं।"

"आपके किस अर्थ की मैं पूर्ति कर सकता हूँ।"

"ब्रह्मन् !" वे बोले, "हम लोग वरशिख द्वारा पराजित हो गये हैं।"

"आश्चर्य !" भरद्वाज ने कहा।

"आपकी कृपा से पुनः विजय प्राप्त कर सकते हैं।"

"आप लोगों का कल्याण हो।"

"ऋषिवर !" आपको हम अपना पुरोहित बनाना चाहते हैं।"

"लाभ ?"

"आपके पौरोहित्य के कारण हम शक्ति से सम्पन्न होंगे। शत्रु परामुख होगा।"

"हूँ—।"

"ब्रह्मन् ! वह क्षत्र है, जो शाश्वत ब्रह्म की रक्षा करता है।"

ऋषि विचार करने लगे।

"ऋषिवर ! अनुग्रहीत कीजिए।"

"अवश्य—।" भरद्वाज ने प्रसन्नतापूर्वक कहा :

चापमान तथा प्रस्तोक हर्षित हो गये। अंजलिबद्ध श्रद्धा-भक्तिपूर्वक ऋषि को प्रणाम किया। भरद्वाज ने अपने पुत्र से कहा :

"पापु ! इन अभ्यागतों का निवेदन मैंने स्वीकार किया है।"

"आज्ञा पितः !" पापु ने आदेश ग्रहण करने की प्रसन्न मुद्रा में कहा।

"पुत्र ! इन राजाओं को तुम सामर्थ्यवान बना दो।"

"पितः !" पापु ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की।

"वे शत्रुओं को पराजित कर सकें।"

"भगवन् ! पापु ने पिता का चरण स्पर्श किया।"

चापमान तथा प्रस्तोक कार्य सिद्ध होता देख प्रसन्न हो गये।

× × ×

पापु ने राजाओं को सम्बोधित किया :

"राजन् !" मैं आयुधों का पृथक्-पृथक् अभिषेक करता हूँ। उनके कारण आप लोग विजेता होंगे।"

दोनों राजा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सावधान होकर आसनों पर बैठ गये। पापु ने सर्वप्रथम वर्मयुक्त योद्धा की स्तुति की :

"युद्धकाल में राजा लौह-वर्म पहनते हैं। मेघ तुल्य लगते हैं। राजन् ! अहिंसक होते हुए विजय प्राप्त कीजिए। महिमामय यह वर्म आपका रक्षक हो।"

पापु ने धनुष की स्तुति की :

"धनुष द्वारा युद्ध में विजय प्राप्त करते हैं। गौवों को प्राप्त करते हैं। शत्रु की कामना नष्ट होगी। इस धनुष द्वारा प्रत्येक दिशाओं में स्थित शत्रु पराभूत होंगे।"

पापु ने प्रत्यंचा का अभिषेक किया :

"धनुष की प्रत्यंचा संग्राम से पार करने के लिए कानों के पास आकर प्रिय वचन बोलती है। प्रत्यंचा वाण से युक्त होकर शब्द करती है।"

धनुष के किनारों को अभिषिक्त करते हुए पायु ने कहा :

"माता जिस प्रकार पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार धनुष्कोटि आक्रमण काल में राजा की रक्षा करती हुई अमित्रों का वेध करे।"

पापु ने तूणीर का अभिषेक किया :

"वाणों के पिता तुल्य तूणीर है। वाण इसके पुत्र हैं। वाण तूणीर से निकलते हुए शब्द करते हैं। उस समय समस्त सेना पर जय प्राप्त की जाती है।"

सारथी तथा वल्गाओं (घोड़ों की रास) का पापु ने अभिषेक किया :

"अश्व योजित रथों को श्रेष्ठ सारथी मनोनुकूल चलाता है। अश्वों के कण्ठ तक वल्गाएँ पहुँचती हैं। अश्वों को आगे-पीछे चलाती हैं। उन वल्गाओं के यश का गान करो।"

अश्वों को पापु ने अभिषिक्त किया :

"रथ के साथ वेगपूर्वक गमन करते हुए अश्व, धूल उड़ाते हुए शब्द करते हैं। वे पीछे न हटकर शत्रुओं को रौंद डालते हैं।"

आयुधागार का पापु ने अभिषेक किया :

"हव्य अग्नि को प्रविष्ट करता है। रथ द्वारा वहन हुआ धन राजाओं की वृद्धि करता है। राजा के शस्त्रास्त्र जिस रथ पर रहते हैं, उस रथ के समीप हम प्रसन्नतापूर्वक जाते हैं।"

रथ रक्षकों को अभिषिक्त करते हुए पापु ने कहा :

"शत्रुओं के अन्न-धन को रथ-रक्षक नष्ट करते हैं। अपने मित्रों को अन्न देते हैं। संकटकाल में इन रथ-रक्षकों का आश्रय ग्रहण किया जाता है। यह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले हैं।"

रण देवता की पायु ने स्तुति की :

"ब्राह्मणो ! पितरो !! आप रक्षक होइये। द्यावा पृथ्वी मंगल करें। पूषा पाप से विरत करे। शत्रु हमारे शासक न होने पावें।"

कवच की स्तुति पापु ने की :

"पंखयुक्त वाणों का दात मृग का सींग है। यह प्रत्यंचा दातों से बँधी हुई है। यह प्रेरित होकर पतित होता है। जिस स्थान पर नेता विचरण करते हैं, वहाँ वाण हमें आश्रय दें। वाण हमें आगे बढ़ायें। हमारा शरीर पाषाण तुल्य दृढ़ हो। सोम हमारा पक्ष ग्रहण करें। अदिति हमारा मंगल करें।"

कशा की स्तुति पापु ने की :

"कशा ! सारथी तुम्हारे द्वारा अश्व को चलाते हैं। अश्वों को रणभूमि में तुम ले आओ।"

हस्तत्राण की स्तुति पापु ने की :

"हस्तत्र ! प्रत्यंचा के प्रहार का आप निवारण करते हैं। सर्प सदृश देह द्वारा आप प्रकोष्ठ को व्याप्त करते हैं।"

अधोमुखी वाण, दग्ध वाण तथा वरुणास्त्र की स्तुति पापु ने की :

"विषयुक्त वाण, लौहयुक्त वाण, हिंसकमुखी वाण एवं जो वाण पर्जन्य से उत्पन्न हैं, उन्हें नमस्कार है।"

धनुर्युक्त वाण की स्तुति पापु ने की :

"वाण ! वध-कर्म में आप प्रवीण हैं। धनुष से मुक्त होकर शत्रुओं पर आघात करिये। शत्रुओं को जीवित मत छोड़िये।"

युद्ध के आदि की स्तुति पापु ने की :

"ब्रह्मणस्पति और अदिति जिस संग्राम में वाण गिरते हैं। वहाँ सुख प्रदान करें।"

कवच बाँधनेवाले की स्तुति पायु ने की :

"राजन् ! तुम्हारे मर्मस्थान को कवच ढकता है। सोम तुम्हें अमृत से ढके। वरुण सुख प्रदान करे। देवता तुम्हारी विजय से प्रसन्न हों।"

युयुत्सुओं की स्तुति पापु ने की :

"वे बान्धव जो हमारा शत्रुभाव से हनन करना चाहते हैं, उन्हें सभी देवतागण हिंसित करें।"

राजाओं को आशीर्वाद देते हुए पापु ने कहा :

"राजन् ! यह मंत्र आपके लिए कवचस्वरूप है।"

राजाओं ने अनुग्रहीत होकर, पापु को शिरसा नमामि किया।

पापु ने कहा :

"राजन् ! आप आयुधों से पूर्ण वरशिखों के साथ युद्ध निमित्त प्रस्थान कीजिए। आपका कल्याण होगा।"

राजा चापमान तथा प्रस्तोक नवउत्साह, नवप्रेरणा से अभिषिक्त हुए। वरशिखों को परास्त करने के लिए वेग से चल पड़े।

× × ×

घोर संघर्ष था। योद्धा युद्धरत थे। ऋषि भरद्वाज ने चापमान तथा प्रस्तोक के विजय निमित्त इन्द्र की स्तुति की :

"इन्द्र ! आपने वृषभ राजा को युद्धसाधक रथ दिया था। दस दिनों तक वे युद्ध करते रहे। उस समय आपने उनकी रक्षा की थी। वेतस की आपने सहायता की थी। आपने तुग्रासुर का वध किया था। आपने स्तुतिशील तुजि राजा को समृद्ध किया था।

"इन्द्र ! आप शत्रु-संहारक हैं। आपने शत-शत तथा सहस्र-सहस्र शम्बर सेना को विदीर्ण किया था। शम्बर यज्ञादि का हिंसक था। आपने उसको पराजित किया है। आपने दिवोदास की रक्षा की थी। सोमपान से प्रसन्न होकर दभीति राजा के शत्रु चुमुरि का आपने हनन किया था। आपने पिठीनस को रजि नाम्नी कन्या दी थी। आपने अपनी महान वीरता से साठ हज़ार वीरों का एक साथ संहार किया था।

"वीरों के मित्र इन्द्र ! आप तीनों लोकों के रक्षक हैं। शत्रुविजेता हैं। स्तुतिकर्ता आपसे सुख तथा बल की आकांक्षा करते हैं। मैं भरद्वाज आप द्वारा प्रदत्त श्रेष्ठ सुख तथा बल अपनी स्तुति करने वालों के साथ प्राप्त करूँ। इन्द्र ! सखास्वरूप मैं आपकी स्तुति करता हूँ। इन स्तुतियों द्वारा हम आपके प्रिय पात्र हों। प्रातदर्न के पुत्र नत्र श्री शत्रुओं का नाश तथा धन प्राप्त कर ऐश्वर्यशाली बनें।"

भरद्वाज की स्तुसि से इन्द्र प्रसन्न हो गये। चापमान तथा प्रस्तोक की सहायता की इच्छा से की गयी भरद्वाज की स्तुति सफल हुई।

इन्द्र का दोनों राजाओं की सहायता निमित्त हर्युपीया नदी के तट पर आगमन हुआ।

× × ×

इन्द्र वज्रधारी थे। उन्होंने अद्भुत पराक्रम का प्रदर्शन किया। वज्र की घोर ध्वनि तथा आघात से वरशिख के पुत्र विदीर्ण हो गये। इन्द्र ने राजा चापमान को इच्छित धन प्रदान किया। हरियूपिया नगर के मध्य स्थित वरशिख के वंशज 'वृत्तीवान' के पुत्रों का इन्द्र ने हनन किया। यज्ञपात्र भंजक, कवचधारी एक सौ तीस वरशिख के आक्रमणकारी पुत्रों को इन्द्र ने एक साथ मारा। इन्द्र ने तुर्वश राजा को 'सृंजय' राज को समर्पित किया था। दैववात वंशी अभ्यवर्ती के समीप 'वरशिख' के पुत्रों को वशवर्ती किया।

इस प्रकार चायमान तथा प्रस्तोक ने इन्द्र की सहायता से वरशिखों को परास्त कर अपना पूर्व गौरव प्राप्त किया।

× × ×

अभ्यावर्तन तथा साञ्जेय राजा विजय करने के पश्चात् भरद्वाज की सेवा में उपस्थित हुए। उनकी विजय भरद्वाज के कारण हुई थी।

उन्होंने भरद्वाज को दान दिया। उस दान को देख कर भरद्वाज ने अग्नि की स्तुति की :

"अग्ने ! दानी अभ्यावर्ती चापमान ने दासियों सहित हमें रथ तथा बीस गायें दान दी हैं। पृथु-वंशी राजा अभ्यावर्ती की दक्षिणा का कोई विनाश नहीं कर सकता।"

इसी प्रकार इन्द्र के स्तोता, मन्त्रद्रष्टा तथा ऋषि पापु को प्रस्तोक ने दस स्वर्ण कोश तथा दस अश्व दिये। सबके हित के लिए भरद्वाज के पुत्र ने धन ग्रहण किया और सृंजय के पुत्र ने उनकी पूजा की।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : ६ : २७ : ४-५५, ६ : २७ ५-८, ६ : २७ : ७, ६ : ४७ : २२ २५, ६ : ७५

वृहद्देवता : ५ : १२४-१४२

नोट—इस कथा में वेद कालीन रण-उपकरणों का वर्णन किया गया है। ऋषियों के ज्ञान तथा उनके युद्ध सम्बन्धी अनुसन्धानों से लाभ उठाया जाता था। तत्कालीन ऋषि आधुनिक श्रेष्ठ वैज्ञानिकों के समान थे जो अपना समस्त जीवन ज्ञानार्जन में लगा देते थे। वे अपने अनुसन्धानों का प्रयोग व्यावहारिक विज्ञान की तरह करते थे। तत्कालीन युद्ध के साधनों की कथा, वर्मधारी, योद्धा, धनुष, प्रत्यंचा, धनुष के किनारों, तरकस, सारथी, रश्म, अश्व, आयुधागार रथगोप अर्थात् रथरक्षक, रणदेवता, इषु, कवच, कशा, हस्तत्राण, दग्धवाण, अधोमुखी वाण, वरुणास्त्र, धनुर्मुक्त वाण, युद्धारम्भकाल, कवच बाँधने वाला तथा युयुत्सुओं की स्तुति की गयी है।

१. कशा—घोड़ा हाँकने का चाबुक या कोड़ा।

२. अभ्यावर्तिन—वृची मानो को जीता था। सृंजय, देववात और इन्हें एक माना गया है। सृंजयों के सम्राट थे। इनका उल्लेख पार्थव रूप में भी किया गया है। एक मत है। यह पर्थिया के थे। इनकी पश्चिमी दिशा की प्रजा ईरान के आर्कोशिया नामक स्थान की थी।

३. चापमान—अभ्यावर्तिन का पैतृक नाम चापमान है।

४. तुर्वश—ऋग्वेद में यदु तथा तुर्वश जातियों का अनेक स्थानों पर एक साथ वर्णन है। पञ्चजनों में एक तुर्वश जाति भी थी। सुदास के साथ इनका उल्लेख मिलता है। इन्द्र ने युद्ध में तुर्वशों की सहायता की थी। दिवोदास पर आक्रमण करने का भी उल्लेख मिलता है। एक मत है कि यह जाति कालान्तर में पाञ्चालों में विलीन हो गयी। उनके परुष्णी नदी पार करने का उल्लेख मिलता है, किन्तु उनका निवास स्थान कहाँ था, गवेषणा का विषय है। यह जातिसमूह का नाम था। इस शब्द का एक वचन राजा का द्योतक है। कण्व इनके पुरोहित थे।

५ पापु—ऋग्वेद में रक्षक अर्थ में तथा एक भारद्वाज कवि के नाम के रूप में आया है। एक सूक्त द्रष्टा थे। दिवोदास राजा के आश्रित थे।

६. प्रस्तोक—ऋग्वेद के एक राजा हैं। उदारदाता हैं। सायणादि भाष्यकार ने इन्हें दिवोदास अतिथिग्व और अश्वथ का नामांतर माना है। पायु को इन्होंने दान दिया था।

७. वरशिख—एक जाति प्रमुख है। आदिवासी जाति के एक नेता का नाम है। चापमान ने इन्हें पराजित किया था। दूसरा मत है कि तुर्वश तथा सचीवन्त लोगों के नेता थे।

८. साञ्जय—सृंजयों के राजा प्रतीत होते हैं, भरद्वाजों के आश्रयदाता थे।

९. वल्गा किंवा रश्मि—घोड़ों की रास।

१०. हरिप्पिपा नगर—कल्पना की जाती है कि प्राचीन हरप्पा नगर का यह नाम था। संदिग्ध धारणा मालूम होती है।

मराडल : ७

वरुण, वशिष्ठ और श्वान

एक सत्र था उर्वशी उपस्थित थी। उसी सत्र में मित्र-वरुण उपस्थित थे और उपस्थित थे अनेक देवतागण। मित्र-वरुण की दृष्टि तन्वी उर्वशी की ओर उठी, उसकी रूप माधुरी में रस लेने लगी। दृष्टि में रूप मद छलका। उसके साथ छलका मन में काम। तीव्र रूप आकर्षण में मन सन्तुलन खो बैठा।

नारी का आकर्षण, रूप का आकर्षण, यौवन का आकर्षण, काम कल्पना साकार हुई। वासना मुसकरायी। वासना का संयोग मन से हुआ। वासना का संयोग इन्द्रियों से हुआ। मन, वासना, इन्द्रियों के क्षोभ के कारण काम-त्रिदोष से उत्पन्न हुआ शरीर क्षुब्ध हुआ। क्षुब्ध शरीर काल्पनिक सुख में भूला और आवेश में, रति सुख वेग में, वीर्य ने स्थान त्याग दिया।

काम का परिणाम नग्न-रूप में हँसा। मित्र-वरुण का वीर्य उनका शरीर त्यागने के लिए तुल गया। वेग रोकने में वे असमर्थ हो गये।

उर्वशी उनकी दयनीय मुद्रा देखकर मुसकराई। उन पर उसे दया आई। मित्र-वरुण उर्वशी को अपनी आसन्न स्खलन अवस्था में देखकर खिन्न हुए। परन्तु वीर्य रुकने के लिए तैयार नहीं था। मन काम कर चुका था। इन्द्रियाँ नियन्त्रणहीन हो चुकी थीं।

समीप जलपूर्ण कुम्भ था। उन काम ताड़ितों को और कोई स्थान नहीं सूझा। उन्होंने वीर्य कुम्भ में स्खलित किया। प्रगल्भ उर्वशी के अंचल नासिका के नीचे आ गये। उनकी दशा पर वह व्यंग्य से मुसकराई। मित्र-वरुण कट गये। उन्हें अपनी स्थिति पर स्वयं विराग उत्पन्न हुआ, रुलायी आयी। वहाँ

से लज्जित वे वेगपूर्वक पलायन कर गये। रात्रि पर्यन्त वीर्य कुम्भ में पड़ा रहा।

× × ×

वह शुक्र कुम्भ, जल तथा स्थल पर पवित्र हुआ था। अतएव स्थल से ऋषि श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठ, कुम्भ से अगस्त्य और जल से महा द्युतिमान मत्स्य उत्पन्न हुए।

जिस समय जल लिया जा रहा था। उस समय महर्षि वशिष्ठ एक पुष्प पर विराजमान थे। विश्व-देवों ने पुष्प को चारों ओर से धारण किया था। महर्षि वशिष्ठ जल से बाहर निकले। अनन्तर वे महान् तपस्या में रत हो गये।

महान् तपस्या द्वारा वशिष्ठ ने इन्द्र का प्रत्यक्ष दर्शन किया। अन्य ऋषियों के लिए इन्द्र अदृश्य थे। किन्तु वशिष्ठ के लिए दृश्यगत हुए। दर्शन होने पर वशिष्ठ ने इन्द्र की सादर पूजा की।

इन्द्र पूजा से प्रसन्न हुए। वशिष्ठ को सोम भाग प्राप्त करने का आदेश दिया। इन्द्र की महती कृपा से वशिष्ठ और उनके वंशज यज्ञ में सर्वकर्म योग्य हो गये। दक्षिणा प्राप्त करने लगे। वे ब्रह्मकर्मी ब्राह्मण बन गये।

वशिष्ठ ने अग्नि की स्तुति की :

"हे अग्ने ! आपको ऋत्विज अरणियों द्वारा प्रकट करते हैं। युवातम अग्ने ! आप प्रदीप्त होते हैं। ज्वालाओंयुक्त तेज धारण करते हैं। जिस अग्नि के समीप सुजाता ऋत्विज बैठते हैं, वह सांसारिक अग्नि से अधिक तेजस्वी, मंगलमय, पुत्र और पौत्रदाता तथा प्रकाशमान होते हैं। हे अग्ने ! हे मित्रों के हित चिन्तक !! कर्मवीरों ने आपके तेज को विभिन्न कर्मों में विभाजित किया है। इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर हमारे यज्ञों में निवास कीजिए। अग्ने ! दूसरे कोठरों में हम निवास नहीं करेंगे। शून्य गृह में भी निवास नहीं करेंगे। हम पुत्रों से शून्य न हों। हम वीरों से शून्य न हों। आपकी महती कृपा से सुपुत्रवान, समृद्धशाली गृह में निवास करें।

"अग्ने ! आपको हवि सम्पन्न यजमान उत्तम रूप से प्रदीप्त करता है। यज्ञ में आपकी परिक्रमा की जाती है। आपको विविध देशों में आहूत किया जाता है। धनेश्वर होकर हम नित्य आपकी स्तुति करें। प्रतिदिन आपको हव्यादि अर्पण करें। देवताओं के पास हमारी रमणीय हवियों को आप पहुँचाइये। अग्ने ! हम निस्सन्तान न हों। हम निकृष्ट वस्त्र धारण न करें। बुद्धि विभ्रम

हमें न हो। क्षुधा ग्रसित न हों। राक्षसों के हाथ में न पड़ें। मृत्यु हमारा आलिंगन गृह, मार्ग किंवा वन में न करे।

"अग्ने ! आप अपनी दर्शनीय ज्वालाओं द्वारा प्रकट होइये। हमारी सन्तानों को दग्ध मत कीजिए। हमारी सन्तानें चिरंजीवी हों। आप हमारे सर्व प्रकारेण सहायक होइये। आप कल्याणकारक कार्यों के ज्ञाता हैं। हम आपकी स्तुति करते हैं। हमें कल्याणकारी धन से पूर्ण कीजिए, ताकि हम पूर्ण आयुष्म, पुत्र, पौत्रादि युक्त होकर प्रसन्नतापूर्वक रहें।

"अग्ने ! हमारी हवि कृपया स्वीकार कीजिए। आप यज्ञ योग्य धूम्र से युक्त होइये। प्रकाशमान होइये। अपनी ज्वालाओं द्वारा अन्तरिक्ष तक पहुँचिये। तत्पश्चात् सूर्य-रश्मियों से मिल जाइये। यजमानों ! आकाश-पृथ्वी में दूत स्वरूप, शक्तिशाली, भ्रमणशील, स्तुति योग्य, अग्नि की सर्वदा पूजा कीजिए।

"हे ! अध्वर्युगण !! घृत पृष्ठ वह्नि अग्निदेव को प्रदान कीजिए। जैसे गाय अपने बच्चे को जिह्वा से चाटती है, वैसे ही चाटने वाली अग्नि को और जिस अन्न के द्वारा आप धन को पुष्ट करते हैं, वह श्रेष्ठ अन्न हमें दीजिए। यजमानों को अन्न, धन तथा प्रशंसनीय बल प्रदान कीजिए। रुद्रगण तथा वसुगण के साथ हमारा मंगल कीजिए।

"अग्ने ! मैं आपकी स्तुति करता हूँ। आप स्तुत्य हैं। इन्द्र तुल्य बली हैं। मैं आपके यश का गान करता हूँ। आप तेजस्वी हैं। पर्वतों के धारणकर्ता हैं। प्रज्ञापक हैं। कल्याणप्रद हैं। आकाश-पृथ्वी के अधिपति हैं। देवता आपको प्रसन्न करते हैं। मैं आपके पूर्व श्रेष्ठ कर्मों का कीर्तन करता हूँ। यज्ञविमुख, कटुभाषी, दुर्बुद्धि 'पणियों' को हमसे दूर रखिये। उनका नाश कीजिए। अन्धकार में स्थित प्राणियों का आपने मार्ग निदर्शन किया है। आपने आसुरी माया को नष्ट किया है। उषा का सृजन किया है।

"अग्ने ! आपने राक्षसों को भगाया है। अश्व के समान आपका वेग है। आप मेधावी हैं। देवों में आपकी दग्ध द्रुम संज्ञा है। आप यज्ञ में दूत का कार्य करते हैं। अग्ने ! आप स्तुत्य हैं। देवताओं के आप मित्र हैं। आप पृथ्वी के किनारों को शब्दायमान, वन को भस्म करते हुए, अपना मार्ग प्रशस्त करते हुए, पधारिए। अग्ने ! आप युवा हैं। आपका शोभनीय रूप प्रकट होने पर, यज्ञ किया जाता है। होता स्वरूप आप तृप्त होते हैं। हविवाहक स्वरूप आप प्राणियों के गृहों में निवास करते हैं। अग्ने ! आप वसुओं के स्वामी हैं। हम आपकी स्तुति करते हैं।"

वशिष्ठ ने वैश्वानर की स्तुति की :

"स्तोताओ ! राक्षसों के हननकर्ता, कर्मवान् अग्नि निमित्त यज्ञानुष्ठान करते हुए उनकी स्तुति कीजिए। मैं प्रसन्न मन से अभीष्टों की सिद्धि देने वाले अग्नि की स्तुति करता हूँ। अग्ने ! आपने दीप्त से तेजोमय आकाश एवं पृथ्वी को परिपूर्ण किया है। देवताओं को शत्रुओं से मुक्त किया है। अग्ने ! आप सूर्य का रूप धारण कर उत्पन्न होते हैं। आप सर्वज्ञ हैं। प्राणियों का आप सन्दर्शन कीजिए। आपको हमारी स्तुतियाँ प्राप्त होती रहें। हमारी आप सर्वदा रक्षा कीजिए।"

वशिष्ठ ने इन्द्र की स्तुति की :

"इन्द्र ! आप शत्रुओं को वशीभूत करते हैं। आपके स्तोताओं का नास्तिक अहित करते हैं। उनके विरुद्ध तीक्ष्ण वीर को प्रेरित कीजिए। उन्हें नष्ट कर डालिये। उन्हें अपने वशीभूत कीजिए। प्रत्यक्ष में आपने नास्तिकों का हनन किया है। इन्द्र ! आपके पूर्व कार्य उषा के समान वर्णनातीत हैं। आपके नवीन कर्मों का वर्णन करना कठिन है। आपने देवक को मारा। शिलाओं से शम्बर का संहार किया है।

"इन्द्र ! पराशरादि जिन ऋषियों की मृत्यु की कामना राक्षस करते हैं, उन पराशर तथा मैंने आपकी स्तुति की है। हम आपकी मित्रता विस्मरण नहीं कर सकते। आप सर्वदा हमारी रक्षा करते रहे हैं।

"इन्द्र ! देवों में आप श्रेष्ठ हैं। आपकी स्तुति के कारण मुझे सुदास से एक शत गाय तथा दो रथ प्राप्त हुए हैं। होता स्वरूप मैं भी यज्ञ-स्थान में प्रवेश करता हूँ। श्रद्धा और दातादि कर्मों वाले राजा सुदास के स्वर्णालंकारों से विभूषित, सरलगामी चार अश्व मुझे पुत्र के समान ले जाते हैं। रोदसी में विस्तृत यशशाली राजा सुदास उत्तम कर्मियों को दान देते हैं। इन्द्र तुल्य उनके स्तोत्र कहे जाते हैं। संग्राम काल में युद्धामधि नामक शत्रुओं को नदियों ने विनष्ट किया था। हे मरुद्गण ! राजा सुदास के पिता की राजा सुदास तुल्य रक्षा करो। इनकी शक्ति क्षीण न हो। इनके गृह की रक्षा कीजिये।"

वशिष्ठ ने विश्वदेवों की स्तुति की :

"हमारी श्रेष्ठ स्तुतियाँ वेगवान रथ तुल्य देवताओं की ओर गमन करें। वर्षा का जल पृथ्वी एवं दिन के प्राकट्य का ज्ञाता है। स्तुतियों का जल श्रवण करता है। वह इन्द्र को तृप्त करता है। विघ्न-काल में प्राणी इन्द्र की स्तुति करते हैं। इन्द्र स्वर्णहस्त है। वज्रधारी है। मनुष्यो ! यज्ञाभिमुख होइये। श्रेष्ठ यज्ञमार्ग के पथिक बनिये। रणभूमि में पदार्पण कीजिए। पापों के शमन निमित्त यज्ञानुष्ठान कीजिए।"

वशिष्ठ ने जल की स्तुति की :

"जलदेव ! अन्तरिक्ष से आपका आगमन होता है। जिन जलों में समुद्र बड़ा है, वे जल प्रवाह युक्त हैं । इन्द्र ने जल को मुक्त किया है। वे जल हमारी रक्षा करें। अन्तरिक्ष स्थित, सरिता प्रवाहित, कूप तथा समुद्र की ओर गतिशील जल हमारी रक्षा करे। जलों के स्वामी वरुण मध्य लोक में गमन करते हैं। प्रकाश युक्त सम्पन्न जल हमारी रक्षा करे। वरुण तथा सोम जिन जलों में निवास करते हैं, जिनके अन्न द्वारा विश्वदेव प्रसन्न होते हैं, जिसमें वैश्वानर अग्नि का निवास है. वे जलदेव हमारी रक्षा करें।"

वशिष्ठ ने वरुण की स्तुति की :

"वरुण ! घातक विषों से हमारी रक्षा कीजिए। छिपकर रेंगनेवाले सर्प, हम पर आक्रमण न करें। अग्निदेव ! पादपों की ग्रन्थियों में जो विष उत्पन्न होता है, जो विष पदों के सन्धि स्थानों में सूजन उत्पन्न कर देता है, उस विष के प्रभाव को प्राणियों से दूर कीजिए। छिपकर चलते सर्प हमें जान न सकें। शाल्मकी वृक्ष, सरिताओं में उत्पन्न होने वाले गुल्म, लतादि में जो विष उत्पन्न होता है, विश्वदेवगण ! उनसे हमारी रक्षा कीजिए। चोरी से चलने वाले सर्प हमें हानि पहुँचाने में असमर्थ हों। प्रवण, निम्न तथा उन्नत देशों में प्रवाहित वे नदियाँ जो प्राणियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं, विष-व्याधि को दूर करने की कृपा करें। नदियाँ हमें हानि न पहुँचा सकें।"

वशिष्ठ ने आदित्य की स्तुति की :

"द्वादश आदित्य, उनचास मरुद्गण, तैंतीस सौ तैंतीस देवता, तीनों ऋभु, दोनों अश्विनीकुमार, इन्द्र तथा अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ। वे हमारे पालक हों। अन्य कृत पापों का फल हम भोगने के लिए भागी न बनें। वसुगण ! जिन कर्मों से आप हमें नष्ट करते हैं, उन कर्मों में हम रत न हों"।

द्यावापृथ्वी की वशिष्ठ ने स्तुति की :

"स्तोताओं ने विस्तीर्ण आकाश-पृथ्वी की स्तुति करते हुए उन्हें आगे प्रतिष्ठित किया है। उन्हीं की मैं स्तुति करता हूँ। मातृ-पितृ भूता आकाश-पृथ्वी स्तोताओं के यज्ञ के अग्रभाग में स्थापना करें।"

वशिष्ठ ने पुनः कहा :

"देव ! आप हमारे मित्र हों। आप व्याधियों को नष्ट करने वाले हैं।"

वशिष्ठ ने क्रमशः वास्तोस्पति, मरुत, सूर्य, मित्रा वरुण, अश्विनी, उषा, इन्द्र और वरुण की स्तुति की। वशिष्ठ मन्त्रद्रष्टा हुए। ऋषि हुए। वे पुरोहित हुए।

× × ×

एक समय की बात है। वशिष्ठ ने अपने पिता वरुण के निवासस्थान की ओर प्रस्थान किया। वरुण का प्रासाद द्युलोक में स्थित था। उनका भवन स्वर्ण निर्मित था। उनका आसन अत्यन्त ऊँचा था। वह दृढ़ तथा सहस्र स्तम्भों पर स्थित था। उनके भवन में सहस्र द्वार थे। प्राणियों के कृत्यों की सूचना देने के लिए सूर्य अपने स्थान से उदित होकर वरुण के स्थान पर जाते हैं। उनके गृह में प्रवेश करते हैं। वरुण का यह स्वर्ण मन्दिर जल के मध्य में स्थित था।

वशिष्ठ ने देखा—पितृगण वरुण के दर्शन प्राप्त निमित्त विकल यत्र-यत्र बठे, खड़े तथा लेटे थे। विश्व के अधिपति वरुण द्युलोक के मध्य में आसीन थे। चतुर्दिक स्थानों का परिवेक्षण कर रहे थे। वायु में अवस्थित होकर वे अपनी गुह्य शक्ति द्वारा, सूर्य माप द्वारा पृथ्वी को मापते रहते थे। वरुण उषा को उत्पन्न कर रहे थे। सूर्य को आकाश के आर-पार जाने के लिए प्रेरित कर रहे थे।

भवन के द्वार पर वरुण का सूर्य समान द्युतिमान रथ वर्तमान था। रथ के स्तम्भों के स्थान पर नधिया लगी थी। उसमें एक व्यक्ति के बैठने का स्थान था। वह सन्नद्ध अश्वों द्वारा युक्त था। वरुण इस रथ पर बैठे थे। द्युलोक का भ्रमण करते थे।

गुप्तचरों का एक बहुत बड़ा समूह वशिष्ठ ने वहाँ देखा। वरुण के वे गुप्तचर दोनों लोकों में भ्रमण किया करते हैं। प्राणियों के गृहों में वरुण अपने गुप्तचरों को भेजते हैं। वे गुप्तचर द्युलोक से उतरते हैं। जगत् में भ्रमण करते हैं। वे सहस्राक्ष हैं। जगत् की प्रत्येक वस्तु का वे अवलोकन करते हैं। उनसे कुछ छिपा नहीं रहता। वशिष्ठ ने वहाँ वरुण के स्वर्ण पंखयुक्त गुप्तचरों को भी देखा। वे उड़ते हैं। विश्व में गतिशील होते हैं।

मनुष्यों के पाप और पुण्यों को लक्ष्य करते हुए वरुण निर्मल और मधुर जल में विचरण करते हैं। वरुण की शक्ति इतनी प्रबल है कि आकाशगामी पक्षी, प्रबल वेगवती नदियाँ, उनके क्षोभ, पराक्रम तथा क्रोध की सीमा तक नहीं पहुँच सकती थीं। वे सब की गुप्त-से-गुप्त बात देख लेते हैं। उनकी दृष्टि से जल, स्थल, आकाश में कुछ छिपा नहीं रहता।

मनुष्यों की पलकों का उठना और गिरना वरुण निर्धारित करते हैं। प्राणियों के कर्म, सृजन तथा विचारों से वरुण परिचित रहते हैं। आकाश-पृथ्वी उसके भीतर-बाहर जो कुछ है, उसे वे देखते हैं। आकाश से भागकर, छिपकर भी कोई प्राणी उनसे बचकर नहीं रह सकता।

वरुण पापियों को उनके पापकर्म का दण्ड देते हैं। उनके विधानों का जो उल्लंघन करता है, उस पर क्रोधित होकर दण्ड देते हैं। वरुण पापियों को पाश

से बाँधते हैं। असत्य भाषियों को वे सात अथवा तीन फन्दों के पाश से बाँधते हैं। उनकी उपासना की जो उपेक्षा करते हैं, उन्हें व्याधियों से पीड़ित करते हैं। पश्चात्ताप करने वालों पर उनकी कृपा होती है। वे प्राणियों को उनके पापों से ही नहीं मुक्त करते अपितु उनके पितरों को भी पाप से मुक्त करते हैं। अनजान में उनके नियमों से जो विरत हो जाते हैं, उन्हें वे क्षमा कर देते हैं। वे अपने उपचारों से मृत्यु को भगाते हैं। पापों से प्राणियों को मुक्त करते हैं। वे किसी का जीवन समाप्त कर सकते हैं और उनके जीवन की वृद्धि भी कर देते हैं। वरुण अपने उपासकों से मित्रवत् व्यवहार करते हैं। दिव्य आवास में स्थित वरुण से उपासक सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। उपासक मानस नेत्रों द्वारा वरुण का दर्शन करते हैं।

वशिष्ठ ने देखा—जल देवता वरुण का भवन जलावृत्त था। वरुण अपने भवन (पस्त्यास) में बैठते हैं। प्राणियों के पाप-पुण्य का निरीक्षण करते रहते हैं। वरुण उस मधुर जल में विचरण करते हैं, जिससे वर्षा होती है। वे जल में ही अपना वस्त्र धारण करते हैं। वर्षा का जल, आकाश में प्रवाहित होने वाला जल तथा ओस गिराने वाले जल वरुण के मुखापेक्षी हैं। जिस प्रकार सोम पर्वतों से सम्बन्धित है, उसी प्रकार जल वरुण से सम्बन्धित है। वे दिव्य पिता स्वरूप जल की वर्षा करते हैं। मधु की वर्षा करते हैं। उनका आवास जल है। उनकी पत्नी जल है। वे जल के नायक हैं। वरुण नदियों के अधिपति हैं। समुद्र मार्ग से वरुण आते हैं। सात नदियाँ वरुण के मुख में उसी प्रकार प्रवेश कर रही हैं, जैसे वे वृद्ध गह्वर में गिर रही हों।

रात्रि का समय था। वशिष्ठ ने वरुण के सहस्र द्वारयुक्त भवन में प्रवेश किया। उन्हें एकांकी प्रवेश करते देखकर, द्वार पर स्थित वरुण का कुत्ता भूंकने लगा। वशिष्ठ रुके नहीं। कुत्ता उन पर दौड़ा। उन्हें काटना चाहता था। कुत्ते को पुचकार कर वशिष्ठ ने शान्त किया। तत्पश्चात् उन्होंने स्तुति की :

"हे वास्तोष्पते ! आप जब अपना दाँत निकालते हैं, तो आपके दाँत आयुध तुल्य प्रतीत होते हैं। आप सुखपूर्वक शयन कीजिए। सारमेय ! आप जहाँ जाते हैं, वहाँ पुनः पहुँचते हैं। आप चोर तथा दस्यु के पास जाइये। इन्द्र की स्तुति करने वाले के पास क्यों आते हैं। उनके कर्म में क्यों बाधा उपस्थित करते हैं। आप सुख से शयन कीज़िए। आप शूकर आदि को विदीर्ण कीजिए। आप सुख से शयन कीजिए।"

वरुण का श्वान वशिष्ठ की स्तुति सुनकर सो गया। मार्ग निष्कंटक हुआ देखकर वशिष्ठ पुनः अग्रसर हुए। वहाँ पर उन्हें वरुण के सेवकादि मिले।

वशिष्ठ के मार्ग में उन्होंने बाधा उपस्थित की। वशिष्ठ ने उनकी स्तुति की :

"इन्द्र के उपासक के मार्ग में क्यों आप बाधा उपस्थित करते हैं। आप सुख से शयन कीजिए। आपके माता-पिता शयन करें। गृहस्वासी, बन्धु-बान्धव प्रत्येक दिशाओं में स्थित मनुष्य शयन करें। जो यहाँ उपस्थित है, जो यहाँ देखता है, जो यहाँ घूमता है, हम उसकी आँखों को नष्ट कर देंगे। वे काष्ठ के समान निश्चल हो जायेंगे। सूर्य समुद्र से ऊपर उठे हैं। हम उनकी सहायता प्राप्त करेंगे। उनकी सहायता से मनुष्यों को निद्राग्रस्त करेंगे। प्रांगण में शयन करनेवाली, वाहन पर शयन करने वाली, बिछौने पर शयन करने वाली, पुष्प-गन्ध वाली, इस प्रकार की सब स्त्रियों को शयन करायेंगे।"

भवन के सेवकादि सब निद्राग्रस्त हो गये। वशिष्ठ बिना अवरोध आगे बढ़े।

× × ×

"कौन !"—वरुण ने अन्धकार में मनुष्याकृति देखकर पूछा।

"भगवन् ! आपका पुत्र वशिष्ठ।" वशिष्ठ ने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा।

"तुम यहाँ कैसे पहुँचे।" वरुण ने चकित होकर पूछा।

"श्वान को मैंने सुला दिया है।"

"और—।" वरुण और चकित हुए।

"सेवक, भृत्य सबको सुला दिया है।"

"अच्छा ?" वरुण को कौतूहल हुआ।

"पितः !" वशिष्ठ ने पुनः शिरसा नमामि किया।

"विना आज्ञा तुमने प्रवेश किया है।"

वरुण क्रुद्ध हो गये। वशिष्ठ किंचित घबड़ाये। वरुण ने पुत्र को पाश से आबद्ध कर लिया। पाशबद्ध वशिष्ठ ने पिता की प्रार्थना की :

"पितः ! आपका जन्म महिमा से युक्त है। आपने रोदसी की स्थापना की है। आप आकाश तथा नक्षत्रों को प्रेरित करते हैं। पृथ्वी को आपने प्रशस्त किया है। आपके साथ मैं किस समय रहूँगा। आप मेरे हव्य को किस समय ग्रहण करेंगे। मैं आपके दर्शन कब प्राप्त कर सकूँगा। मैं आपसे पाप-निवारण की जिज्ञासा किस समय करूँगा। मैंने विद्वानों से प्रश्न किया है।"

"विद्वान क्या कहते हैं ?" वरुण ने पुत्र की ओर देखते हुए पूछा।

"पितः ! वे कहते हैं आप मुझसे रुष्ठ हैं।"

वरुण ने पुत्र वशिष्ठ को ध्यान पूर्वक देखा।

"पितः ! मुझसे क्या अपराध हुआ है ? आप बताइये । मैं किस प्रकार शुभकर्मी और नमस्कार करता हुआ आपके समीप पहुँच सकूँगा । हमारे शरीर से जो अपकार हुए हैं, उन्हें आप दूर कीजिए । पशु तस्कर जिस प्रकार पशु को तृणादि खिलाकर प्रसन्न करता है । जिस प्रकार बछड़ा रस्सी से खुलकर प्रसन्न होता, उसी प्रकार आप मुझे पाप से मुक्त कीजिए ।"

पिंगल वर्ण वरुण अपने पुत्र की वार्ता सुनकर गम्भीर होने लगे । वशिष्ठ ने पुनः निवेदन किया :

"पित : ! पाप केवल अपने दोष के कारण ही नहीं प्राप्त होता । किन्तु वह क्रोध, भ्रम, धूर्त्त, क्रीड़ा, अज्ञान तथा दैव गति से भी प्राप्त होता है । बड़े लोग भी कनिष्ठों को कुमार्ग पर चला देते हैं । स्वप्न में भी पाप की उत्पत्ति हो जाती है ।"

खल्वाट वरुण का मस्तक पुत्र की तरफ और झुक गया । वशिष्ठ ने सानुनय कहा !

"पितः ! मैं पवित्र होकर आपकी सेवा करूंगा । अज्ञानियों को आप ज्ञान दान दीजिए । स्तोता को धन दीजिए । पितः ! यह स्तुति मैं आपसे कर रहा हूँ । योगक्षेम हमारे लिए कल्याणकर हैं । आप हमारा पालन कीजिए ।"

वृद्ध वरुण पुत्र की स्तुति से पूर्ण प्रसन्न न हो सके । वशिष्ठ ने पिता को द्रवित हृदय होता न देखकर पुनः स्तुति की :

"पितः ! आपने सूर्य को अन्तरिक्ष में मार्ग दिया है । आपने नदियों को जलमय बनाया है । आपने दिन तथा रात्रि को विभाजित किया है । विश्व आत्म स्वरूप वायु, जल को चारों ओर ले जाता है । जिस प्रकार तृण खाकर पशु अन्न ढोता है, उसी प्रकार वायु अन्न वहन करता है । आपके अनुचर प्रशंसनीय हैं । आकाश एवं पृथ्वी के श्रेष्ठ स्वरूपों को देखते हैं । स्तोत्रों को भी देखते हैं ।"

"पुत्र !" पीत नेत्र वरुण ने कहा, "पृथ्वी के इक्कीस नाम हैं ।"

"पितः ! आपका उपदेश हमें स्मरण है । आपके अन्तर में तीन स्वर्ग हैं । उनमें तीन प्रकार की भूमि तथा छः दिशाएँ हैं । स्वर्ण के झूले के समान आपने सूर्य की तेज निर्मित रचना की है । आपने समुद्र की रचना की है । उत्पन्नशील सभी वस्तुओं के आप स्वामी हैं । आप अपराधी पर करुणा करते हैं ।"

वरुण के पुष्ट वृद्ध कण्ठ से कोई स्वर ध्वनि नहीं निकली । वशिष्ठ ने अपने पिता को पसीजता न देखकर, पुनः उनकी करबद्ध स्तुति की :

"देव ! आप यज्ञ योग्य हैं । धन के स्वामी हैं । सूर्य को आप जगत् के सम्मुख उपस्थित करते हैं । मैं आपका दर्शन करता हूँ । अग्नि-ज्वालाओं को

नमस्कार करता हूँ। आप सोम रस का पान करते हैं। उस समय दर्शन निमित्त शरीर की वृद्धि करते हैं। आपने दिन एवं रात्रि को बनाया है।"

वरुण दोनों हाथों की उँगलियों से अपनी खल्वाट, केश विहीन खोपड़ी पर हाथ थपथपाते हुए जैसे कुछ स्मरण करने लगे। वशिष्ठ ने प्रांजलिभूत कहा :

"पित: ! आप और मैं एक साथ नौका पर आरूढ़ हुए थे। समुद्र में नौका चली थी। वह झूले की तरह लहरों पर झूलने लगी। उस झूलास्वरूप नौका पर सुखपूर्वक क्रीड़ा की थी। आपने मुझे श्रेष्ठ कर्मवाला बनाया है। आपको स्मरण है ? हम प्राचीन काल में मित्र किस समय हुए थे ?"

वरुण ने प्रश्नपूर्ण पीत वर्ण आँखों से वशिष्ठ की ओर देखा। वशिष्ठ ने विनम्र वाणी में कहा !

"हमारी हिंसा रहित मित्रता थी। उसका निर्वाह हम करते चले आ रहे हैं। आप अन्न के स्वामी हैं। मैं आपके सहस्र द्वार वाले गृह में प्रविष्ट हुआ। आपके अपराधी भी आपके मित्र बनें। पापपूर्ण भोगों को हम न भोगें। आप हम स्तुतिकर्त्ताओं को गृह प्रदान कीजिए।"

श्वेतवर्ण वरुण गम्भीर हुए। वशिष्ठ ने प्रणाम करते हुए पुन: उनकी स्तुति की :

"पित: ! हम आपके स्तोता हैं। हमें पाशमुक्त कीजिए। आपकी रक्षा का हम उपभोग करें। आप हमारा सर्वदा पालन कीजिए।"

वशिष्ठ ने पिता को प्रणाम किया। वरुण अपने पुत्र की विनय पर प्रसन्न हुए। वे मुसकराये। उनके मुसकराते ही पाश शिथिल होकर गिर पड़ा। वशिष्ठ पाश मुक्त हो गये। उन्होंने पिता का चरण-स्पर्श किया।

"पुत्र ! तुम्हारी क्या इच्छा है ?" वरुण ने स्नेह से कहा।

"पित: ! मिट्टी का घर हमें न मिले। आपकी मुझ पर दया होनी चाहिए। आप मुझे सुख दें। मैं वायु से ढकेले गये मेघ के समान कम्पित होता गमन करता हूँ। मुझे सुख दीजिए। मुझ पर दया कीजिए।"

वृद्ध वरुण का करपल्लव अभय मुद्रा में उठा। वे बोले :

"तुमने कर्म क्यों नहीं किया ?"

"पित: !" वशिष्ठ ने स्थिर स्वर में विनयपूर्वक कहा, "दरिद्रता तथा असमर्थता के कारण मैं अनुष्ठानों को सम्पन्न नहीं कर सका। आप मुझ पर कृपा कीजिए। मेरा कल्याण कीजिए।"

वरुण ने स्नेह से पुत्र की ओर देखा। वशिष्ठ ने पुन: निवेदन किया : पित: समुद्र में रहकर भी मुझे प्यास लगी है। विशाल जल राशि में होते हुए

भी मेरी जैसे प्यास नहीं बुझ रही है। आप मुझ तृषित को तृप्त कीजिए। देव ! देवताओं का मनुष्यों द्वारा जो अपराध हुआ है, अज्ञानवश कर्मों में जो त्रुटि हो गयी है, उन पापों के कारण हमारा अनिष्ट मत कीजिए।"

कहते-कहते वशिष्ठ ने पिता का पुनः चरण-स्पर्श किया। वरुण प्रसन्ता-पूर्वक बोले :

"पुत्र ! तुम्हारा कल्याण हो।"

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : ७ : ५५ : २-३, ७ : ७७ : १, ७ : ८६-८९, ७ : ८८ : ७

बृहद्देवता : ६ : ११-१५

नोट—परलोक का काल्पनिक वर्णन इस कथानक में किया गया है। वेद में नरक का वर्णन नहीं मिलता। नरक की कल्पना बहुत काल बाद की है। आसुर विचारों का जब वैदिक विचारधारा पर प्रभाव पड़ने लगा और आसुर मत प्रबल हो उठा तो स्वर्ग, नरकादि की कल्पना की गयी। उसके प्रलोभन के साथ ही साथ सन्तोष और विश्वास का भी पुट मिला दिया गया।

अध्वर्यु—अध्वर का अर्थ यज्ञ है। अध्वर्यु का अर्थ है, यज्ञ कराने वाला।

अरणी—अग्नि उत्पन्न करने वाली दो लकड़ियों को मन्थन कर उनसे आग उत्पन्न की जाती थी। उत्तरारणि कठोर काष्ठ अश्वत्थ की और अधरारणि शमी की कोमल लकड़ी की होती थी। उत्तरारणि को हाथों या रस्सियों से अधरारणि पर रगड़ा जाता था। इस प्रकार के अर्थ-घर्षण से अग्नि उत्पन्न होती थी।

पराशर—निरुक्त के अनुसार वशिष्ठ किन्तु आर्षकाव्य परम्परा उन्हें शक्ति का पुत्र तथा वशिष्ठ का पौत्र मानती है।

मत्स्य—शाब्दिक अर्थ मछली होता है। ऋग्वेद में सुदास के शत्रुओं में एक जन मत्स्य का उल्लेख मिलता है।

मित्र—एक वैदिक देवता। बारह आदित्यों में प्रथम आदित्य माने जाते हैं। मित्र दिन के देवता हैं।

रुद्र—एक प्रमुख ऋग्वेदीय देवता। उन्हें कपर्दी भी कहा गया है।

वरुण—यह एक वैदिक देवता हैं। मित्र के साथ प्रायः उल्लेख मिलता है। वरुण रात्रि के देवता हैं।

वसुगण—एक देवता हैं। वसु आठ हैं यथा—आयु, ध्रुव; सोम, धर या धव, आनेल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास।

नाहुष और सरस्वती

नहुष के पुत्र मन्त्रद्रष्टा नाहुष थे। नाहुष ने यज्ञ का विचार किया। संकल्प किया। एक सहस्र वर्ष की दीक्षा लेंगे। यज्ञ निमित्त स्थानादि के अन्वेषणार्थ रथारूढ़ हुए। प्रस्थान किया। जगत् में भ्रमणशील हुए। नाहुष पृथ्वी की नदियों के पास पहुँचे। नदियों की पूजा की। उनका सत्कार किया।

विनतमूर्धा नाहुष ने नदियों से निवेदन किया :

"मैं यज्ञार्थी हूँ। यज्ञ करने का मैंने संकल्प किया है। आप लोग पृथक्-पृथक् अथवा द्वन्द्व रूप द्वारा अपना-अपना भाग लेने की महती कृपा कीजिए।"

"राजन्!" नदियों ने अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहा, "हमारी शक्ति अल्प है।"

"किन्तु मुझे यज्ञ सम्पन्न करना है।" नाहुष ने नदियों से अपना प्रयोजन स्पष्ट करते हुए कहा।

"राजन्!" नदियों ने सविचार उत्तर दिया, "आप एक सहस्र वर्ष यज्ञ की दीक्षा लेना चाहते हैं। इतना लम्बा काल है। यज्ञ सत्र के लिए सभी भाग लेना हमारी सामर्थ्य के बाहर है।"

"किन्तु मैंने संकल्प लिया है।" नाहुष ने अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहा।

नदियों ने उत्तर नहीं दिया।

"मेरा संकल्प पूरा होना चाहिए।" नाहुष ने विनीत स्वर में कहा।

नदियाँ परस्पर परामर्श करने लगीं। नाहुष उन्हें परामर्श करते देख सानुनय बोले :

"आप लोग कोई उपाय बताइये, अन्यथा मेरा संकल्प भंग हो जायगा।"

"नाहुष!" नदियों ने कहा, "आप सरस्वती के पास जाइये।"

"सस्वती —?" नाहुष ने जिज्ञासु मुद्रा में प्रश्न किया ।

"हाँ ! राजन् !! वही आपके लिये भाग लाने में समर्थ हो सकती है।"

नाहुष गम्भीर हो गये ।

"राजन् !" गर्वपूर्वक नदियों ने कहा, "सरस्वती विद्युत की पुत्री है। नदियों की माता है। सप्तस्वरीय है। असुर्या है। पाँच जातियों की पोषक है। सारस्वत योद्धा की पत्नी है।"

"वहाँ और यज्ञ—?" नाहुष वे नम्र स्वर मे कहा ।

"राजन् ! सरस्वती नदी तट पवित्र है। वह पृथ्वी की पावन नदी है। वह सुभाग है। वह नदी तमा है। देवी तमा है। पवित्र सप्त नदियों में एक मुख्य नदी है।"

"यज्ञ वहाँ होता है ?" विचारशील नाहुष ने जिज्ञासा की ।

"राजन् ! सरस्वती के पवित्र तट पर यज्ञाग्नि प्रज्वलित होती है। उसके तट पर राजा चित्र का निवासस्थान है। वे धन दान करते हैं। मेघ स्वयं वर्षा द्वारा जिस प्रकार पृथ्वी को पुष्ट करता है, उसी प्रकार राजा चित्र सरस्वती तटीय निवासियों को धन दान देते हैं। वहाँ के निवासियों के सुख के कारण हैं। पृथ्वी पते ! सरस्वती की पवित्र तट पावन प्रसूत यज्ञ-भूमि है।"

"नदियो ! सरस्वती तट पर मैं जाऊँगा।" नाहुष ने निश्चयात्मक स्वर में कहा।

मानद सरस्वती का निकटवर्ती प्रदेश सरोवरों की शृंखलाओं से पूर्ण है। सरस्वती जगत् की विशाल नदी है। उसका जल महार्णव में मिलता है। समुद्र का वही जल मेघ बनकर पुनः वर्षा करता है। वह जल पवित्र सरस्वती में आता है। प्रवाहित होता है, अपने मूल स्रोत समुद्र में पुनः मिलता है। महार्णव की उत्ताल तरंगों का चिर संगीत सुनता है।

"सरस्वती अंचल के निवासी—?" नाहुष ने प्रश्न किया।

"राजन् !" सरस्वती का पवित्र तट पाँच जातियों का निवासस्थल है। वह लौह दुर्ग के समान है। ब्रह्मावर्त की पश्चिमी सीमा है। भारतवर्ष की पूर्वीय सीमा है। गंगा, यमुना और शत द्रु के मध्य यह पुण्य सलिला नदी अपने निर्मल जल के साथ प्रवाहित रहती है। उसका पवित्र तट ऋषियों की वेदध्वनि से गूँजता रहता है।"

"ऐसी पुण्य नदी को मेरा प्रणाम है।"

नाहुष ने सरस्वती का स्मरण किया। मन-मन्दिर में उसका ध्यान करते हुए नमन किया। नदियों ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा :

"जगतीपते ! अम्बितमे, नदीतमे, देवितमे, श्रेष्ठत्व प्राप्त सरस्वती निर्धनों को धनी बनाती है। वह कान्तिमय है। उसके आश्रय में अन्न उत्पन्न होता है। वहाँ सोमपान कर देवता तृप्त होते हैं। वहाँ के लोग पुत्रादि से सम्पन्न हैं।"

"नाहुष !" सरस्वती की प्रशंसा नदियों ने पुनः की, "आपको इन्द्र ने प्रजा के सम्मुख द्रुतगामी अश्वयुक्त बल दिया है। उस बल के कारण आप अपना संकल्प पूर्ण कीजिए।"

"करूँगा—।" राजा नाहुष ने दृढ़ स्वर में कहा।

"भूपते !" नदियों ने कहा, "सरस्वती पर्वत से प्रस्थान करती हैं। सागर तक पवित्र यात्रा करती हैं। पूज्य देवतागण सरस्वती के सम्मुख नत मस्तक होते हैं। सरस्वती अपने उपासकों पर दया करती हैं। यजमान उनसे धन प्राप्त करते हैं। वह आश्रयदाता वृक्ष तुल्य आश्रय देती हैं।"

"राजन् !" नदियों ने पुनः कहा, "सरस्वती की स्तुति कीजिए। उनकी पूजा कीजिए। उनकी कृपा से दिव्य एवं पार्थिव अन्न प्राप्त होते हैं। वह हम सब की, आपकी रक्षा करें। यजमानों को वह धन देती हैं वह कल्याण करती हैं, वृद्धि करती हैं।"

नदियों ने सरस्वती का ध्यान कर वन्दना की। वे पुनः बोलीं।

"राजन् ! यज्ञ के निमित्त आहूत २१ नदियों में एक सरस्वान देव की स्तुति कीजिए। सरस्वान की कृपा द्वारा जो वर्षा होती है, उसके द्वारा जगत् का कल्याण होता है। वे दर्शनीय हैं। पूजनीय हैं। उनकी जल-धारा को हम सब प्राप्त करते हैं। वे सब की अन्न तथा धन से वृद्धि करते हैं।"

नदियों ने पुनः आशीर्वादात्मक स्वर में कहा :

"राजन् ! उज्ज्वल वर्ण वाली प्रबल वेग वाली सरस्वती आपका कल्याण करें।

राजा नाहुष ने नदियों को नमस्कार किया। नदियों से विदा ली। नाहुष के पद सरस्वती की दिशा में शीघ्रतापूर्वक उठने लगे।

× × ×

"देवी ! सरस्वती !!" राजा नाहुष ने सरस्वती के सुरम्य तट पर पहुँच कर अंजलिबद्ध प्रणाम किया।

"स्वागत राजन् !" सरस्वती ने अतिथि का सत्कार करते हुए कहा।

"देवि की शरण आया हूँ।" राजा ने शिरसा नमामि करते हुए विनम्र वाणी से कहा।

राजा खड़े हो गये। सरस्वती ने उनका दुग्ध तथा घृत से सत्कार किया। सत्कार से प्रसन्न होकर राजा ने निवेदन किया :

"देवी ! मैंने सहस्रवर्षीय यज्ञ की दीक्षा ली है।"

"साधु राजन् !"

"आपका आश्रय और आपकी महती कृपा का आकांक्षी हूँ।"

"राजन् ! शुभ कार्य में बाधा कभी उपस्थित नहीं होती। आपके यज्ञ की पवित्रता दिगंत में फैलेगी। आपका कार्य सफल होगा। यह पावन भूमि यज्ञधूम्र से सुरभित होती रही है।—और होगी।"

× × ×

कालान्तर में पवित्र सरस्वती तट पर यज्ञ-मण्डप लग गया। हवियाँ एकत्रित होने लगीं। घृत तथा दूध से यज्ञ-भूमि भर गयी। ऋषियों के आगमन और उनके तेज द्वारा स्थान ज्योतिर्मय हो उठा।

विशाल यज्ञ-वेदी चिरयुवा अग्नि देव से सज्जित हो गयी। अग्नि हवि ग्रहण करने लगे। उसे वे पुनः सुरभि द्वारा जगत् को वापस करने लगे। मरुतदेव ने सुरभि को अपने स्कन्धों पर लिया। दिगंत को शुद्ध करते चलने लगे। ऋषियों के कण्ठ से निकली वेद ध्वनि से सुरभित सरस्वती तट पूर्ण हो गया। सरस्वती की उज्ज्वल लोल लहरियाँ, वेद-गान के लय से सहस्र वर्षों तक थिरकती रहीं।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १ : ३१ : १७, १ : १०० : १६, २ : ४१ : १६, ३ : ३, ५ : ४३, ५ : ७३ : ३, ६ : २२ : १०, ६ : ६१, ७ : ९५, ७ : ९६, ८ : ६ : २४, ८ : २१, १७-१८, ८ : २४ : २७, ८ : ४६ : २७, ८ : ९५ : २, ९ : १०१ : ४-६, १० : ६३ : १, १० : ६४, १० : ७५

बृहद्देवता : ६ : २० : २४

नोट : सरस्वती नदी कुछ विद्वानों के अनुसार अफगानिस्तान की हेलमण्ड नदी है। सरस्वती नदी की उत्तमता दिखाने का प्रयास किया गया है। इस कथा से यह भी स्पष्ट होता है कि सरस्वती तट पर यज्ञ की प्रचुर सामग्री प्राप्त होती थी। इसके तट पर पाँच जातियों के निवास का उल्लेख है।

असुर्या—ऋग्वेद में असुर्या शब्द आसुरी सेना के लिए आया है। असुर्या असुर लोक के अर्थ में भी प्रयोग किया गया है।

नाहुष—ऋग्वेद में पड़ोस और पड़ोसी के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। नाहुष का अर्थ नहुष जन से सम्बन्धित व्यक्ति किंवा नहुषो के राजा के लिये सम्बोधित किया जाता है।

सरस्वती—सरस्वती शब्द नदी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ईरान में इसका समकक्ष नाम हरक्वैती है।

मण्डल : ८
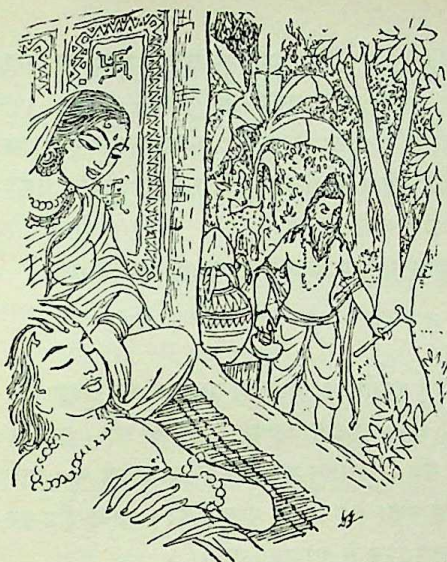
कण्व और प्रगाथ

रमणीय आश्रम था। रम्य पादपावली थी। रमणी के कोकिल-कण्ठ से निनादित कुटी थी। आश्रम की आत्मा ऋषि कण्व ने कमण्डल उठाते हुए कहा :

"देवी ! मैं जाता हूँ। कुछ काल पश्चात् लौटूंगा।"

कण्व ने अपनी पत्नी की ओर स्नेहपूर्ण नेत्रों से देखते हुए सम्बोधित किया। उनकी पत्नी कुटी से बाहर निकल आयी। ऋषि ने कहा :

"प्रगाथ कहाँ है ?"

ऋषि की आँखें आश्रम में अपने कनिष्ठ भ्राता प्रगाथ को ढूंढ़ने लगीं। उनकी पत्नी ने यत्र-तत्र दृष्टि दौड़ा कर सरलतापूर्वक कहा :

"यहीं कहीं होंगे।"

पत्नी युवा थी। सुन्दर थी। वाचाल नहीं थी। मृदु भाषिणी थी। स्वल्प भाषिणी थी। भाषा में सरसता थी। शब्दावली में माधुर्य था।

यौवन उद्धत नहीं था। आँखें निर्मल थीं। शील में पवित्रता थी। मुद्रा में लज्जा थी। लावण्य स्निग्ध था। घोर पुत्र ऋषि कण्व अपनी पत्नी के ललित स्वरूप पर प्रसन्न थे। वह उनकी निधि थी। उसका उन्हें गर्व था। उन्होंने किंचित मुस्कराकर कहा :

'वल्कल दोगी ?"

बिना उत्तर दिये। तन्वी कुटी में चली गयी। विशेष उत्साह प्रदर्शित निमित्त उसके पद द्रुत गति से नहीं उठे। उनमें किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं हुई। जैसे उठते थे, उसी प्रकार उठे और बढ़े।

वल्कल को हाथ में लिए वह लौटी। ऋषि ने वल्कल लिया। पुनः एक बार तन्वी की ओर देखा। प्रसन्न हुए। कामिनी सलज्ज नत हो गयी।

ऋषि की काष्ठ पादुका बोली। बगल में वल्कल दबक गया। कमण्डल हाथ में झूला। ऋषि ओझल होने लगे। पत्नी गायों के समीप पहुँची। बछड़े को चुमकारा। स्नेह से उसे सहलाने लगी।

—और आश्रम में प्रवेश किया। कण्व के कनिष्ठ भ्राता प्रगाथ ने।

× × ×

कुटी में किसी नये धनी के धन प्रदर्शनार्थ, दर्शनीय सामानों का संग्रह नहीं था। उसमें कुछ आवश्यक वस्तुएँ थीं। ज़मीन कच्ची मिट्टी की थी। गाय के गोबर और पवित्र मिट्टी से लिपी थी। कुशासन यत्र-तत्र दो-चार रखे थे। पर्ण चटाई बिछी थी। पूर्ण जल कलश रखा था। कुछ पुस्तकें थीं। काष्ठ-दीप पर दीपक था। रात में जागने के लिये दिन से सो रहा था।

कण्व की पत्नी बैठी थी। प्रगाथ गाढ़ी निद्रा में था। प्रगाथ का मस्तक पत्नी की गोद में था। कण्व भार्या निर्विकार काष्ठ प्रतिमा तुल्य स्थिर थी।

बाहर पादुका की ध्वनि हुई। कण्व पत्नी का ध्यान उस ओर गया। वह विचलित नहीं हुई। किंचित हिलने से युवक प्रगाथ की निद्रा भंग हो सकती थी। वह यथावत बैठी रही। प्रगाथ सोता रहा। पादुका-ध्वनि समीप आती रही।

कुटी द्वार पर सहसा कण्व स्तम्भित हो गये। उन्होंने देखा। निर्लज्ज दृश्य। उनकी सती-साध्वी पत्नी के उरु प्रदेश पर था—उसके युवक कनिष्ठ भ्राता का मस्तक। तामसी वृत्ति ने शरीर में प्रवेश किया। आँखें लाल हो गयीं। ऋषि का क्रोध आँख की लाली बन गया।

तथापि पत्नी अस्थिर नहीं हुई। पूर्ववत् बैठी रही। उसने पति की ओर देखा। संकेत किया। प्रगाथ निद्रा-मग्न था। उसकी मधुर निद्रा भंग करनी उचित न होगी।

ऋषि अपनी निर्लज्ज पत्नी की प्रगल्भता पर जल उठे। उनका मन सन्तुलन खोने लगा। इच्छा हुई, निर्लज्ज नारी पर टूट पड़ें। दुराचार का दण्ड दें। प्रगाथ को फाड़ कर फेंक दें।

काम के स्वार्थ की प्रक्रिया हुई। तामस ने भयंकर रूप धारण किया। ऋषि ने वल्कल झटके से दूर फेंक दिया। कमण्डल उनके हाथ से छूट गया। वे दौड़ पड़े उन दुराचारियों को दण्ड देने। कण्व में तीव्र शाप भावना उग्र

हुई। कण्व का विवेक लुप्त हो गया। क्रोध में बह चले। सुप्त भ्राता पर पाद-प्रहार किया। शरीर काँपने लगा। आँखों से क्रोध-ज्वाला निकलने लगी। प्रतीत होता था प्रखर तेज से कनिष्ठ भ्राता भस्म हो उठेगा और क्रोधानल में जल उठेगी उनकी पत्नी की काया। चिर युवा अग्नि के अंकों में देखेंगे अपनी कोमलांगी पत्नी।

प्रगाथ पदाहत उठ खड़ा हुआ। उसने सम्मुख देखा, अपने ज्येष्ठ सहोदर भ्राता को। उसने श्रद्धापूर्वक भाई को प्रणाम किया। वह भूल गया था पाद-प्रहार की चोट को अपने भ्राता की विचित्र मुद्रा देखकर।

किन्तु कण्व क्रोध से काँप रहे थे। मुख से वाणी स्फुटित नहीं हुई। प्रगाथ विनयशील था क्रोधी भ्राता के सम्मुख शान्त खड़ा हो गया। कण्व ओठ चबाने लगे। धूम्रहीन ज्वाला की तरह तप उठे। उनकी रौद्र मूर्ति देखकर प्रगाथ चकित हो गया।

पत्नी की ओर कण्व की जलती आँखें उठतीं। क्रोध से काँपते, फिर प्रगाथ की ओर देखते। ऋषि अपने को सम्हाल न सके। क्रोधावेश में उनकी वाणी फूट पड़ी!

"पापिष्टे—:"

पत्नी चकित हुई। उसकी समझ में नहीं आया। ऋषि क्यों क्रोधित हो रहे थे। वह स्तब्ध हो गयी। तन्वी के नेत्रों में काम भावना नहीं थी। वे निर्मल थीं।

प्रगाथ वस्तुस्थिति समझ गया। भाई का आधारहीन अपमान उसका संतुलन खोने में सहायक नहीं हो सका। वह शान्त था, निर्विकार था। उसमें तम भावना नहीं थी। रजो गुण का आविर्भाव नहीं हुआ। सतोगुण उसमें शान्त स्थिर रहा। ज्येष्ठ भ्राता के क्रोध को देखकर उसे दया आई। उसने अंजलिबद्ध निवेदन किया:

"कण्व! नार्षद!! भ्रम ने आपको भ्रमित कर दिया है।"

"पापी—!" ऋषि भाई की शान्ति देखकर और क्रोधित हो गये। उन्होंने समझा। वे पटु-व्यभिचारी थे। उन पर ऋषि टूट पड़ना चाहते थे।

ऋषि की उग्र मुद्रा देखकर प्रगाथ भयभीत नहीं हुआ। उसने शान्त स्वर में अपनी भाभी की ओर देखकर कहा:

"काण्व श्रामस! यह मेरी माता है।"

"और—?" ऋषि ने दाँत पीसा।

"आप मेरे पिता हैं।"

प्रगाथ ने ऋषि को करबद्ध नमन करते हुए कहा। कण्व का क्रोध शान्ति और स्थिरता से टकराकर गिरने लगा। वे अपनी पत्नी की ओर देखकर घृणा से बोले :

"कलंकिनी—!"

पत्नी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसके नेत्र छलछला आये। निर्मल निश्छल आँसू शृंगारहीन कपोल पर मोतियों से गिरने लगे। फिर वे भूमि पर गिरे। मुक्ता बिन्दु होकर : ऋषि ने निर्मल आँसुओं को देखा। संकुचित हुए। उन्होंने मुख दूसरी ओर फेर लिया। प्रगाथ ने निवेदन किया :

"आप मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं। आज से पिता हैं। यह मेरी माता है।"

कण्व की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। चंचल होने लगे। प्रगाथ ने कहा :

"आप मन्त्र द्रष्टा हैं। आप मन्त्रकार हैं। आप अंगिरस कुल प्रदीप हैं। आपके मानसिक संतुलन की प्रशंसा होती रही है।"

काण्व ने प्रगाथ को ऊपर से नीचे तक देखा। उनकी आत्मा कह उठी— यह पापी नहीं। यह आँखें कामी नहीं। यह हृदय कलुषित नहीं। यह वाणी पाखण्डी नहीं। ऋषि में विवेक ने प्रवेश किया। प्रगाथ ने ऋषि-पत्नी के चरण स्पर्श करते हुए श्रृद्धा-भक्ति से कहा :

"माते ! मैं तुम्हारे पुत्र तुल्य हूं।"

"प्रगाथ !" ऋषि-पत्नी ने स्नेह से कहा, "पुत्र तुम मन्त्रद्रष्टा हो। तुमने मन्त्रों का दर्शन किया है। तुम सुयोग्य भाई के योग्य कनिष्ठ भ्राता हो तुम्हारा कल्याण हो।"

पत्नी ने वात्सल्य जन्य स्नेह से प्रगाथ को आशीर्वाद दिया। कण्व किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये। पत्नी ने दोनों भ्राताओं की ओर देख कर कहा :

"गुरु की आज्ञा से आप दोनों भाई इस वन में, इस आश्रम में निवास करते हैं। यह आश्रम पवित्र है। आप लोग पवित्र हैं। चर्म चक्षु जो कुछ देखते हैं, वह सभी सत्य नहीं होता। भ्रम भी होता है। काल्पनिक मन की कल्पना वास्तविक नहीं होती।"

प्रगाथ ने वरण किये गए माता-पिता स्वरूप कण्व तथा उनकी पत्नी के चरणों में मस्तक रख दिया। दोनों का आशीर्वाद उसे प्राप्त हुआ।

—और उसकी आँखें दर्शन करने लगीं ऋग्वेद के अष्टम मंडल की विविध ऋचाओं का ।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : ८ : १ : १-२

ऐतरेय आरण्यक : २ : २ : २

कौशीतकी ब्राह्मण : १५ : ४

जैमिनीय उपनिषद् : ३ : ४ : २, ३ : ४ : ३

बृहद्देवता : ६ : ३५-३०

नोट : यह कहानी मनोवैज्ञानिक तथा वैदिक कालीन आर्यों के आचरण की प्रतीक है। वैदिक कथाकारों ने ऋषियों, मुनियों तथा पुरुषों को मनुष्य भावना और उनके स्वाभाविक अन्तर-द्वन्द्व से ऊपर रख कर उन्हें अलौकिक प्राणी बनाने का प्रयास नहीं किया है। उन्होंने मानवीय गुणों आदि से युक्त मनुष्य को उसकी प्रवृत्ति-अनुसार चित्रित करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

कण्व—एक ऋषि का नाम है। उनके वंशजों तथा पुत्रों के लिये कण्वाः, काण्व, काण्वायनाः कहा जाता है। कण्व वंश का अत्रि वंश से सम्बन्ध मालूम होता है।

प्रगाथ—ऋग्वेद में अष्टम मण्डल के ऋषियों के लिए प्रगाथ शब्द का प्रयोग किया गया है।

सौभरि

"महात्मन् !" राजा त्रसदस्यु ने मन्त्रद्रष्टा ऋषि सौभरि को सादर प्रणाम किया।

"राजन् !" ऋषि खड़े हो गये। राजा के प्रति आदर प्रकट करते हुए कहा, "सुरभित सरिता-तट त्याग कर आपका यहाँ आगमन हमारे गौरव वृद्धि का परिचायक है।"

ऋषि ने राजा का पाद्य, अर्घ्य आसन तथा मधुपर्क से सत्कार किया। कुशासन राजा के लिए सुखासन हुआ। ऋषि ने जिज्ञासा प्रकट की :

"पृथ्वीपते ! आपके श्याम वर्ण वृषभ कुशल से हैं ? आप कुशल से हैं ?"

"आपकी कृपा।" राजा ने सविनय कहा।

"राजन् ! आपका दान-यश सर्वत्र व्याप्त है। आपने सत्तर सहस्र तथा दस सहस्र अश्वों, दो सहस्र ऊटों तथा एक सहस्र कृष्ण वर्ण अश्वियों का दान किया है। श्वेत वर्ण वाली दस सहस्र धेनु भी दान की हैं। आपके महान् दान से पृथ्वी गौरवान्वित है।"

"महात्मन् ! आपकी सेवा में मैं कुछ अर्पित करने आया हूँ।"

"दान से बढ़ कर और क्या पुण्य हो सकता है ?" ऋषि की मुद्रा प्रसन्न हो गयी।

"किन्तु अर्थ दान नहीं।" राजा सस्मित बोले।

ऋषि की प्रश्नपूर्ण दृष्टि राजा पर उठी।

"पशु दान भी नहीं।" राजा ने सरल हास से कहा।

ऋषि में जिज्ञासा ने प्रवेश किया।

"कन्या दान की इच्छा है।" राजा ने ऋषि के मुख मण्डल पर दृष्टि स्थिर करते हुए कहा।

"दानों में कन्या दान श्रेष्ठ कहा गया है।" ऋषि आसन पर किंचित झूम-कर बोले।

"अतएव श्रेष्ठ दान आपको अर्पित करता हूँ।" राजा ने ऋषि की ओर गम्भीरतापूर्वक देखते हुए कहा।

"मैं---?" ऋषि चकित हुए।

"महात्मन् ! आपको अपनी पचास कन्याओं का दान कर अपना जमाता बनाता हूँ।"

राजा और ऋषि अपनी क्रिया प्रतिक्रिया में विचरने लगे।

× × ×

पुरुकुत्स के पुत्र राजा त्रसदस्यु ने अपनी पचास कन्याओं का विवाह ऋषि सौभरि के साथ उत्साहपूर्वक सम्पन्न किया। त्रसदस्यु ने ७० गायें, अश्व तथा ऊटों के तीन यूथ, विवध प्रकार के वस्त्र, रत्न, भूरे बैल ऋषि सौभरि को कन्या-दान के साथ दिये।

ऋषि अपनी युवती पत्नियों को पाकर प्रसन्न हुए। प्रदत्त सम्पत्तियों ने उनमें सुख का सृजन किया। राजा त्रसदस्यु का आदर-सत्कार ऋषि को प्राप्त हुआ, अपने निवास स्थान की ओर ऋषि ने प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान किया।

× × ×

सौभरि ने गृह मार्ग का अनुकरण किया। वे चले जा रहे थे। मार्ग में उन्हें इन्द्र मिले। इन्द्र को देखते ही उन्होंने उनकी स्तुति की :

"देव ! आप अद्‌भुत हैं। विवध रूप धारण करते हैं। विद्वान् पुरुषों के समान अपनी रक्षा की आपसे हम कामना करते हैं। सोम द्वारा आपको आहूत करते हैं। आप शत्रु विजेता हैं। विकराल हैं। उग्र हैं। यज्ञों की रक्षा निमित्त आपके आश्रम में शरण ली जाती है। आप उपासनीय हैं। मित्र हैं। हम आपका वरण करते हैं। आप गोपालक हैं। उर्वर भूमि के पालक हैं। अश्व, पालक हैं। कामना की वर्षा करते हैं। हम बन्धु रहित हैं। आप बन्धुवान से बन्धुत्व स्थापना की इच्छा करते हैं। स्वर्ग प्राप्ति निमित्त, गव्य मिश्रित सोम द्वारा, आपके सम्मुख पक्षियों के समान लोग मधुर स्वर से स्तवन करते हैं।"

"हर्यश्ववान इन्द्र ! स्तोत्रा आपकी स्तुति करते हैं। हम पुत्र, पशु आदि की कामना करते हैं। आप धनादि दाता हैं। श्रेष्ठ कर्म आपको अर्पित हैं। आपकी सुरक्षा के कारण हम सर्वदा नवीन रहेंगे। आप सर्वव्याप्त हैं। आपके सख्य भाव को हम जानते हैं। उसकी कामना करते हैं। आपके धन को जानते हैं। उसकी हम कामना करते हैं। प्राचीन काल में हमारे ऐश्वर्यों की रक्षा-निमित्त आप आये थे। मैं आप उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूँ। निस्सन्देह आपका स्तवन करने वाला तृप्त होता है।"

"इन्द्र ! आप अभीष्ट फलदाता हैं। गौओं के सम्पन्न, युद्ध-रत होने पर भी, आपकी सहायता से, अपने क्रोधी शत्रु को हम शान्त कर देंगे। आप जन्म ग्रहण करते ही शत्रु-शून्य हो गये थे। आप सख्य भाव की कामना करते हैं। उसे संग्राम से प्राप्त करते हैं। पिता स्वरूप आपके आहूत करने वालों को आप पुत्रवत् धन देते हैं।"

"इन्द्र ! आप गौ प्रदान करते हैं। हमें धनहीन मत कीजिए। हम आपके हैं। आपके अतिरिक्त और किसी से हम धन ग्रहण न करें। हमें स्थाथी धन से पूर्ण कीजिए।"

सौभरि की स्तुति से इन्द्र प्रसन्न हो गये। उन्होंने सौभरि से कहा :

"ऋषिवर ! हम आपको वर देना चाहते हैं।"

ऋषि ने अपनी भार्याओं की लम्बी पंक्ति की ओर देखा। उनकी भार्याएँ इन्द्र का दर्शन कर कृत-कृत्य हो गयी थीं। ऋषि ने पुनः सास्थित अपनी भार्याओं की पंक्ति की ओर देखा। उनकी दृष्टि इन्द्र के चरणों में लग गयी। लज्जा का बोध हुआ। वाणी चाह कर भी नहीं मुखरित होना चाहती थी। ऋषि कुछ बोल नहीं सके।

"ऋषिवर—!" इन्द्र ने मुसकराते हुए कहा, "क्या वाणी संकोच के कारण मुखरित नहीं होती है ?"

सौभरि की भार्याएँ सौभरि के मुख की ओर देखने लगीं। वे असमंजस में थीं। सोचने लगीं। देखें ऋषि क्या माँगते हैं। ऋषि ने पुनः अपनी भार्याओं पर दृष्टिपात किया। भार्याओं ने चंचल नेत्रों से वर माँगने का संकेत किया। ऋषि ने नम्रतापूर्वक कहा :

"प्रभो ! मैं इन काकुत्स्थ वंशीय कन्याओं का एक साथ रमण इच्छानुसार अनेक रूप धारण कर करूँ—।"

"एवमस्तु—।" इन्द्र ने ऋषि की पचास युवती भार्याओं की ओर मुस-कराते हुए देखकर वरदान दिया। भार्याएँ लज्जित हो गयीं।

"और कुछ—?" इन्द्र ने हँस कर पूछा।

"भगवन् ! मुझे अक्षय यौवन, अक्षय-रति सुख, शंख निधि तथा पद्म-निधि का गृह में कभी अभाव न हो। यही मेरी कामना है।" ऋषि ने स्थिर स्वर में कहा :

सौभरि की भार्याएँ प्रसन्न हो गयीं। इन्द्र ने वर स्वीकार किया :

"एवमस्तु—। और कुछ ?"

"एक वर और माँगना है।" सौभरि ने अपनी भार्याओं की ओर गम्भीरता-पूर्वक देखते हुए निवेदन किया।

"बोलिये—मैं दूँगा।"

"विश्वकर्मा, देव वृक्षों, पुष्पवाटिकाओं सहित पचास पृथक्-पृथक् प्रासादों का निर्माण मेरी भार्याओं के लिए करने की कृपा करें।"

भार्याएँ प्रसन्नता से खिल गयीं। इन्द्र उनकी प्रसन्नता देख कर स्वयं प्रसन्न हो गये। आँखें एक बार उन पर घुमा कर पुनः ऋषि पर स्थिर हो गयीं। वे बोले :

"ऋषिवर और कुछ ?"

"हाँ !" ऋषि ने अपनी भार्याओं के प्रसन्न मुख की ओर देखा। उनकी प्रसन्नता, उनकी विभिन्न मुद्राओं के साथ विभिन्न रूपों में प्रकट हो रही थी। वह बोले—"मेरी इन सह पत्नियों में पारस्परिक स्पर्धा न हो।'

"एवमस्तु !" इन्द्र खिल-खिला कर हँस उठे। पत्नियाँ लज्जित हो गयीं। ऋषि प्रसन्न हो गये। ऋषि ने इन्द्र को प्रांजलिभूत प्रणाम किया। साथ ही उनकी पचास पत्नियों ने श्रद्धाभक्ति पूर्वक इन्द्र को नमस्कार करते हुए उनके चरणों में मस्तक रख दिया।

वरद मुद्रा द्वारा आशीर्वाद देते हुए इन्द्र अन्तर्धान हो गये।

× × ×

कुरुक्षेत्र का पवित्र क्षेत्र था। कण्व-पुत्र सौभरि ने अपने वंश के लोगों के साथ कुरुक्षेत्र में यज्ञ का आयोजन किया था। प्रचुर मात्रा में घृत तथा विविध प्रकार के हवन की सामग्री संग्रहीत की गयी थी।

यज्ञ आरम्भ हुआ। किन्तु चूहे हवि खाने लगे। यज्ञ का हविष्य चूहों के पेट में जाने लगा। चूहों का त्रास रुकता नहीं था।

ऋषि ने चूहों के राजा चित्र की स्तुति की। चित्र ने प्रकट होकर ऋषि से कहा :

"ऋषिवर !" मैं पशु योनि में उत्पन्न आप जैसे ऋषि की स्तुति का पात्र नहीं हूँ। आप देवताओं की स्तुति कीजिए।"

चित्र ने ऋषि को अमित पशु धन दान दिया। ऋषि ने प्रसन्नतापूर्वक दान ग्रहण किया। तथापि सौभरि ने इन्द्र, चित्र तथा सरस्वती की स्तुति की।

"हे चित्र ! हे यजमान !! मुझे हवि देने वाले को क्या इन्द्र ने यह दान दिया है ? अथवा धन की स्वामिनी सरस्वती ने दिया है ? अथवा आपने दिया

है ? वर्षा द्वारा मेघमाला जिस प्रकार पृथ्वी को पुष्ट करती है। उसी प्रकार राजन् ! चित्र !! सरस्वती सरिता-तट निवासियों को धन देकर उन्हें आप सुखी बनाइये।"

चूहों के राजा चित्र सौभरि की स्तुति से प्रसन्न हो गए। सौभरि ने अश्विनीकुमारों की स्तुति की।

"अश्विनी ! यह सोभरि ऋषि सुख प्राप्ति का अधिकारी है। पिता तुल्य आपको आहूत करता हूँ। आप समर्थ हैं। आप अपने रथ पर कृपया आरूढ़ होइये। आपका यहाँ सुख के साथ शुभागन हो।

"अश्विनी। आप धन की वर्षा करने वाले हैं। आप शीघ्रगामी हैं। रक्षक हैं। शत्रुनाशक हैं। अपने द्रुतगामी रक्षा-साधनों सहित हमारी रक्षा-निमित्त आपका पवित्र आगमन यहाँ हो। आप नेता हैं। आप सोम पीने वाले हैं। दर्शन योग्य हैं। हमारे यज्ञ मार्ग को गौ, सुवर्ण, अश्व तथा धन से पूर्ण करते हुए आगमन कीजिए।

"अश्विनी ! जो धन सबको वरणीय है। जिसका बल तथा दान सुन्दर है। जिसे पराक्रमी भी पराजित करने में असमर्थ हैं। हम इस प्रकार के धन की धारणा करने वाले हैं। अश्विद्वय ! आप धन तथा अन्न से सम्पन्न हैं। आपके आगमन पर हमारी धन की कामना पूर्ण होगी।"

चूहों के राजा सौभरि से प्रसन्न हो गये। ऋषि की कामना को पूर्ण किया।

सौभरि ने चित्र को प्रांजलिभूत शिरसा नमामि किया। चित्र ने सौभरि को सहस्रों प्रकार की गायें दीं।

सौभरि का यज्ञ चूहों के आतंक से रहित हुआ। सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। उन्हें चूहों ने पुनः कष्ट नहीं दिया। सकुटुम्ब सभार्या समूह उन्होंने यज्ञ द्वारा पुण्य अर्जन किया।—और सरस्वती तट के निवासी सुख और धन से पूर्ण हो गये।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : ८ : ५ : २६, ८ : १० : २-३२, ८ : २० : १०, ८ : २२ : २-१५, ८ : २२-२५

बृहद्देवता : ८ : ५८-६२

नोट : प्रतीत होता है। वैदिक काल में बहु विवाह प्रथा प्रचलित थी। एक पति की कई पत्नियाँ हो सकती थीं। किन्तु पति का धर्म था कि सहपत्नियों को एक दृष्टि से देखे तथा

सबके सुख का ध्यान रखे। विचार सम्बन्ध का मूल्यांकन द्रव्य किंवा सम्पत्ति नहीं, अपितु चरित्र तथा गुण माना जाता था। राजा सहर्ष अपनी कन्या चरित्र तथा गुणवान ऋषि को दे देता था। कन्याएं राज्य प्रासाद त्याग कर स्वेच्छापूर्वक आश्रम-जीवन व्यतीत करने पर तत्पर हो जाती थीं। वैदिक काल में आजकल के समान चूहे सामग्री खा जाते थे। उनसे रक्षा की ओर इस कहानी में संकेत किया गया है।

चित्र—एक राजा के अर्थ में ऋग्वेद में नाम आया है।

त्रसदस्यु—पुरुओं के राजा और पुरुकुत्स के पुत्र थे। एक शक्तिशाली राजा थे। पुरु लोग सरस्वती तट के निवासी थे। इन्हें पौरुकुत्स भी कहा गया है।

पुरुकुत्स—पुरुओं के राजा और दासों के विजेता थे। राजा सुदास के समकालीन थे। इनकी पत्नी का नाम पुरुकुत्सानी दिया गया है।

सौभरि—ऋग्वैदिक एक ऋषि का नाम है।

अपाला

महर्षि अत्रि का आश्रम था। जलाशय का सामीप्य था। स्थान हरित तरु-दल से आवृत्त था। पुष्पों से सज्जित तरुपल्लवों से छन कर धूप आती थी। उसकी छाया तथा प्रभा दोनों आश्रम भूमितल पर पाप-पुण्य की प्रतिच्छाया की तरह पड़ती थीं। वेदी के निकट समिधा थी, घृत था और कुशासन था। क्षीण धूम्ररेखा वेदी से उठती थी। मरुत यज्ञ-वेदी से धूम्र के साथ उठते सुरभि में, आश्रम के वातावरण में पवित्रता का सृजन कर रहा था।

शिष्यमंडली अश्वत्थ की छाया में कुशासन पर दो पंक्तियों में बैठी वेदपाठ-रत थी। मधुर कण्ठ से शुद्ध उदात्त, अनुदात्त स्वरित स्वर में वैदिक ऋचाएँ निकलती थीं और मरुत के सम्पर्क से चारों ओर पहुँचती थीं। वातावरण को पवित्र करती थीं। आश्रम के अस्तित्व को साकार बना देती थीं।

नवजात बछड़ा अपनी दुही माँ के स्तन में मुख लगाता। दूध न मिलने पर प्रेम से अपना गला माँ के उरु में रगड़ने लगता था।

दो अरणियाँ, मंथन का सामान, सोमलता तथा सोमाभिषव निमित्त साधन एक ओर संग्रहीत थे। कलशों में जल भरा था। उनके मुख को धवल उत्फुल्ल कमल ढँके थे।

वेदी के पृष्ठ भाग में कुछ हटकर आश्रम की पर्ण-कुटिया थी। कुटिया के सम्मुख दीवार पर रक्त-चन्दन में स्वस्तिक का चिह्न द्वार के दोनों तरफ बनाया गया था। चन्दन, केशर से कुटिया के द्वार-देश के ऊपर लिखा 'ॐ'। कुटिया के सम्मुख की भूमि गोबर तथा शुद्ध मिट्टी से लिपी थी। पलाश के पत्तों पर पूजा निमित्त पुष्प रखे थे। आश्रमवासियों के वल्कल वृक्ष के तनों में बंधे थे। फिर खुलने की आशा से कभी-कभी हवा के साथ हिल कर स्मरण दिला देते थे। वे सेवा के लिए तैयार थे।

आश्रम के निकट वृक्षों की छाया में बैठे चुपचाप कृष्ण-मृग जैसे वेद-गान सुन रहे थे।

वृक्षों से गिरे पुष्प पृथ्वी पर मनुष्यों की कल्पना तुल्य यत्र-तत्र बिखरे थे। पादपों की शाखाओं पर फुदकते पक्षीगण कभी-कभी चहक कर वेदगान में स्वयं सम्मिलित होने का जैसे प्रयास कर बैठते थे।

"अपाले !" महर्षि अत्रि ने पुत्री को सम्बोधित किया।

अपाला समीपस्थ न्यग्रोध वृक्ष की छाया में कुशासन पर बैठी वेद के पृष्ठों को उलट-पलट रही थी।

अपाला ऋषि-कन्या थी। गुण उसके शृंगार थे। वेद-ज्ञान उसका अलंकार था। उसके नेत्रों की मसी वेद-ऋचाएँ थीं। सुन्दर पतले ओष्ठों से मुखरित होती ऋचाएँ उसके ओष्ठों का अधर राग था। कण्ठ से तन्त्रीलय-समन्वित उच्चरित वेद-वाणी उसका कण्ठाभरण थी। ज्ञान-गरिमा की मधुर कान्ति उसका अंगराग थी। पिता की वाणी सुनते ही उसने पिता की ओर श्रद्धा-भक्ति से देखा। अत्रि ने पूछा :

"कल की बताई ऋचाएँ स्मरण हो गईं ?"

"हाँ।" अपाला ने बालिका सुलभ सरलता से कहा।

"सुना !" अत्रि के मुखमण्डल पर वात्सल्य था।

अपाला निस्संकोच सुना गई। अत्रि ने चकित होकर पूछा :

"केवल एक बार सुनने पर तुम्हें स्मरण हो जाता है ?"

"हाँ—पितः ?"

"वेदपाठ यहाँ नित्य सुनती है ?"

"कहिए, उसे भी दोहराऊँ ?"

अत्रि और चकित हुए। कौतूहलपूर्ण दृष्टि अपाला पर पड़ी। सस्नेह बोले :

"सुना !"

अपाला सस्वर वेद-पाठ करने लगी। शुद्ध उच्चारण था। छन्द और व्याकरण का उचित निर्वाह था। उसके पदलय-समन्वित शुद्ध उच्चारण को सुनकर ऋषि पुलकित हो गए। अपाला निस्संकोच वेद-गान करती गई। अत्रि चमत्कृत हो गए। उन्हें अपनी पुत्री पर गर्व होने लगा। अन्य शिष्य अपाला की स्मरण-शक्ति, उसका अद्भुत वेद-गान देखकर चकित हो गए।

"अपाला ! चारों वेद तुझे कंठस्थ हैं ?" महर्षि ने सप्रेम पूछा।

"हाँ, पिताजी।"

"उनका अर्थ ?"

"वह भी।"

अत्रि को अपनी कन्या की प्रतिभा का ज्ञान नहीं था। वे नहीं जानते थे कि

कन्या की स्मरण-शक्ति विलक्षण है। उन्होंने कहा, "मैंने यहाँ जो कुछ पढ़ाया है, सबका तुम्हें स्मरण है ?"

"स्मरण है। कहिए, सुना दूँ ?"

अपाला पिता की ओर स्नेह से देखती हुई सुनाने लगी। अत्रि ने कमण्डल उठाया। जैसे एक महान रहस्य का आज उद्घाटन हुआ। वे नभ-मण्डल की ओर देख कर जैसे अपने इष्टदेव को प्रणाम करते हुए बोले, "मैं जलाशय पर जाता हूँ।"

महर्षि के उत्फुल्ल मन ने उनके पदों में नवीन गति जैसे डाल दी। पद सोत्साह उठने लगे। कन्या में अपना गुण देख कर ऋषि में एक नवीन प्रेरणा का संचार हो गया।

उन्होंने वृक्ष से वल्कल खोला, वाम काँख में दबाया। दाहिने हाथ में कमण्डल लिया।

काष्ठ पादुका बोली, "वे चले।" शिष्यों ने अनुसरण किया। हरिणी अनुवर्तिनी हुई। मुनि ने स्नेह से उसकी ओर देखते हुए पुचकारा। वह कूद कर उनके पास आ गई। ऋषि ने कन्यावत् उससे प्रेम किया। उसे थपथपाया। हरिणी वहाँ से लौटकर अपने सोते बच्चे के पास आकर खड़ी हो गई। स्नेह से उसकी पीठ पर अपनी जिह्वा फेरने लगी।

× × ×

महर्षि अत्रि चिन्तित थे। उनकी चिन्ता का रहस्य अपाला जानती थी। त्वग् दोष उसका कलंक था। वह स्वयं लज्जित थी। कन्या पिता की चिन्ता का कारण बन गई थी। आश्रमवासी अनुभव करते थे। बातें सबके मन तक सीमित थीं। जिह्वा पर किसी को लाने का साहस नहीं होता था। किन्तु यह चिन्ता पिता से पुत्री में शनैः-शनैः संक्रान्त होती गई।

अत्रि ने वैद्यों को बुलाया। अपनी कन्या के कान्तिमय शरीर को वैद्यों को दिखाया। अपाला ने सलज्ज भाव से वैद्यों को शरीर के त्वग् दोषों का निरीक्षण कराया।

वैद्य चिन्तित हो गए। शरीर पर श्वेत कुष्ठ के दाग थे। सुन्दर, सुडौल शरीर कुरूप हो गया था। वैद्यों ने उस दुर्दान्त रोग की औषधि बताई, किन्तु अत्रि का अश्रान्त परिश्रम और वैद्यों की औषधियाँ अपाला को निर्दोष बनाने में अक्षम रहीं।

× × ×

ऋषि ने सभी सुलभ औषधियों का अपाला पर प्रयोग किया। चर्मशोधन नहीं हो सका। शुचि शरीर पर, पुण्य पर पाप, जैसे श्वेत धब्बा कलंक प्रतीत होता था।

रोग असाध्य समझा गया। उसके शरीर-कलंक को ऋषि ज्ञानाग्नि में भस्म करने की कल्पना करने लगे। उन्हें जो कुछ आता था, सब पुत्री को पढ़ाया। अपाला जो एक बार सुनती थी, उसे अक्षरशः दूसरी बार सुना देती थी। वह अत्यन्त मेधाविनी थी।

किन्तु मेधा के प्रदर्शन के साथ अपाला की शरीर-वल्लरी में यौवन ने अपने प्रदर्शन का श्रीगणेश कर दिया। वर्षाकालीन लता की तरह वह बढ़ती गई। शनैः-शनैः अपाला की शरीर-वल्लरी में यौवन ने पदार्पण प्रारम्भ कर दिया। वह केवल कन्या नहीं रह गई। खुलते गए ज्ञान-नेत्र। खुलता गया यौवन। मस्तिष्क के साथ शरीर मुकुलित होने लगा।

यौवन पक्षपात नहीं करता। कुरूप में भी नवजीवन का संचार करता है। रूप को सुन्दर बना देता है। सरस बना देता है। विकसित यौवन में अपाला के श्वेत धब्बे मन्द होने लगे। यौवन संचार के साथ प्रतीत होता था—दुर्दान्त रोग शरीर से पलायन कर गया है।

× × ×

अत्रि ने पूर्वकाल में अपाला के लिए वर ढूँढ़ा था। किसी ने उसका वरण करना स्वीकार नहीं किया।

कृशाश्व ब्रह्मवेत्ता थे। तपस्या-रत जीवन था। ब्रह्मचर्य की दीप्ति से कान्तिमान थे। उनका एक दिन ऋषि के पवित्र आश्रम में आगमन हुआ। उनकी दृष्टि कुसुमित अपाला पर पड़ी। अपाला के श्वेत धब्बों को वे यौवन-कान्ति में नहीं देख सके।

अपाला उन्हें आकर्षित करने में सफल हुई। महर्षि से विवाह का प्रस्ताव किया। अत्रि की मनोकामना अनायास सफल हो गई। ऋषि प्रफुल्लित हो गए। शुभ लग्न में, शुभ मुहूर्त में, आश्रम के पवित्र वातावरण में, वेदोक्त पद्धति से, कृशाश्व तथा अपाला का पाणिग्रहण-संस्कार सम्पन्न हुआ।

कृशाश्व ने स्वसुर महर्षि अत्रि से घर लौटने के लिये निवेदन किया। ऋषि ने सहज-स्वर से अनुमति दे दी।

कृशाश्व ने अपनी सहधर्मिणी अपाला सहित अत्रि के आश्रम से प्रस्थान किया।

काल बीतता गया।

श्वेत कुष्ठ त्वचा की ढलती यौवन-कान्ति से झाँकने लगा। अपाला ने भविष्य की कल्पना की। रमणीय रूप रोग के कारण नष्ट हो रहा था। लांछन, तिरस्कार, असत्कार, कलंकिनी आदि विशेषण भर्त्सनापूर्ण दृष्टि से उसकी आतुर प्रतीक्षा करने लगे।

× × ×

कृशाश्व की दृष्टि पड़ी। उज्ज्वल यत्र-तत्र पड़े धब्बों पर। उज्ज्वलता में घृणा अट्टहास कर उठी। तपस्वी मन में प्रतिक्रिया हुई। युवती के कुरूप रूप के कारण अध्यात्म पर भौतिकता की मनहूस छाया पड़ी। कृत्रिम गुण आन्तरिक गुण पर हँसा। चर्म आँखों ने देखनी चाही, चर्म की सुन्दरता। मणि के स्थान पर काँच की कृत्रिम प्रभा।

घृणा से कृशाश्व की आँखें बदल गईं। मन बदल गया। आकर्षणहीन शरीर, मांस, पिण्ड देख कर।

अपाला ने अनुभव किया। विचार किया। अपाला ने विवेक का आश्रय लेना चाहा किन्तु तामसिक वृत्ति की तीव्रता में सात्विक वृत्तियाँ तिरोहित हो चुकी थीं। पाणिग्रहण-काल की प्रतिज्ञा की शृंखला टूट कर गिर चुकी थी।

उसे कुरूप बनाने में उसका क्या दोष था! जिसने उसे यह कुरूप रूप दिया था। उस नियन्ता के प्रति कृशाश्व को घृणा नहीं हुई। उसके शरीर के कल्पनाकार पर उसे घृणा नहीं हुई। उसके रचनाकार पर उसे क्रोध नहीं आया। वह बिगड़ा, किसी की बनाई रचना पर, रचनाकार पर नहीं।

निर्दोष अपाला का शरीर उत्तरदाई था रचनाकार के दोष के लिये। कृशाश्व उस रंगमात्र पर नहीं बिगड़ा, जिसकी तूलिका ने उसके शरीर पर धूप-छाँह बना दी थी।

वह रचनाकार पर, रंगसाज पर इसलिए क्रुद्ध नहीं हुआ कि उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता था। दैव पर नहीं बिगड़ा। बिगड़ा एक अबला पर, जिसका एकमात्र दोष था, नियन्ता ने उसे कुरूप बना दिया था। जिसके लिए वह उत्तरदायी नहीं थी।

कृशाश्व रूठा। महर्षि अत्रि के भय से बोला नहीं। अपाला ने पति की आँखों में तिरस्कार की सबल रेखा देखी। कृशाश्व को देखा। पति को पत्नी के शरीर से कुछ श्वेत धब्बों के कारण विराग हो गया। वह बढ़ता गया। अर्धांगिनी को उसकी आँखें उसके शरीर को चीरकर अलग करने लगीं। एक

नारी ने समझी प्रिय पति की विरत भावना। प्रणय के टूटते बन्धन। वह विचलित नहीं हुई।

× × ×

पति के साथ निर्वाह कठिन हो गया। अन्तर्बाह्य का द्वन्द्व, कोमल विशुद्ध प्रणय में व्यवधान, निस्सहाय पत्नी का जीवन दूभर हो गया।

पति बिछुड़ा। जीवन बिछुड़ा। पति छूटा। संसार छूटा। नारी की यह कोमल भावना कृशाश्व की समझ के बाहर थी। अपाला पितृगृह जाने के लिए उद्यत हुई। आशा से पति की ओर देखा। वे झूठे ही रोकेंगे। किन्तु पति ने मुँह फेर लिया। निराश्रय, परित्यक्ता नारी कहाँ जाए। वह प्रत्यावर्तित हुई—पितृगृह।

परित्यक्ता नारी को पितृगृह के अतिरिक्त शरण कहाँ ? अपनी काया ने ही शरण नहीं दी। ओर-छोर-हीन ब्रह्माण्ड में अकेली थी। माँ ने जन्म दिया था। पिता ने ज्ञानी बनाया, दूसरा जन्म दिया। माता-पिता के प्रणय का फल थी। वृक्ष फल तोड़ता नहीं। वृक्ष फल खाता नहीं। वृक्ष फल बढ़ाता है। मन अपने जैसा वृक्ष उत्पन्न होने की आकाँक्षा करता है। अतएव पितृगृह को अपना एकमात्र आश्रय स्थान जानती थी। परित्यक्ता अबला चली—अपने मायके। कामिनी के कमनीय रूप की कामना से कलुषित पति की छाया से दूर।

× × ×

पिता की आँखों ने देखा अपना फल। देखे कन्या की आँखों में आँसू। महर्षि अत्रि का समस्त वेद-वेदान्त एक तरफ रखा रह गया। करुणा रोई। अपाला गिर पड़ी पिता की पदरेणु में।

पिता की करुण-सरिता बह चली। वात्सल्य के मृदुल भावों से उठे बाहुओं में अपाला छिप गई। तरल उज्ज्वल अश्रुजलपूर्ण पिता-पुत्री के कपोल एक-दूसरे से मिले। किन्तु आँखें नहीं मिल सकीं।

दोनों अनन्त काल के बिछुड़े प्राणी की तरह मिले। ऋषि ने अपने पुण्य का आह्वान किया। अपने पुरुषार्थ का आह्वान किया। अपने कर्म का आह्वान किया। वर-वधू को आशीर्वाद देने वाले उठे हाथ, पुन: उठे कन्या को आश्रय देने के लिए। समस्त ब्रह्माण्ड को चुनौती देते हुए।

उसने कन्या के मस्तक पर पवित्र करकमल रखा। उस हाथ को रखा, जिससे अगणित लोगों को आशीर्वाद दिया था। आज वही हाथ अपनी कन्या

को सान्त्वना देने में असमर्थ हो रहा था।

मानवी दुर्बलता का आवरण हटा। ऋषि के उमड़ते नेत्रों से अश्रु-कण अपाला के मूर्धा पर गिरने लगे। वेदना-भार से दबी कन्या गिर पड़ी। जीवन तरणी के एकमात्र संबल पिता के पवित्र चरणों में। पिता पुत्री की मानसिक वेदना को सहन न कर सके पादपों से गिर पड़े, पल्लव। झुक गयीं पुष्प-मंजरियाँ और आश्रम हो गया नीरव।

"अपाले!" पिता अत्रि ने स्नेह से पुकारा।

अपाला विश्वास के साथ पिता के पास आई। शैशवावस्था से चिरपरिचित भूमि उसे देख कर हहा उठी। फूल-पत्तियाँ उसे भूल न सकी थीं।

उसका दीन मन आज आश्रम के कण-कण से दया की याचना करता था। उसे अनायास मिली मिलन की प्रसन्नता। हरिणियाँ मिलीं उससे सर्वदा की तरह।

वह आश्रम की प्रत्येक वस्तु को कभी-कभी शंका की दृष्टि से देखती। कहीं किसी ओर से उसे उपेक्षा न मिल जाय। कभी वह भावावेश में वृद्ध पिता की गोद में बच्ची की तरह मुख रख कर हिचकियाँ लेने लगती। पिता उसके सिर पर हाथ फेरते न जाने क्या सोचने लगते। उनका हृदय इतना करुण हो जाता कि वे कुछ बोल न सकते। केवल अपाला के पीठ-प्रदेश पर उसे छोटी बच्ची समझ हाथ फेरने लगते जैसे उसे सुला रहे हों।

अपाला का हृदय अपने पिता के इस वात्सल्य का अनुभव कर जैसे सहारा पा जाता। उसका हृदय पितृस्पर्श से गर्वित होता। स्मरण कर। किस प्रकार उसके पति ने उसका परित्याग किया था। किस प्रकार स्नेह-सूत्र, सप्तपदी के प्रतिज्ञा-सूत्र को पति ने छिन्न-भिन्न कर दिया। पति ने वरमाला को पाँवों तले मसल दिया था। वह अनुभव करने लगी। वह अपने घर में थी। वह किसी की आश्रिता नहीं थी।

× × ×

दिन बीते। दुःख-भार हल्का होने लगा। अपाला आश्रम के जीवन में मिल कर एक हो गयी। उसका वैवाहिक जीवन उसके जीवन का जैसे एक अध्याय मात्र था। वह खुला और बन्द हुआ। वह लौट आई—अपने पूर्व रूप में।

अत्रि ने कन्या के आश्वस्त होने पर, सस्नेह किन्तु गंभीर स्वर में कहा: "अपाला! दुनिया तुझे चाहे त्याग दे, लेकिन तेरा यह पिता तेरा त्याग कैसे कर सकता है। तू मेरे लिए वही नन्ही अपाला है, और रहेगी।"

अपाला सट कर बैठ गई । अत्रि उसके स्कन्ध प्रदेश पर वात्सल्य भाव से हाथ रखते हुए बोले : "ऊँह यहीं रह ।"

अपाला पिता की बात समझ रही थी । वह बोली नहीं । ऋषि ने पुनः कहा : "क्या रूप दोष के कारण ज्ञान में अन्तर पड़ता है ! क्या आत्मा में अन्तर पड़ता है ?"

अपाला पिता की ओर देखने लगी । ऋषि की दृष्टि यज्ञवेदी से उठते धूम की ओर स्थित होने लगी वह बोले :

"पुत्री ! तू नित्य का चिन्तन कर । नित्य के चिन्तन से अनित्य नष्ट होगा ।"

अपाला चुपचाप सुनती रही । अत्रि ने मुसकराते हुए कहा, "तू तपस्या कर ।"

अपाला कुछ बोली नहीं ? मरुस्थल के चिर-श्रान्त पथिक को आश्रम की छाया में शान्ति मिल रही थी ।

महर्षि अत्रि ने फिर रुक कर कहा, "तुझे तपस्या करनी होगी ।"

अपाला की प्रश्नपूर्ण दृष्टि गंभीर पिता के स्थिर नेत्रों में स्थिर होने लगी ।

"अपाले ! त्वचा-दोष के कारण तुम्हारे पति ने तुम्हारा परित्याग किया है । शरीर गुण के अभाव के कारण त्याग किया है । वह गुण अनित्य है । घोर तम निशा में—त्वचा की सुन्दरता-असुन्दरता दृष्टिगत नहीं होती । अपने जीवन के घोर निशाकाल में पति ने तेरा परित्याग किया है ।" अत्रि ने स्थिर स्वर में कहा ।

"पिता मैं तपस्या करूँगी ।" अपाला ने भूमि की ओर देखते हुए कहा ।

"हाँ ! अपाले ! नियमित आहार, नियमित शयन, नियमित अध्ययन, नियमित उपासना, नियमित पठन के सुखद आश्रय में तेरा उपकार होगा और उससे तेरा होगा उद्धार ।"

ब्रह्मवादिनी दिव्य नारी अपाला ने मन-ही-मन दृढ़ निश्चय किया । पिता के पवित्र चरणों की पूजा की । वह प्रसन्न थी । उसमें विषाद नहीं था । उसमें नवचेतना आ गई थी । उसकी प्रसन्नता देखकर पिता भी प्रसन्न हो गए । आश्रम प्रसन्न हो गया । पक्षी कलरव कर उठे । उदास बैठी हिरणी छलाँग मारने लगी । प्रखर होती सूर्य-रश्मियों में कमलदल खिल उठा ।

× × ×

वेदवादिनी विपुल गुणवती अपाला इन्द्र की उपासना में रत हुई । योग में लगी । सूर्य को अर्घ्य देने लगी । उसका मानस पवित्र था । पति के प्रति दुर्भा-

वना नहीं थी। परित्यक्त होने का दुःखाभास तिरोहित हो चुका था। वह मानवीय दुर्बलताओं की सीमा पार कर चली थी।

अपाला स्नान-निमित्त चली। जल-कुम्भ उसके कटि प्रदेश पर था। वह चली, विजन वन से।

"अहा—सोम!" अपाला चकित हुई। प्रफुल्लित हुई। विचार किया। सोम पान द्वारा इन्द्र प्रसन्न होंगे। उसने सोम से कहा :

"सोम! मैं तुम्हें सामर्थ्यवान इन्द्र के लिए निष्पन्न करती हूँ।"

उसने जल कुम्भ रख दिया। सोम-लता लेकर इन्द्र का आह्वान किया : "इन्द्र! आपका प्रत्येक गृह में प्रवेश है। आप परम तेजस्वी हैं। सुवीर हैं। आप उक्थों से युक्त अभिषुत सोम का सेवन कीजिए। इन्द्र! आपको पाना चाहती हूँ। इस समय आपको प्राप्त नहीं कर पा रही हूँ।"

अपाला के आह्वान पर इन्द्र प्रकट हुए। अपाला ने उनकी पूजा की। अपाला के साथ इन्द्र का आश्रम में आगमन हुआ। वहाँ अपाला ने श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक इन्द्र को खाने के लिये सत्तू दिया। इन्द्र प्रसन्न हो गये।

सोम चुवाने के लिए पत्थर का अभाव था। अपाला कुछ चिन्तित हुई। उसे सोम रस निकालने का एक उपाय सूझा।

उसने अपने मुख में सोमलता रख ली। अपने दाँतों के घर्षण से सोमरस निकाला। इन्द्र उसकी श्रद्धा-भक्ति पर पुलकित हो गये। मुख में द्रवित सोम को उसने इन्द्र को अर्पण किया। सोम पान कर इन्द्र प्रफुल्लित हो गये।

अपाला ने इन्द्र की प्रार्थना की :

"हे इन्द्र! पूजा निमित्त मधुर वाणी से मुझे अलंकृत कीजिए। सम्पत्ति सम्पन्न बनाइए। मैं पति द्वारा परित्यक्ता होने पर यहाँ आपकी शरण में हूँ। हे इन्द्र! मुझे आप सुलोम बनाइए। मेरे अंगों को दोषरहित, श्रेष्ठ त्वचा वाला बनाइए।"

अपाला की स्तुति सुन कर इन्द्र प्रसन्न हुए। शतकर्मा इन्द्र ने रथ के छिद्र से तथा शकट युग के छेद से अपाला का शरीर तीन बार निकाला। अपाला की त्वचा के तीन आवरण छिलकर निकल गये। अपाला की त्वचा का दोष समाप्त हो गया। अपाला अपनी तपस्या के कारण सुत्वचा हुई। सूर्य के समान कान्ति-वाली हो गई।

अपाला की प्रथम अपहृत त्वचा शल्यक बनी। दूसरी अपहृत त्वचा गांधा बनी और तीसरी अपहृत त्वचा कृकल बनी।

अपाला अपनी तपस्या से त्वग् दोष से दूर हुई। उसने इन्द्र को प्रणाम किया, उनका स्तवन किया।

ऋषि अत्रि अपनी कन्या का त्वग दोष समाप्त हुआ देख कर प्रसन्न हो गये। अपाला अपनी तपस्या के फल को देख कर आनन्दित हो गई, और उसके साथ आनन्दित हो गया आश्रम।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद, ऋषि, अपाला—देवता, इन्द्र, मण्डल ८, सूक्त ९१।

बृहद्देवता : ६ : ९९-१०८

नोट : मनुष्य बाह्य सौन्दर्य, बाह्य रूपों पर आँतरिक गुणों की उपेक्षा कर आकर्षित हो जाता है। इस कहानी का यही मार्मिक कथानक है। ऋषि तथा विवेकी जन भी इसके अपवाद नहीं होते। अपाला का त्वग् दोष जिस प्रक्रिया तथा उपचार से दूर हुआ था, उस पर विशेष अध्ययन तथा अनुसन्धान की आवश्यकता है। वैदिक काल के ऋषि भी आजकल के साधारण प्राणी की तरह अपनी कन्या के विवाह तथा उसके सुख के लिये चिन्तित रहते थे। इस कथानक ने वैदिक रचनाकार की उस भावना को प्रदर्शित किया है, जिसमें मानव को साधारण प्रकृतस्थ रूप से सर्वथा चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

सोम का पलायन

वृत्र निर्दयी था, क्रूर था, आततायी था। उससे सब भयभीत रहते थे। वह देवताओं के त्रास का कारण था। वृत्र का हनन करने के कारण इन्द्र का नाम वृत्रहन पड़ा था। वृत्र के विनाश निमित्त वज्र बनाया गया था।

सोम इसके अपवाद नहीं थे। वृत्र से त्रस्त होकर सोम देवताओं के पास से चले गये। अंशुमति नदी में सोम ने अपना निवास बनाया। अंशुमति नदी कुरुप्रदेश में बहती थी।

× × ×

सोम इन्द्र को प्रिय है। उनके चले जाने पर इन्द्र को दुःख हुआ। वे सोम को खोजने लगे। बृहस्पति के साथ सोम थे, इसका पता इन्द्र को लगने पर वे अंशुमति के तट पर आये।

इन्द्र उस समय पूर्ण आयुधों से सुसज्जित युद्ध के लिए सन्नद्ध थे। वे मरुतों के सहित युद्ध निमित्त उद्यत थे। उनका रूप एक आदर्श योद्धा की तरह झलक रहा था।

सोम ने इन्द्र को आते देखा। उसने इन्द्र को पहचाना नहीं : उसने समझा। वृत्र अपनी सेना सहित उस पर आक्रमण करने के लिए आ रहा है। उसे अपनी हत्या का भय हुआ। वृत्र उसका क्रूरतापूर्वक वध कर देगा। वह व्याकुल हुआ।

किसी ओर से सहायता की आशा दिखायी नहीं दी। उसके पास जो कुछ सेना थी उसे आक्रमण का सामना करने के लिए व्यवस्थित करने लगा। धनुषादि आयुधों से वह स्वयं सुसज्जि होकर खड़ा हो गया।

बृहस्पति ने सोम को युद्ध-निमित्त सन्नद्ध देखा। वे सोम के पास आये। सोम ने बृहस्पति को सादर प्रणाम किया।

बृहस्पति ने इन्द्र की ओर लक्ष्य करते हुए कहा :

"सोम ! मेरे साथी योद्धा मरुतपति हैं।"

"महात्मन् !" भविष्य के अनर्थ से शंकित सोम का बृहस्पति पर विश्वास नहीं हुआ। अविश्वास उसकी आँखों में झलक रहा था। वह योद्धा को वास्तविक इन्द्र स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं था। वह दानवों, असुरों तथा दैत्यों के छल की गाथाएँ जानता था। सुन चुका था। वह शंकित सायुध खड़ा रहा।

बृहस्पति उसके मन की भावना समझ गये। उन्होंने स्थिर स्वर में कहा :

"सोम ! आप देवताओं के पास लौट चलिये।"

सोम का मन और शंकित हो गया। उसने दृढ़तापूर्वक आयुधों को पकड़ लिया। बृहस्पति पुनः विनम्र स्वर में बोले :

"सोम ! आप पहचानते नहीं ? यह इन्द्र हैं।"

सोम के मन ने स्वीकार नहीं किया। उसने इसे छल की एक प्रक्रिया समझा। उसकी अनभिज्ञता पर दुःखी होते हुए बृहस्पति ने पुनः कहा :

"सोम ! मैं सत्य कह रहा हूँ।"

सोम के मन ने समझा। यह सब अनर्थ की भूमिका है। उसने अपने धनुष को और दृढ़तापूर्वक मुट्ठी से दबाते हुए कहा :

"नहीं। मैं नहीं जाऊँगा।"

इन्द्र को आश्चर्य हुआ। बृहस्पति सोम का हठ देख कर दुःखी हो गये। सोम की मूढ़ता देख कर इन्द्र का क्रोध बढ़ने लगा।

इन्द्र ने झपट कर सोम को पकड़ लिया। सोम ने मुक्त होने का प्रयास किया। बली इन्द्र के सम्मुख सोम का कुछ बल नहीं चल सका। सोम चिल्लाने लगा। सोम को इन्द्र बलात् साथ लेकर चलते हुए बोले :

"चलो ! देवताओं के पास स्वर्ग में।"

"कहाँ !"

भयाकुल सोम ने ठिठकते हुए पूछा, देवताओं के समीप स्वर्ग में।

× × ×

देवताओं ने सोम का पान किया। इन्द्र ने पान किया। सोमपान से उनमें उत्साह की लहर उठी। मन उमंगित हो गया। दैत्य संहार निमित्त इन्द्र और सब देवता सन्नद्ध हो गये।

सोम की पुनर्प्राप्ति पर देवता प्रसन्न हो गये थे। सोमपान ने उनमें नवीन स्फूर्ति, उत्साह तथा प्रेरणा उत्पन्न कर दी थी। उनका आलस्य दूर हो गया था। वे चैतन्य हो गये थे। दैत्यों, दानवों, असुरों का भय तिरोहित हो गया था। उनकी भीरुता समाप्त हो गयी थी। वे युद्ध निमित्त तैयार हो गये थे।

सोमपान कर उन लोगों ने नौ बार नव्वे दैत्यों का वध किया। असुर-भय जाता रहा।

× × ×

कृष्णासुर दस सहस्र योद्धाओं के साथ अंशुमती नदी के तट पर शिविर लगाये था। इन्द्र ने उसका अपने बुद्धि-बल से पता लगा लिया। इन्द्र के नेतृत्व में देव सेना, दैत्य सेना का संहार करने के लिए वेग से चली।

इन्द्र ने देखा। कृष्णासुर अंशुमती नदी के खारों में छिपता, प्रकट होता, सेना सहित विचरण कर रहा था। इन्द्र ने अपने साथी मरुतों को आदेश दिया :

"मरुद्गण ! द्रुतगामी तेजस्वी दैत्यराज अपनी सेना सहित अंशुमती के खारों में है।"

"वज्रिन ! आज्ञा।" मरुद्गण ने उत्साहित वाणी में कहा।

"युद्ध में उसका संहार करो।"

मरुद्गण जय नाद कर उठे। उनके युद्धनाद से पृथ्वी कंपित हो गयी। तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया।

बृहस्पति की सहायता से इन्द्र ने कृष्णासुर सहित दैत्य सेना का संहार किया।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : ८ : ९४, ८ : ९५-१००, ८ : ९६ : १३ : १५,
८ : १०० : १-३, ८ : १०० : ८.
ऐतरेय ब्राह्मण : ६ : ३६ : १२
बृहद्देवता : ६ : ११५-११

नोट : सोम पान के गुण तथा शरीर पर उसके प्रभाव का वर्णन किया गया है। सोम क्या था, उसका अब क्या नाम है, कहाँ पैदा होता था। सब बातें अंधकार के गर्भ में हैं। सोम का पता लगाना महत्वपूर्ण कार्य होगा। अनुसन्धान विज्ञ जनों का आह्वान करता है। वे रस लुप्त शक्तिशाली रस का पता लगा कर जगत का कल्याण करें। इस कथा से इतना निश्चित मालूम होता है कि सोम का सेवन किंवा पान केवल सुर करते थे। असुरों का वह पेय पदार्थ नहीं था। सुर-असुरों के पेय पदार्थों में मौलिक भेद मालूम होता है।

अंशुमती—एक नदी का नाम है। वास्तव में इसका आधुनिक नाम क्या है, अत्यन्त विवाद का प्रश्न है।

कुरुप्रदेश—कुरुओं द्वारा निवासित स्थान। कुरु-पंचाल शब्द का प्रायः एक साथ प्रयोग ऋग्वेद में किया गया है।

मण्डल : ६

इन्द्र और ऋषिगण

एक समय की बात है। घोर अनावृष्टि हुई। तृषित भूमि की त्वचा सूखकर फट गयी। प्यासी धरती पानी चाहती थी। सरोवर भयंकर रूप से सूख गये थे। क्षुधा ग्रसित किसी दरिद्र के उदर की तरह वे लगते थे। कूपों का जल सूख गया था। उनके तल में घास उग आयी थी। यदि कहीं जल दृश्यगत था, तो वह मृग मरीचका में था।

तथापि ऋषिगण जीवित थे। वे अनावृष्टि से मर नहीं सके। इन्द्र को आश्चर्य हुआ। उन्होंने कल्पना नहीं की थी। इस काल में जलाश्रित कोई प्राणी, बिना जल के भी रह सकता है।

"ऋषिगण।" इन्द्र ऋषियों के पास पहुँच कर बोले : "कुशल से हैं ?"

"शक्र ! आपकी कृपा।" ऋषियों ने शक्र का आदर करते हुए प्रत्युत्तर दिया।

ऋषियों को अविचलित, विषादरहित तथा शान्त देख कर इन्द्र चकित हुए। वे बोले :

"इस अनावृष्टि काल में भी आप कैसे जीवित हैं ऋषिगण ?"

"शक्र ! जीवन केवल कृषि-उपयोगी जल पर आश्रित नहीं है। कर्म का सम्वन्ध केवल कृषि से नहीं है। दूसरे भी साधन हैं। वे मनुष्य को जीवित रख सकते हैं।"

"ऋषिगण ! वे कौन से साधन हैं ?"

"इन्द्र ! प्राणी शकट बनाता है, उसका व्यवसाय करता है। वह उसके जीवकोपार्जन का साधन है।"

"और।"

"शाक भी जीवकोपार्जन का साधन है। वह एक साधन है। केवल मात्र एक साधन नहीं है।"

"और ?"

"पशु पालन साधन है। पशु पाल कर मनुष्य जीवकोपार्जन करता है। पशु भोजन देता है। दूध देता है।"

"और—?"

"कृषि भी साधन है। कृषि अनेक प्रकार से की जाती है। जलाभाव, अनावृष्टि से भी उसका पूर्णतया लोप नहीं होता। परिस्थितियों के अनुसार प्रकृति स्वत: साधन उपस्थित कर देती है। मरुस्थल में भी खाद्य का पूर्णतया अभाव नहीं होता।"

"और—?"

"अप्रवाहित जल हमारे जीवन के साधन होते हैं।"

"जैसे—?"

"पर्वतों पर गिरता तुषारमय जल। स्थल तल के नीचे का प्रवाहित जल और दूर्वादलों को जीवनदान देने वाले अम्बुकण।"

"और—?"

"वन हमारे जीवन का साधन है। वन से हम समिधा प्राप्त करते हैं, वनस्पतियाँ मिलती हैं और औषधियाँ मिलती हैं। फल मिलते हैं। मधु मिलता है।"

"और—?"

"समुद्र हमारे जीवन का साधन है। वह हमें जल देता है। वह हमें भोजन देता है। वह रत्नाकर है। हमें रत्न देता है।"

"और—?"

"पर्वत हमारे जीवन का विविध प्रकारों से साधन है। वह हमें नाना प्रकार की वस्तुएँ देता है। सरिताओं को जन्म देता है। स्रोतस्विनियों को जन्म देता है। वह भूधर मेघमाला को धारण करता है। उनसे जल प्राप्त करता है। निवास निमित्त हमें गुहा देता है। भोजन निमित्त फल-फूल देता है। पशु-धन के लिए चारा देता है।"

"और—"

"राजा हमारे जीवन का साधन है। अन्नाभाव में, जलाभाव में, राजा अन्न का प्रबन्ध करता है, जल का प्रबन्ध करता है। राजा के पुण्य से, राजा के प्रभाव से, राजा के कर्म से प्रजा का रंजन होता है। राजा स्वयं मर कर प्रजा की रक्षा करता है।"

इन्द्र ऋषियों की बात सुन कर गम्भीर हो गये। वहाँ अंगिरस के पुत्र सूक्त-

द्रष्टा शिशु उपस्थित थे। जिन्होंने ऋषियों की उपस्थिति में इन्द्र को अपने सूक्त द्वारा बताया :

'नाना प्रकार के हमारे कर्म हैं। बढ़ई काष्ठ के कर्म की कामना करता है। ब्राह्मण सोम के अभिषवरण करने वाले यजमान की कामना करता है। मैं भी उसी प्रकार सोम की कामना करता हूं। सोम इन्द्र का सिंचन करो। प्राचीन काष्ठों, पक्षियों के पंख तथा उज्ज्वल शिलाओं द्वारा वाण बनाया जाता है। वाणों के विक्रय निमित्त जैसे शिल्पी क्रयकर्त्ता को ढूँढ़ता है, उसी प्रकार मैं सोम की वृष्टि को ढूँढ़ता हूं। सोम! इन्द्र का सिंचन करो। मैं स्वयं स्तोता हूं। पुत्र वैद्य है। कन्या पीसने का कार्य करती है। लोग भिन्न-भिन्न कर्म करते हैं। गौ जिस प्रकार गोष्ठ में विचरण करती रहती है, उसी प्रकार धन की कामना करते हैं। सोम! आपकी परिचर्या करते हैं। सोम! इन्द्र का सिंचन करो। जिस प्रकार सरलतापूर्वक, कल्याणकारी सुन्दर चलने वाले रथ की कामना अश्व करता है। जिस प्रकार मन्त्रिगण व्यंग्यात्मक बात की इच्छा करते हैं, उसी प्रकार मैं सोम की कामना करता हूँ। सोम इन्द्र को सिंचित करो।"

"तथापि अनावृष्टि से कष्ट होता है।" ऋषियों ने शिशु की स्तुति के पश्चात् भी कहा।

"ऋषिगण!" इन्द्र ने उत्तर दिया, "आप लोग महान् तप कीजिए। उस तप से आप लोगों का कष्ट निवारण होगा।"

इन्द्र ने ऋषियों की पूजा ग्रहण की।

× × ×

स्वर्ग की कामना करने वाले ऋषि तपरत हो गये। उन्होंने उग्र तप किया। तप के फलस्वरूप ऋषियों ने पवमान सम्बन्धित ऋचाओं का गान किया।

"वे व्यक्ति, जो ईर्ष्यालु नहीं हैं, वे व्यक्ति, जो अध्यवसायी हैं, वे व्यक्ति जो सेवी हैं, वे व्यक्ति जो तपनिष्ठ हैं, वे व्यक्ति केवल अपने तप से स्वयं अपने को पवित्र नहीं करते, बल्कि दस पीढ़ी के पूर्वजों और आने वालों को पवित्र कर देते हैं।"

"वे मन, वाक्, देह और भोजन से जो कुछ भी करते हैं, उन सबसे वे पवित्र होते हैं, स्वाध्याय का फल प्राप्त करते हैं।

"और पवमानी गायत्रिया, उज्ज्वल, सनातन ज्योतिस्वरूप, परम ब्रह्म हैं। जो व्यक्ति अपने अन्तिम काल में प्राणायाम करते हुए इनका ध्यान करता है,

उनके पितरों के पास दूध, घृत, मधु तथा जल की धारा बहती है। सोम! जहाँ सप्त छन्दों में निर्मित स्तोत्र कहे जाते हैं, जहाँ तुम्हारा अभिषव पाषाणों से किया जाता है, जहाँ सोमादिव्य से प्रसन्न देवताओं की पूजा स्तोता करता है, वहाँ तुम श्रेष्ठ रस की वर्षा करो। सोम! आप इन्द्र के लिए क्षरित होते हैं। हमें अखण्ड, प्रकाशयुक्त, अविनाशी स्वर्गलोक को प्राप्त कराइए।"

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : ८ : ९४, ८ : ९५-१००, ८ : ९६ : १३-१५

वृहद्देवता : ६ : १०९-११५

नोट : कर्म की प्रशंसा की गयी है। कर्म करने से कोई ऊँच-नीच नहीं होता। केवल कृषि कर्म ही एकमात्र जीवन का साधन नहीं होना चाहिए। अन्य कर्मों पर भी आश्रित रहकर जीवन यापन सरलतापूर्वक किया जा सकता है। वैदिक काल में कृषि तथा पशु-पालन जीवन यापन का साधन था। इस कथानक द्वारा लोगों का ध्यान अन्य कर्मों की ओर आकर्षित किया गया है। लोगों का आह्वान किया गया है कि एकमात्र कृषि पर अवलम्बित न होकर अन्य कर्मों द्वारा अपना जीवन यापन करें।

अन्तिम काल में प्राणायाम करते हुए शरीर त्यागना चाहिए। इस यौगिक क्रिया की ओर ध्यान आकर्षित कराया गया है। जन्म, जीवन और मृत्यु प्रकृति के क्रमबद्ध नियमों के समान हैं। वे अबाध गति से आते रहते हैं, जाते रहते हैं। मृत्यु से भय नहीं, उसे भी जीवन का एक अंग मान कर उसका स्वागत करना चाहिए। किसी यौगिक क्रिया की ओर संकेत किया गया है, जिसका सम्बन्ध प्राणायाम से था।

मण्डल : १०

त्रिशिरस्

त्वांष्ट्र त्रिशिरस् त्वष्ट्र का पुत्र था। अतएव इसे त्वांष्ट्र कहा गया है। असुरों की बहन से इसने जन्म ग्रहण किया था। देवताओं का पुरोहित था। परन्तु असुरों के साथ सम्बन्ध था, अतएव इसका झुकाव सुरों की अपेक्षा असुरों की ओर अधिक था।

इसके तीन सिर थे। अतएव इसका नाम त्रिशिरा पड़ा था। एक मुख अन्नाद था, उससे यह अन्न खाता था। दूसरा मुख सोमपीथ था, उससे सोम पान करता था। तीसरा मुख सुरापीथ था, उससे वह सुरा पान करता था।

त्रिशिरस् असुरों की शुभकामना किया करता था। यज्ञ का हवि भाग असुरों को दे देता था।

इन्द्र को असुरों के षड्यंत्र का पता चल गया। इन्द्र ने समझा। त्रिशिरा को देवों के मध्य असुरों ने अपने लाभार्थ रख छोड़ा था। असुर उसके द्वारा सुरों से प्रबल होने की कल्पना करते थे। इन्द्र ने उसके वध की परिकल्पना की।

× × ×

त्रिशिरस् युवा था। स्वयं सूक्त द्रष्टा था, ऋषि था।

त्रिशिरा के पवित्र मस्तकों को इन्द्र ने वज्र द्वारा काट कर गिरा दिया। देव पुरोहित की हत्या हुई। त्रिशिरस् ब्राह्मण था। ब्रह्महत्या के दोष से इन्द्र मुक्त नहीं हो सकते थे।

ब्रह्महत्या होते ही ब्राह्मी वाक् ने इन्द्र को सम्बोधित किया :

"इन्द्र ! तुमने हत्या की है। ब्रह्महत्या की है। तुमने विश्व रूप का वध किया है। वह परांगमुख होकर भी शरणागत था।"

ब्रह्महत्या के दोष से इन्द्र मलीन हो गये। ब्रह्महत्या उनके पीछे लग गयी। वे अपने पाप का प्रायश्चित्त नहीं कर सके। असुर होने पर भी त्रिशिरस् ब्राह्मण

था। अतएव इन्द्र की ब्रह्महत्या दोष से रक्षा करने का किसी को साहस नहीं हुआ।

जिस मुख से त्रिशिरा ने सोमपान किया था वह मुख भूमि पर गिरते ही कपिंजल पक्षी बन गया। जिस मुख से सुरापान किया था, वह कलंविङ्क बन गया और जिससे उसने अन्न ग्रहण किया था, वह तित्तिर पक्षी बन गया।

× × ×

इन्द्र ने अपने पातक को तीन भागों में विभाजित किया। उन्हें आवास की समस्या उपस्थित हुई। वे जहाँ स्थापित किये गये उनमें दोष उत्पन्न हो गये। इन्द्र ने अपने पातक को पृथ्वी, वृक्ष तथा स्त्रियों में स्थापित किया। अतएव पृथ्वी में सड़ने का दोष उत्पन्न हो गया। वृक्षों में अनायास टूटने का दोष पैदा हो गया और स्त्रियों में रजस्वला होने का दोष प्रविष्ट हो गया। रजस्वला स्त्री संगम द्वारा उत्पन्न सन्तानें दोष युक्त होने लगीं। रजस्वला से संगम करना त्याज्य माना गया। संगम वर्जित किया गया।

× × ×

इन्द्र को अपना पातक दूर करना था। यह स्थिति बहुत दिनों तक चल नहीं सकती थी। अतएव ऋषि सिन्धुदीप ने इन्द्र के पाप-निवारण का विचार किया, उन्हें जल से अभिसिंचित किया :

"जल ! आप सुखमय हैं। मेधावी बनकर अन्न प्रदान कीजिए। माताएँ अपने शिशुओं को दूध पिलाती हैं। उसी प्रकार अपना रस प्रदान कर सुखी कीजिए। जल ! आप जिन पापों को तिरोहित करने के निमित्त हमारा पालन करते हैं, हम उन पापों को नष्ट करने की कामना से आपको अपने मूर्धा पर मार्जन करते हैं। जल ! आप हमारे वंश की वृद्धि कीजिए। दिव्य गुणीय जल पान योग्य हुए हैं। वे हमारे यज्ञ को कल्याणप्रद बनायें। जल ! अप्रकट रोगों को प्रकट मत होने दीजिए और प्रकट रोगों का शमन कीजिए। आकाश से शोभनीय गुणीय जल की वर्षा हो।

जल ! आप मानवों के आश्रयदाता हैं। काम्य पदार्थों के स्वामी हैं। हम याचना करते हैं। आप औषधियों को गुण युक्त करें। जल ! आप में अग्नि का आवास है। औषधियाँ आपकी आश्रित हैं। शरीर-रक्षक औषधियों की आप वृद्धि कीजिए, ताकि हम सुदीर्घ समय तक सूर्य का दर्शन प्राप्त करते रहें।

"जल ! हमारे द्वारा हिंसादि जो भी दुष्कर्म हुए हैं, मिथ्याभाषणादि

तुल्य जो पाप हुए हैं, उन पापों से हमारी रक्षा कीजिए। जल की शरण आज मैंने ग्रहण की है। अग्ने ! आप जल से पूर्ण होकर तेज प्रदान कीजिए।"

अभिषिक्त जल इन्द्र के मूर्धा पर पड़ा। ब्रह्महत्या इन्द्र का शरीर त्याग कर भाग चली। पातक मलिनता से इन्द्र शुद्ध हो गये। पातक शरीर के मैल की तरह, इन्द्र की काया से धुल कर गिर गया।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १० : १-७, १० : ६, १० : ८ ६, १० : १८ : १-८,
१० : १८ : ७-६

नोट : अन्न, सोम तथा सुरापान तीनों का सेवन त्रिशिरस् करता था। आलंकारिक भाषा में उन्हें तीन सिरों का, प्रत्येक से खाना तथा पीना कहा गया है। परन्तु यह कहानी सुर तथा असुरों के बीच विवाह प्रचलन तथा उसकी मान्यता को स्वीकार करता है। सुरों का पेय पदार्थ सोम था, असुरों का सुरा था और मनुष्यों का भोजन अन्न था। त्रिशिरस् की माता असुर कन्या थी। पिता सुर ऋषि था। अतएव उसमें सुर-असुर दोनों के गुण और अवगुण विद्यमान थे। सुर तथा असुर से उत्पन्न सन्तान हीन नहीं मानी जाती थी। समाज में उसका आदर होता था। त्रिशिरस् इस प्रकार की सन्तान होते हुए भी वह देवताओं का पुरोहित था। वह सूक्त द्रष्टा था। स्वयं ऋषि था। उसे ब्राह्मण माना गया था। उसके मारने पर इन्द्र को ब्रह्म-हत्या लगी थी। यह कहानी अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता देकर, उनसे उत्पन्न सन्तान को हीन न मानकर समाज में अन्य लोगों के समान उच्च स्थान देती है।

त्रिशिरस् : एक सूक्त द्रष्टा हुआ है।

सिन्धु द्वीप—सिन्धु शब्द ऋग् तथा अथर्व वेद में नदी के लिए आया है। सिन्धु नदी के समीपवर्ती प्रदेश से यह समझा जा सकता है कि सम्भवतः वह वर्तमान सिन्ध प्रदेश किंवा उसका समीपवर्ती भाग रहा होगा।

यम - यमी
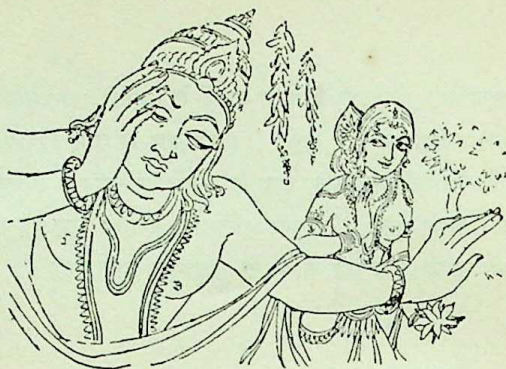
"यम !" काम विमोहित कमल तुल्य कोमलांगी यमी ने अपने रूप सम्पन्न युवा भ्राता यम को कुंज की आड़ से एकान्त स्थान में देखकर सम्बोधित किया।

यम संगीत से उठ कर आये थे। उन्होंने वीणा वादन किया था। सरस वीणा वादन के कारण उनका मन प्रफुल्लित था।

"बहन !" स्नेह उल्लसित निश्चल मन यम ने यमी को देखकर कहा।

"वैवस्वत !" यमी के नेत्रों में काम की कल्पना थी। वह मेघाम्बर वेष्टिता यमुना तुल्य लग रही थी। चंचल थी। यम की रूप माधुरी पीती सोमपायी इन्द्र की तरह उर्जस्वी हो गई थी। युवती जन्य लज्जा के साथ बोली :

"मैं विशाल और निर्जन समुद्र पार कर, साख्य भाव कामना के साथ यहाँ आयी हूँ।"

"बहन !" यम अपनी सगी बहन की चंचलता देख कर चकित हुआ। उसके वक्षस्थल पर लगे आर्द्र अंगराज सहसा सूखने लगे, "हमारा तुम्हारा सखा-सख्य का सम्बन्ध नहीं है। हम यमज हैं। माता के गर्भ में एक साथ रहे हैं। यद्यपि हमारी तुम्हारी योनि भिन्न है फिर भी तुम मेरे लिए अगन्तव्या हो। हमें यह अभीष्ट नहीं है।"

बहन की प्रगल्भता पर यम स्वयं लज्जित हो गया। उसकी दृष्टि बहन के कामोद्वेलित नेत्रों की तरफ नहीं उठ सकी। भूमि की ओर उसकी दृष्टि लगने लगी।

"यम !" काम-ज्वर से पीड़ित यमी अपने अंग-उपांगों को दोलायमान करती बोली, "अमर लोग इस प्रकार के सुखद सम्बन्ध द्वारा आनन्द भोग करते हैं। यद्यपि मर्त्य मानवों ने भाई-बहन मैथुन सम्बन्ध वर्जित कर रखा है। यम ! आओ !! अपना मन मिल जाने दो। मेरे इस शरीर का प्रसन्नतापूर्वक उपभोग करो।"

यम की निर्मल आँखों में बहन के प्रति करुणा झलक उठी। काम-ज्वर से भभकती यमी ने अपने अधवासा को मरुत के संग उड़ने दिया। उसका सूक्ष्म वस्त्र उसका शरीर छोड़कर भागने लगा। उसका यौवन महीन आवरण में नग्न हो उठा। उसके पीन पयोधर हिले। उसके कुछ केश वेणी से खुल कर मुख पर आने लगे। अधर डोले। नेत्रों में कटाक्ष मुसकराया। उड़ते वस्त्रों से यौवन ढकने के बहाने वह काम को और उत्तेजना देने लगी।

"बहन !" उन्मत्तकारी रति याचना से अस्पृश्य यम ने शुद्ध कण्ठ से कहा, "हमने वह नहीं किया है, जो पूर्वकाल में किया गया है। हम नृत भाषी हैं, कैसे अनृत ग्रहण कर सकेंगे। जलों में स्थित दिव्यांगना अप्पा पोषा तथा जल में स्थित गन्धर्व हमारे माता-पिता हैं। हमारा तुम्हारा-सम्बन्ध अति निकट का रक्त सम्बन्ध है।"

यम के पुष्ट स्वस्थ गठित युवक शरीर को मुग्ध काम-ज्वर से प्रज्वलित यमी की आँखों ने देखा। उसके विम्बाफल तुल्य अधर वक्रगति से डोले :

"त्वष्टा ने हमें गर्भ में ही विपरीत योनि का बनाया है। पति-पत्नी तुल्य एक साथ रखा है। बनाया है। हम चिरसाथी गर्भ से हैं। बोलो ! त्वष्टा की इस कल्पना को व्यर्थ करने में कौन समर्थ हो सकता है ? पृथ्वी और आकाश हमारे इस मिलन के साक्षी हैं।"

यम ने अपनी बहन की ओर शान्त दृष्टि से देखा। यम के वक्षस्थल पर झूलती प्रसन्न वन माला यमी के अशुभ प्रस्ताव को सुनकर मुरझाने लगी। किन्तु प्रतीत होता था, बहन की काम-ज्वाला को यम की निर्मल शीतल दृष्टि शीतल नहीं कर सकी। यम के मकराकृत कुण्डल डोले। किंचित आँख उठा कर बहन की ओर देखा।

"बहन !" यम ने शान्त स्वर में कहा, "कौन प्रथम दिन के अस्तित्व को जानता है ? उसे किसने देखा है ? उसे किसने यहाँ प्रकट किया है ? मित्रा वरुण का आवास विस्तृत है। वह नरकगामी बना कर दण्ड देते हैं ? बोलो तुम क्या कहती हो ?"

यम ने आँखें दूसरी ओर फेर लीं। उसे बहन के आचरण पर हार्दिक दुःख हुआ।

कुंज की लता वल्लरियों पर भ्रमर गूंज रहे थे। भ्रमरी आती। भ्रमर पराग लोभ छोड़ कर भ्रमरी की ओर दौड़ता। भ्रमरी भागती। भ्रमर पीछा कर उसे पकड़ लेता। दोनों मिलते। अल्लढ़पन से टक्कर खाते। पुनः गूंजते घूमते। फिर उल्लसित नील गगन में छिपने लगते। उनका काम-परिहास यमी

का काम-ज्वर सन्निपात में परिणत करने लगा। उन्नत कुच-भार वाली देवी बोली :

"यम ! तुम्हारे मिलन की सुखद कामना मुझे यहाँ तक खींच लाई है। हम एक ही शय्या पर शयन करें। मैं अपने शरीर को पति-स्वरूप तुम्हें अर्पण करती हूँ। रथ के दो पहियों के समान हमें काम मिलन में संलग्न होना चाहिए।"

यमी अपने जघन के वस्त्र को अपनी चुटकियों से ऊपर उठाती थी, पुनः छोड़ देती थी। उनको अस्त-व्यस्त करती, पुनः ठीक करती। काम-लोलुप आँखों से यम के यौवन को निरखती। पैरों के नुपुरों में बद्ध घुँघरू-शृंखला को मुखरित कर देती।

यम अपनी बहन के अशोभनीय प्रस्ताव से काँप उठा। धीरे से कहा :

"बहन ! देवताओं के गुप्त दूत सर्वदा उपस्थित रहते हैं। वे रात्रि-दिन पृथ्वी पर विचरण करते रहते हैं। उनके सर्वदर्शी नेत्र कभी बन्द नहीं होते। रात्रि अथवा दिन उनके कार्य में बाधा नहीं डाल सकते। ओ ! नश्वर प्राणी !! तुम शीघ्रतापूर्वक किसी दूसरे से प्रणय कर, रथ के दो पहियों की तरह उसके साथ काम में संलग्न हो।"

काम-वासना में ठेस लगी। ठेस से यमी की वासना और वेगवती हो उठी। उसके भ्रू कुंचित हुए। भ्रूकेश जैसे उठने लगे। ललाट में रेखाएँ खिच कर मिट गयीं। नासाग्र किंचित फूल कर सिमट गये। अधर कर्ण पथ की ओर चल कर फिर लौट आये।

"यम ! यजमान तुम्हारे यज्ञ भाग को सर्वदा देते रहें। सूर्य का तेज तुम्हें तेजस्वी करता रहे। दिवा और पृथ्वी रात्रि-दिन की तरह मिलते रहें और मैं तुमसे होम की तरह रक्त सम्बन्ध से मिल जाऊँ।"

यमी काम-व्यथा से लता की तरह चंचल होकर सिकुड़ गयी। यम के स्पर्श-सुख का लोभ, चंचल स्निग्ध कटाक्षों का आनन्द, यमी के मुख से बोलते समय श्वास के साथ निकलती सुगन्ध, सरस वाणी, कामोद्दीपन की मुद्रा, विचलित नहीं कर सकी। उसने शान्त स्वर में कहा :

"बहन ! वह युग आ गया है, जब बहन भाई का वरण नहीं करेगी। बहन उसका वरण करेगी जो उसका भाई नहीं होगा। अतएव मेरे स्थान पर तुम किसी दूसरे को अपना पति वरण कर लो और अपने हाथ का सुखद तकिया अपने पति को लगा दो।"

निमीलित नयना यमी खिन्न हो गयी। कुँज की खिलती कलियाँ जैसे उसके

हृदय को विदारने लगीं। झूलती लताएँ उसका परिहास करने लगीं। तालियाँ देकर उसे चिढ़ाने लगीं। कुंज के घोंसलों में छोटी-छोटी चिड़ियों के मुखरित कलरव से स्फुरित काम-ज्वाला जर्जरित यमी भाई को उपालम्भ देती बोली :

"यम ! वह क्या कोई भाई है, जिसके रहते बहन को पति न मिले, वह बहन कैसी, जिसके पास दुर्भाग्य दौड़ता आता है, मैं काम-वासना से अत्यन्त पीड़ित हूँ, मैं तुमसे सानुनय विनती करती हूँ। तुम अपना शरीर मेरे शरीर से मिला दो।"

यमी के कुचाग्र काम विलम्ब व्यग्रता से कम्पित होकर स्थिर हो गये। जघन हिल कर झुकने लगे। कटि की मेखला तपित होकर स्थिर हो गयी। बाँया हाथ नीचे झुल गया। दाहिने हाथ ने पीन पयोधर को दबा दिया। कटि पर शरीर झुक गया। मुख ग्रीवा पर नत हो गया।

"बहन !" यम ने घृणापूर्वक कहा, "मैं तुम्हारे स्पर्श से दूर रहना चाहता हूँ। उन्हें पापी कहा जाएगा, जो अपनी बहन से सम्बन्ध करेंगे। तुम किसी दूसरे के साथ अपनी काम-वासना की तृप्ति करो। मुझे इस काम-सुख की इच्छा नहीं है।"

चन्दन चर्चित शरीर के उज्ज्वल चन्दन यमी के काम-ज्वर को शीतल नहीं कर सके। वेणि में गुथे पुष्प अपनी शीतल सुगन्ध से उसके उच्छ्वासों को शीतल नहीं कर सके। हृदय-प्रदेश पर शोभित पलाश-माला ज्वर-ताप को शीतल नहीं कर सकी। कृश काया आतुरी यमी को अपने अंकों में लेकर गतिशील मलयानिल धैर्य नहीं दे सका। वह रोमांचित हुई। तीव्र आलिंगन-सुख की कल्पना में ठेस लगी। उसके मुख से स्फुट स्वर निकल पड़े। तीव्र वासना पीड़ित वह मूर्च्छित हो चली थी। कन्दर्प ज्वर पीड़ित यमी की भावना में ठेस लगी। काम-क्रोधित तुल्य बोली :

"आह ! यम !! तुम दुर्बल हो। मैं तुम्हारी बुद्धि और हृदय को नहीं समझ पा रही हूँ। कोई अन्य तन्वी अश्व के तंग अथवा वृक्ष की लता की तरह अपने आलिंगन में तुम्हें बाँधना चाहती है।

"बहन !" यम ने गम्भीर स्वर में कहा, "अन्य व्यक्ति तुम्हारे आलिंगन का पात्र है। वह अन्य व्यक्ति वृक्ष लता की तरह तुम्हारा आलिंगन करेगा। उसका प्रणय प्राप्त करोगी। वह तुम्हारा प्रणय प्राप्त करेगा और तुम्हारा वर मिलन आनन्दप्रद हो।"

यम ने बहन को आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद की पवित्र औषधि में, जैसे

यमी का काम ज्वर शान्त होने लगा। यम अग्नि है, पृथ्वी यमी है। यम अग्नि-यमी पृथ्वी के सुगन्धि नष्ट करने का साधन नहीं बन सका।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १० : १०, १० : १५४, ३ : ३६ : ३
अथर्व वेद : ३ : २८
शतपथ ब्राह्मण : ७ : २ : १ : १०
वृहद्देवता : १ : १२८, २ : ७७, २ : ८२, ६ : ५८

नोट : 'सुदूर पूर्व काल में आर्य लोग यमुना की तट से मिस्र की नील नदी और कैस्पियन अर्थात् कश्यप सागर तक फैले थे। वहाँ के निवासी आज भी आर्यों की सन्तान हैं, परन्तु देश तथा परिस्थितियों के अनुसार रीति-रिवाज तथा विचारों में अन्तर पड़ता गया। एक ही स्रोत से अनेक शाखाएँ, प्रशाखाएँ निकलीं। मिस्र के लोग आर्यों के समान सूर्योपासक थे। वहाँ सगे भाई-बहन का विवाह उत्तम समझा जाता था। मिस्र के राजा फरोह का विवाह अपनी बहन के साथ सनातन काल से होता रहा है। यमज भाई बहन का विवाह और उत्तम माना जाता था। यहाँ सगे भाई-बहन के विवाह की प्रथा को वर्जित किया गया है। मुसलमानों में दूध बराकर विवाह करने की प्रथा आज भी प्रचलित है। ऋग्वेद में इसी प्रकार के विवाह को अमान्य माना है। इस कहानी की यही कथावस्तु है।

यम—यम का अर्थ युगल किंवा जुड़वाँ शिशुओं का होता है। भिन्न लिंग के जुड़वां शिशु को 'यमौ मिथुनौ' कहा गया है। मृत्यु के देवता हैं। पिता सूर्य तथा माता सरण्यू थी। प्रथम मर्त्य प्राणी यम है।

यमी—यम की जुड़वाँ बहन है।

सरण्यू

त्वष्टा चतुर शिल्पी थे। वास्तु निर्माणकार थे। वास्तुकला के आचार्य थे। इन्द्र के लिए उन्होंने वज्र बनाया था। विश्व प्रसिद्ध त्रय शिल्पी ऋभु, विम्वान तथा वाज उनके शिष्य थे।

त्वष्टा मंजु हैं। सुपाणि हैं। तक्षण कलाकार हैं। लौह परशु धारण करते हैं। उनके रथ में दो अश्व योजित होते हैं। अत्यन्त भास्वर हैं। जटिल रचना के विशेषज्ञ हैं। ब्रह्मणास्पति के लौह-कुठार को तीक्ष्ण करते हैं। आयस पाश बनाते हैं। श्रेष्ठ पात्र बनाते हैं। देवताओं के निमित्त शोभन पात्रों का निर्माण किया था। चमस, सम्पत्तिपूर्ण कलश, सोम पात्र, उनके विलक्षण शिल्पकला के नमूने थे। उन्होंने नवीन चमस पात्र बनाया। परन्तु उनके शिष्य ऋभु ने चार चमस पात्रों की रचना कर दी। उनका चमस ही वर्ष है। रात्रि का आकाश उनके चमस पात्र तुल्य है।

त्वष्टा निर्माता हैं। सार्वभौम के पिता कहे जाते हैं। उन्होंने विविध प्राणियों को उत्पन्न किया है। सोम के अभिभावक हैं। दीर्घ जीवन दायक हैं। त्वष्टा के ब्रह्मणस्पति पुत्र हैं। वायु उनका जामातृ है। देव भी उनकी सन्तान है।

उनकी दो सन्तानें थीं। सरण्यू उनकी कन्या थी। त्रिशिरा पुत्र थे। सरण्यू युवती हुई। त्वष्टा ने कन्या के लिए वर खोजना आरम्भ किया। पिता की चिन्ता सुपात्र अन्वेषण निमित्त सावन की बेल की तरह बढ़ती गयी। विश्व पर्यन्त ढूंढ़ा। उन्हें विवस्वत जैसा उपयुक्त वर दूसरा दिखाई नहीं दिया।

त्वष्टा ने विवस्वत के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रक्खा। विवस्वत स्वयं आदित्य हैं। सूर्य हैं। वह रात-दिन प्रकट करते हैं। प्रकाश पुंज उनसे प्रकट होता है।

विवस्वत तथा सरण्यू में अलौकिक प्रेम था। सुखमय समय बीतता गया। दाम्पत्य जीवन आदर्श था। विवस्वत को सरण्यू के गर्भ से दो जुड़वां सन्तानों

अर्थात् यमज ने जन्म ग्रहण किया। उनका नाम यम और यमी था। यम ने अपनी बहन से पूर्व पृथ्वी का स्पर्श किया था। अतएव यमज होने पर भी ज्येष्ठ यम हुए। विश्व की वे प्रथम सन्तान थे। परलोक पहुँचने पर यम वहाँ के राजा हुए। वैवस्वत यम मृतकों को शरण देते हैं। पितृ लोक के पालक हैं।

तीन लोकों में यम त्रितीय अर्थात् सर्वश्रेष्ठ यम-लोक तथा सवितृ शेष दो लोकों के स्वामी हैं। यम अपने लोक में वीणा की संगीत स्वर लहरियों से घिरे रहते हैं। उन्हें वीणा वादन प्रिय है।

यम को घृत प्रिय है। अतएव उन्हें घृत अर्पण किया जाता है। यम ने मृत्यु को अंगीकार किया था। स्वत: अपने शरीर का त्याग किया था। यम का प्रशस्त पथ मृत्यु है। यम के दूत उलूक तथा कपोत पक्षी हैं। उनके दो श्वान हैं। एक का रंग शबल अर्थात् चितकबरा तथा श्याम है। श्वानों के चार नेत्र होते हैं। इनकी नासिका चौड़ी होती है।

दिवंगत होने पर परलोक में मृत व्यक्ति का आगमन होता है। वहाँ वह यम तथा वरुण का दर्शन करता है। यम के अश्वों के स्वर्ण नेत्र और लौह खुर हैं। वह पितरों के आवास का प्रबन्ध करते हैं। उन्हें विश्राम देते हैं।—और उनकी बहन यमी जलीय दिवांगना है।

प्रणय सूत्र समय की गति के साथ शिथिल पड़ने लगा। युवाकाल की उमंग में, प्रणय उत्साह में, सूर्य का तेज सरण्यू सहन कर गयी। उसे ज्ञान भी नहीं हुआ। सूर्य महा तेजस्वी थे। उनका तेज सहन करना साधारण बात नहीं थी।

युवावस्था के ढलने के साथ शरीर शिथिल होने लगा। सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् शरीर का शिथिल होना स्वाभाविक था। सरण्यू को सूर्य का प्रखर तेज उत्तरोत्तर असह्य होने लगा। सूर्य का वेग सहन करने में वह असमर्थ होने लगी।

× × ×

भगवान भुवन भास्कर विवस्वत एक दिन अनुपस्थित थे। उनकी अनुपस्थिति का सरण्यू ने लाभ उठाया।

सरण्यू ने अपने सदृश एक रूपवती छाया स्त्री की सृष्टि, विवस्वत के परोक्ष में की। उसे आदेश दिया। सूर्य के साथ पत्नीवत् तथा उसकी सन्तानों के साथ मातृवत् व्यवहार करे।

प्रतिमा सरण्यू की छाया मात्र थी। उसमें सरण्यू के रूप, रंग, आकार, वाणी आदि सब कुछ का समावेश था। उस छाया नारी को देखकर सन्देह नहीं हो सकता था, वह मूल सरण्यू नहीं है। सरण्यू ने उसे सवर्णा किंवा

स्थानापन्न स्त्री बनाया। उसे विवस्वत की पत्नी अपने स्थान पर बनाया।

सरण्यू की बातें सूर्य को मालूम नहीं हुईं। उसकी सन्तानों को भी पता नहीं चला। अनन्तर सरण्यू ने अश्वी का रूप धारण किया। वह भूमण्डल में विचरण करने लगी।

× × ×

सूर्य ने छाया को सरण्यू समझा। किंचित् मात्र सन्देह नहीं हुआ। सरण्यू उनका परित्याग कर चली गई हैं।

सूर्य ने छाया के साथ अनभिज्ञतावश, पत्नीवत व्यवहार किया। सूर्य को छाया से मनु पुत्र हुए। उनकी संज्ञा वैवस्वत मनु नाम से हुई। वही मानवों के आदि पुरुष हैं। अतएव मनुष्यों को विवस्वान आदित्य की सन्तान कहा जाने लगा।

मनु अपनी सन्तान मानवों का पोषण करने लगे। उनके साथ सख्य भाव स्थापित किया। मानव सम्मान, वृद्धि, धनादि निमित्त देवताओं की स्तुति करने लगे।

मनु ने अग्नि प्रज्वलित की। सप्त-होताओं के साथ देवताओं के हवन योग्य सामग्री एकत्रित की। मानव का कल्याण, उपकार आदि हेतु मनु ने विहित यज्ञ की सरल परम्परा स्थापित की। यज्ञ-प्रथा का आरम्भ मनु ने किया था। यदि यम अमर हैं, परलोकवासी हैं, तो उनके विमातृ भ्राता मनु मरणधर्मा प्राणी हैं। मरणधर्मियों के राजा हैं। पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले प्रथम राजा मनु हैं। मनु जगत के प्रथम राजर्षि हैं।

× × ×

"यम !" पिता विवस्वत ने यम से सस्नेह पूछा, "तुम उदास क्यों रहते हो ?"

यम ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसका मस्तक नत हो गया।

"पुत्र !" विवस्वत ने पुनः स्नेह से पूछा, "कुछ दिनों से तुम में मैं वह उत्साह नहीं देखता हूँ जो देखा करता था। क्या कोई दुःख है ?"

यम पिता के चरण की तरफ देखने लगे। विवस्वत ने पुनः पूछा, "तुम्हारी माता के प्रेम में कुछ अन्तर आ गया है क्या ?"

यम की आँखें भर आईं। पिता ने पुत्र के हृदय का भाव समझा। उन्होंने पूछा :

"माता के व्यवहार में अन्तर आ गया है यम ?"

"पितः ! माता का प्रेम मनु पर अधिक है।"

"आश्चर्य ! तुम तीनों ने एक माता के गर्भ से जन्म लिया है। पुनरपि यह भेद क्यों उत्पन्न हो गया मनु ?"

"मैं प्रयत्न करने पर भी उनको प्रसन्न नहीं कर पा रहा हूँ।"

"हूँ—। यमी कहाँ है ?"

"यहीं कहीं होगी।"

पिता गम्भीर हो गये। यम चुपचाप उद्यान में चला गया।

× × ×

"सुनो !" विवस्वत ने चुपचाप जाती यमी को सम्बोधित किया।

यमी पिता के पास आ गई। पिता ने उसके मूर्धा के बालों में उँगलियाँ डालते हुए मुसकरा कर पूछा :

"तू आजकल बोलती नहीं है ?"

यमी पिता का हाथ पकड़ कर झूमने लगी। विवस्वत ने पुनः पूछा :

"कहाँ जा रही थी ?"

"बाहर—।"

"क्यों ? माता नहीं है ?"

"हैं—!"

यमी ने उदास होते हुए कहा। विवस्वत ने माता के प्रति पुत्री के इस उदासीन व्यवहार को देखा। चकित हुए। उन्होंने प्रेम से पूछा :

"मनु कहाँ है ?"

"माता के साथ खेल रहा है।"

"तू वहाँ क्यों नहीं खेलती ?"

"हमें वे खिलाती नहीं। रुष्ट हो जाती हैं।"

विवस्वत और चकित हुए। माता का पुत्री पर पुत्र की अपेक्षा अधिक स्नेह होता है। स्नेह व्यवधान उपस्थित हो गया है। उन्हें जानने की जिज्ञासा हुई।

"माँ ने तुझे कुछ कहा है ?"

"कहती रहती हैं। झिड़कती हैं।"

"तूने कुछ उसका बिगाड़ा है ?"

"नहीं—पिता जी !"

यमी पिता के वात्सल्य से प्रसन्न होकर सहज ही बोली।

"अच्छा जा खेल।"

विवस्वत चिन्तित हो गये। वे कुछ सोचते हुए घूमने लगे।

× × ×

विवस्वत अपनी पत्नी की दिनचर्या पर सतर्क दृष्टि रखने लगे। उसके व्यवहार का अध्ययन आरम्भ किया। उन्हें प्रतिभासित होने लगा। वह पूर्व की सरण्यू नहीं रह गयी थी। उसके विचारों में, उसके व्यवहारों में अन्तर आ गया है।

यम तथा यमी के प्रति उस छाया सरण्यू में वह वात्सल्य नहीं था, जो मनु के साथ प्रकट करती थी। माता का अपनी सन्तानों के प्रति यह विचित्र भेद-भाव विवस्वत को शंकित करने लगा। पत्नी के व्यवहार तथा उसके आचरण के कारण उन्हें शंका होने लगी।

× × ×

एक दिन छाया सरण्यू यम तथा यमी पर अकारण रुष्ट हो रही थी। मनु के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार देख कर विवस्वत से नहीं रहा गया। उन्होंने पूछा :

"सरण्यू ! तुम अनायास यम और यमी पर रुष्ट क्यों हो रही हो ? तुम्हारा व्यवहार विमाता सदृश्य लगता है।"

छाया सरण्यू विमाता शब्द सुनकर शंकित हुई। विवस्वत उसके भेद को क्या जान गये ? वह भयभीत हुई। विवस्वत उसे कंपित देख कर उसके समीप आ गये। उसे ध्यानपूर्वक लक्ष्य करते हुए बोले :

"बोला—मनु और यम-यमी में तू क्यों पक्षपात करती है ? क्या तीनों तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न नहीं हुए हैं ?"

मनु दौड़ता आया। माँ से लिपट गया। छाया अपने पुत्र का जैसे सहारा पा गयी। समीप खड़े यम और यमी की ओर उसने स्नेह दृष्टि से नहीं देखा, जिस स्नेह दृष्टि से मनु को देख रही थी। विवस्वत सूर्य चकित हुए। उनकी दृष्टि पत्नी के मुखमण्डल पर संकुचित होकर पुनः फैली :

"क्या तीनों तेरी सन्तान नहीं हैं ?"

छाया सरण्यू नीरव थी।

"स्त्री !" विवस्वत छाया के अत्यन्त समीप पहुँच कर तीक्ष्ण स्वर में बोले:

"उत्तर क्यों नहीं देती ?"

छाया में प्रत्युत्तर का साहस नहीं रह गया था।

"सुनती हो ! मैं कुछ प्रश्न पूछ रहा हूँ ?"

छाया का शरीर कटि प्रदेश पर झुक गया।

"तुम ! सरण्यू—!"

आवेश में विवस्वत ने छाया का हाथ पकड़ लिया। छाया की आँखें भर आईं।

"सरण्यू !—तुम !!"

छाया रो उठी।

"बोलो !" विवस्वत ने उसे अपनी ओर खींचते हुए कहा, "तुम कौन हो ? तुम सरण्यू नहीं हो सकतीं !"

छाया कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ी। उसका हाथ विवस्वत के पुष्ट हाथों में खिच कर तन गया।

"नहीं ! तुम सरण्यू नहीं—। अबले ! बोल तू कौन है ?"

छाया रोने लगी। मनु रोने लगा। यम और यमी पिता से लिपट गये। उनके क्रोधित मुख की ओर भय-विह्वल दृष्टि से देखने लगे। विवस्वत ने छाया का हाथ छोड़ दिया। हाथ भूमि पर गिर पड़ा। वह दोनों हाथों से मुख छिपा-कर रोने लगी।

"पाखण्डिनी !" विवस्वत ने कठोर स्वर से पूछा, "अपना रहस्य खोल। अन्यथा मैं तुझे ताड़ित करूँगा।"

छाया ने भय से विवस्वत का पद पकड़ लिया। उसका कपोल अश्रुधारा से तरल हो गया था। भूमि पर पड़े हाथ से उसने मुख छिपा लिया। हाथों की धूल ने आँसुओं में मिलकर उसके मुख को मलिन कर दिया। उसके मुख पर धूप और छाँह दोनों जैसे एक साथ तरल रूप से आ गये थे। उसके इस दयनीय रूप को विवस्वत ने देखा। उनको दया आई। उन्होंने मन्द स्वर में पूछा :

"निर्भय होकर बोलो सरण्यू कहां है ? तुम कौन हो ?"

प्रत्युत्तर की आशा में विवस्वत की दृष्टि छाया पर फैली। छाया भूमि की ओर देखती अपने अंचल से आँसू पोंछती बोली :

"मैं उनकी छाया हूँ।"

"और—वह ?"

"आपकी अनुपस्थिति में वह मुझे यहाँ छोड़ कर चली गईं।"

मनु माँ के गले से लिपट गया। पिता का क्रोधित रूप देख कर घबरा गया था।

"अश्विनी बनकर मृत्यु-लोक में हैं।"

"ओह—! और यह मनु !"

विवस्वत की छाया पर से दृष्टि हटी। अपने अविज्ञान के फल मनु की ओर देखने लगे।

× × ×

एक सुन्दर अश्व वन, पर्वत, नदी, सरोवर, मरुस्थल, सुरम्य भूमि आदि सर्वत्र किसी को खोजता घूम रहा था। उसे कहीं शान्ति नहीं मिल रही थी। वह किसी के विरह में व्यग्र था। अपनी निधि जैसे खो बैठा था।

अकस्मात् उसे एक अश्वी विचरण करती दिखाई दी। अश्वी ने सलक्षण अश्व देखा। एक-दूसरे को दोनों ने पहचान लिया। दो बिछुड़े मिले। पति-पत्नी मिले। पत्नी ने पति से मैथुन की आकांक्षा की।

काम वेग उत्पन्न हुआ। विवस्वत अश्व ने सरण्यू अश्वी पर सवेग आरोहण किया। अश्व का शुक्र उद्दीपन के कारण स्खलित होकर भूमि पर गिर गया। सन्तानेच्छु अश्वी ने उस तेज को सूंघा। उसके सूंघते ही, उसकी नासिका से स्वर्ण-कान्ति-पुंज, मधु-वर्ण, दो दिव्य पुरुषों ने जन्म ग्रहण किया। उनकी संज्ञा नासत्य तथा दस्र हो गयी। उन्हें देखते ही अश्व विवस्वत ने प्रसन्न होकर कहा :

"अश्विनीकुमार—।"

"नासत्य—।" मुसकरा कर अश्वी ने कहा।

"मेरी नासिका से उत्पन्न हुए हैं। मेरे कुमारों का नाम नासत्य होगा।"

"प्रिये !" पुत्रों की ओर वात्सल्य भाव से देखते हुए विवस्वत ने कहा, "देवताओं के कुमार चिकित्सक होंगे। ये आदि वैद्य हैं।"

सरण्यू प्रेमपूर्वक अश्विनीकुमारों को अंक में लेने लगी। विवस्वत ने सरण्यू को पत्नी भाव से देखते हुए स्नेह से कहा :

"सरण्यू ! तुमने प्रथम मृत्यु प्राप्त प्राणी यम को जन्म दिया। तत्पश्चात् मृत्यु और व्याधियों से रक्षा करने वाले प्रथम वैद्यों को जन्म दिया है। तुम दोनों की जननी हुई।"

"और मेरी छाया !" सरण्यू मुसकराई।

"उसने मरणधर्मा मनु को जन्म दिया।"

"चलो। लोक-परलोक दोनों अपने हैं।"

अश्व विवस्वत, अश्वी सरण्यू और अश्विनीकुमार सब प्रसन्न हो गये।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १० : १७ : १-२, १० : ८६ : १३
बृहद्देवता : ६ : १३२-१६३, २ : १०, ८०, ७ : १, ३, ४

नोट : विवस्वत द्वारा यम-यमी की तथा अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति सरण्यू के गर्भ से हुई थी। सरण्यू की छाया से मनु अर्थात् मानव के आदि पुरुष हुए थे। मनु से मरणशील प्राणी हुए। सरण्यू से देवता यम तथा अश्विनी कुमार हुए। सूर्य ही मर्त्यों और अमर्त्यों दोनों के पिता हैं। सरण्यू तथा उसकी छाया उनकी माता हैं। मैं समझता हूँ कि इस प्रथा द्वारा देव तथा मनुष्यों के एक ही स्रोत को स्वीकार करते हुए यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि मनुष्य देवता की छाया है। सूर्य ने यदि सरण्यू से यम को उत्पन्न किया तो उसीसे ही यम द्वारा आक्रान्त प्राणियों की रक्षा करने वाले अश्विनों को भी उत्पन्न किया। अर्थात् प्राणियों का मूल स्रोत सूर्य से आरम्भ होता है।

चमस—पान-पात्र। मुख्यतया यज्ञीय सोम धारण करने वाले पात्र को कहते हैं। काष्ठ द्वारा इसका निर्माण किया जाता था। अतएव इसे 'द्रु' कहा गया है। यह उदुम्बर के काष्ठ का बनाया जाता था।

ऋभु - सुधन्वन के वंशज जिन्होंने अपनी कर्मशीलता के कारण देवत्व प्राप्त किया था। ऋभुगण, वाज, विम्बन विशेष तीन ऋभु हैं।

विवस्वान – सूर्य तथा आदित्य के लिये। अग्नि तथा उषा के विशेषण रूप में भी व्यवहृत किया गया है।

ब्रह्मणस्पति—बृहस्पति को ब्रह्मणस्पति कहा गया है।

सरण्यू—सूर्य की भार्या तथा यम, यमी और अश्विनी कुमारों की माता का नाम है।

सवितृ—द्युलोक और अन्तरिक्ष स्थानीय देवता के अर्थ में आता है। कहीं सूर्य का समानार्थक तथा कहीं भिन्न माना गया है। सूर्योदय के पूर्व के सूर्य को सविता, उदयोपरान्त को सूर्य कहते हैं। गायत्री इन्हीं को सम्बोधित कर पढ़ा जाता है। आदित्यों में गणना की जाती है। इसे हिरण्यहस्त तथा हिरण्यबाहु कहा गया है।

घोषा

"घोषे !" कक्षीवत ने सस्नेह कन्या को पुकारा ।

"पित: !" कुसुम-सी फुदकती बालिका ऋषि की गोद में आ गयी ।

बालिका उषा तुल्य सुन्दर थी । पिता की प्रतिमूर्त्ति थी । स्थान की शोभा थी । उससे सब खेलते थे । सब स्नेह करते थे । आश्रम के पशु, पक्षी, वृक्ष, जड़-चेतन, पुष्प सबकी प्रिय थी । खिलौना थी ।

समय दौड़ता गया ।

× × ×

घोषा युवती हुई । युवती से प्रौढ़ा हुई । प्रौढ़ा से वृद्धा हुई । उसे पति नहीं मिला । उसका वरण करना किसी ने न चाहा ।

तथापि, वह पिता की भार न बनी । पहले लोग उसे खिलाते थे । अब वह पशु, पक्षी, मनुष्य सब के बच्चों को खिलाती है ।

आम्र, पादप की तरह उसमें मंजरियां लगतीं । लता की तरह वह खिलती । नारी हृदय आकुल हो जाता । जवानी बीत गयी । ऋतुकाल बीत गया । स्त्री सुख नसीब नहीं हुआ । वह कभी-कभी मार्मिक वेदना से विकल हो जाती ।

कक्षीवत ने बहुत प्रयास किया । वर उसे देखने आते, किन्तु उसका शरीर विकृत था । शरीर में आकर्षण नहीं था ।

युवाकाल में व्याधिग्रस्त हुई । शरीर शिथिल हुआ । विकृत हुआ । परन्तु मन शिथिल नहीं हुआ । मन विकृत नहीं हुआ । शरीर का दोष उसकी कल्पना को हतोत्साहित नहीं कर सका ।

कक्षीवत ने कन्या के विवाह की आशा त्याग दी । कोई त्यागी पुरुष नहीं मिला । उसकी जीवन-नैया पार लगाने के लिए कोई उद्यत नहीं हुआ । उससे पाणिग्रहण निमित्त कोई भ्रम से भी हाथ नहीं बढ़ा सका ।

शरीर का आकर्षण शरीर करता है । इन्द्रियों का आकर्षण इन्द्रियाँ करती

हैं। इन्द्रियाँ बाहरी रूप-सज्जा देखती हैं। रंग, उन्हें आकर्षित करता है। उसमें विवेक अपनी नाक नहीं अड़ाता।

एक समय आया। विवाह की आशा सर्वथा त्याग देनी पड़ी। कक्षीवत उदास हो गये। घोषा साठ वर्ष की हो गयी। उसने अपना मन आश्रम में लगाया। स्वाध्याय में चित्तवृत्तियों को केन्द्रस्थ किया। अग्नि-उपासना में आत्मसमर्पण कर दिया।

उसका जीवन नियमित था। आहार नियमित था। विहार नियमित था। विराम नियमित था। क्रिया-प्रतिक्रिया विहीन जीवन पत्थर तुल्य हो गया था।

उसके दीन जीवन पर किसी को दया नहीं आयी। कक्षीवत ने उसके जीवन को एक बन्द अध्याय समझा। चुप होकर बैठ रहे। घोषा ने समझ लिया कि अन्धकार भविष्य में घनीभूत होता जायगा।

कोमलता नारी-हृदय का गुण है। वह पुष्प है। सबकी कृपा-प्रति-कृपा देखता है। किन्तु स्वयं अपनी भावना को प्रकट नहीं कर सकता।

कली थी। असमय कुम्हला गयी थी। फिर भी लता से लगी थी। वह परिमल थी। सुगन्धि दान करती थी। किन्तु स्वयं सुगन्धि से वंचित थी।

अविवाहित जीवन भार लगने लगा। समय के साथ भार बढ़ता गया। चिन्ता हुई। बिना पुत्र, बिना पति उसका परलोक कैसे बनेगा?

चिन्ता में जलने लगी। हृदय-दाह में झुलसने लगी। जीवन अभिशाप हो गया। शरीर शिथिल हुआ। मन शिथिल नहीं हो सका।

× × ×

दिन उषा के साथ आता। प्रतिदिन अरुण होता, उज्ज्वल होता और लाल होता निकल जाता। सन्ध्या के साथ सो जाता। पक्षियाँ सूर्य को कलरव से अर्घ्य देतीं। वृक्ष से उड़ जातीं। सायंकाल सूर्य को विदा करती आतीं। अपने बच्चों को दाना चुगातीं। उन पर पंख पसार कर बैठतीं। फिर सो जातीं।

घोषा के लिए प्रकृति सौन्दर्य में रस नहीं रह गया था। हर एक दिन उसके लिए भार लेकर आता और निशा भार हल्का कर उसे सुला देती।

दिन से वह सहमती थी। पुरुषों की आँखों से बचती। अपने में सिमट कर रह जाना चाहती। रात्रि उसे सहारा देती। कुरूप व्याधि-ग्रस्त शरीर देख कर उस पर कोई हँसने वाला, व्यंग्य करने वाला नहीं मिलेगा, इसका उसे संतोष होता। इस तरह कितने ही दिन-रात जाने अनजाने निकल गये।

एक दिन की बात थी। वह प्लक्ष तरु छाया में बैठी थी। शीतल मलय

चंचल था। आकाशगामी पक्षी गीत गाते चले जा रहे थे। पुष्पित क्यारियाँ सुरभि दान रत थीं। गाय बछड़े को दूध पिला रही थी। भ्रमर भ्रमरी के पीछे भाग रहा था। मृग अपनी हरिणी के साथ था। मृग-शावक के साथ था। अपनी छोटी गृहस्थी के साथ था। न्यग्रोध की छाया में वे साथ बैठे थे। नील-गगन में पश्चिम से बरसे उज्ज्वल मेघ आते, उड़ते चले जाते। भूमि पर उनकी छाया पड़ती। उनके साथ भागती। घोषा की कल्पना जैसे जागी।

पिता कक्षीवत का अनायास ध्यान आया। ध्यान के साथ स्मृतियाँ हरी हुईं। पूज्य पिता ने अश्विनी कुमारों की कृपा से दीर्घ आयु, शक्ति, स्वास्थ्य-लाभ किया था। उन्हें यौवन, आरोग्य एवं ऐश्वर्य मिला था। उन्हीं नासत्यों की कृपा से सर्वभूत विष को उन्होंने प्राप्त किया था।

मन में बात आयी। नासत्यों की कृपा से उसे सौन्दर्य, सौभाग्य, पति, पुत्र, सब कुछ प्राप्त हो सकता है। उसमें नवीन स्फूर्ति आयी, नवीन जीवन। उसकी नवीन आकांक्षा उदय हुई और नवीन आशा का संचार हो गया। पिता कुछ प्राप्त कर सकता है तो उसकी पुत्री रूप और सौभाग्य क्यों नहीं प्राप्त कर सकती है?

साठ वर्षीया वृद्धा घोषा के श्वेत केश किंचित् मरुत प्रवाह में लहराये। उसने जैसे भूले यौवन का अनुभव किया। इस विचार के आते ही उसके जीवन का जैसे दूसरा अध्याय अकस्मात् खुल गया। कायाकल्प का प्रथम चरण जैसे उसकी ओर उठा। उसने निश्चय किया। तपस्या करेगी। उसने निश्चय किया, अश्विनी कुमारों को प्रसन्न करेगी। उसने निश्चय किया, वह सुन्दर युवती होगी।

वह उठी। पाप रोग से अपंग घोषा चली। साठ वर्ष की जरा काया लिये चली। पति-पुत्र हीन चली। नैराश्य जीवन में आशा लिए चली।। शुभस्मती की शरण चली।

× × ×

तपस्विनी घोषा मन्त्रद्रष्टा हुई। उसे सूक्तों का दर्शन हुआ। उसने अश्विनी-कुमारों का शुद्ध कण्ठ से स्वतन किया :

"अश्विनीकुमार! आपका रासभ युक्त रथ सर्वत्र गमनशील है। आपके निमित्त सुदृढ़ रथ का रात-दिन यजमान आह्वान करते हैं। उसी रथ का स्मरण करते हैं। जिस प्रकार पिता का स्मरण कर मन प्रसन्न होता है, उसी प्रकार आपके रथ का स्मरण कर हम सुखी होते हैं।

"अश्विनीकुमारो ! ऋभुओं ने आपके निमित्त रथ प्रेषित किया था। वह रथ प्रकट हुआ। उस रथ के प्रकट होने पर आकाश कन्या उषा उदित हुई। उससे सूर्य देव की आश्रिता रात्रि और दिन जन्म लेते हैं। उसी वेगशाली रथ पर आरूढ़ होकर आप यहाँ आइए। उस रथ पर आरूढ़ होकर पर्वतीय पथ पर गमन कीजिए।

"अश्विनीद्वय ! ऋभु जिस प्रकार रथ निर्माण करते हैं, उसी प्रकार आपके लिए रथ का निर्माण होता है। आप मानव के लिए कर्म का उपदेश देते हैं। आपका रथ प्रातः गमन करता है। उपासक के पास धन पहुँचाता है। उस समय कौन यजमान अपना यज्ञ सम्पन्न करने के लिए उस रथ की स्तुति नहीं करेगा ?

"अश्विन् ! आप अपना समय कहाँ व्यतीत करते हैं ? रात्रि तथा दिन में आप कहाँ विचरण करते हैं ? श्रेष्ठ यज्ञ में सादर आपको कौन आहूत करता है ? कुत्स तुल्य होता के निवास स्थान पर आप रथारूढ़ हो जाते हैं।

"नासत्य ! हमारी वाणी मधुर हो। कार्य पूर्ण हो। सुमतियों का उदय कीजिए। श्रेष्ठ, कीर्तिशाली ऐश्वर्य का भागी बनाइये। जैसे सोम का मधुर रस स्नेह उत्पन्न करता है, उसी प्रकार यजमानों के प्रति स्नेह का सृजन हमारे हृदयों में कीजिए।

"दस्र ! अपने रथ पर आसीन कर राजा पुरुमित्र की कन्या शुन्धव को आप ले गये। विमद के साथ उसका शुभ विवाह सम्पन्न कराया। आपको गर्भिणी वध्रिमति ने आहूत किया था। उसके दुःख को कृपापूर्वक आपने सुना। उसे सुखपूर्वक वेदनारहित प्रसव कराया।

"नासिक्य ! आपने वृद्ध स्तोता कलि को पुनर्जीवन दान दिया। वन्दन को कूप से बाहर निकाला।

"स्वर्वैद्य ! आपने विश्पला को लोहे का पाँव लगाया। उसे गमन योग्य बनाया। रेभ को शत्रुओं ने मरणासन्न समझ कर गुफा में फेंक दिया था। उस समय आपने उसको आरोग्य प्रदान किया। महर्षि अत्रि को सात बन्धनों से बाँधकर प्रज्वलित अग्नि में डाल दिया गया था। उस समय आपने अग्नि-कुण्ड को शीतल कर दिया था।

"आरोग्यवर्धन् ! आपने वृद्धा शयु नामक गौ को पुनः पयस्विनी बनाया। वृक मुख स्थित वर्तिका पक्षी का उद्धार किया। उसे आरोग्य प्रदान किया।

"अश्विनि ! आपने निन्यानवे अश्वों के साथ एक श्वेत वर्ण अश्व राजा पेदु को दिया था। उस अश्व के अवलोकन मात्र से शत्रु-सेना पलायन कर जाती

थी। मानव-दृष्टि में अश्व मूल्यवान् था। उसे देखकर मन प्रसन्न होता था। केवल नाम लेने मात्र से सुख का बोध होता था।

"पुष्कर स्रृज ! आपके गमनशील होने पर मार्ग में ही आपको स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। यदि यजमान दम्पति को आप रथारूढ़ कर शरण प्रदान करें तो उन्हें पुनरपि किसी प्रकार का पाप-दोष, विपत्ति, विघ्नादि स्पर्श नहीं करते।

"अश्विनीद्वय ! राजाओं को जिस प्रकार उनका यशगान करके प्रातःकाल जगाया जाता है, उसी प्रकार प्रातःकाल आपके निमित्त स्तवन किया जाता है। यज्ञ प्राप्ति निमित्त किसके घरों में प्रतिदिन आप जाते हैं ?

"कर्मोपदेशक ! आप किसके पापों को नष्ट करते हैं ? आपके हेतु यथा-समय यज्ञ सम्पन्न किये जाते हैं। उपासकों को सर्वकल्याण प्रदान करने वाले कल्याणों के स्वामी हैं। उपासकों के निमित्त अन्न सहित आपका आगमन होता है।

"दस्र ! आपके मधु को मक्खियाँ निष्कृत करती हैं। भृज्यु का समुद्र से आपने उद्धार किया। आपने राजा वृश, महर्षि अत्रि तथा उशना कवि की रक्षा की। दानी आपके मित्र होते हैं। आपने कृश, पतिविहीना स्त्री तथा अपने सेवकों की रक्षा की थी। यात्रिकों के निमित्त मेघों को आप विदीर्ण करते हैं। उस समय गमनशील मेघ घोर गर्जन के साथ वृष्टि करता है।"

वृद्धा घोषा ने अश्विनी कुमारों की स्तुति करते हुए उन्हें अपने मानस मन्दिर में देखा। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक शिरसा नमामि किया। उसकी शुष्क जर्जर काया से अश्विनी कुमारों के पवित्र ध्यान द्वारा उद्भूत प्रभा उत्पन्न होने लगी। उसकी पलकें मिल गईं।

× × ×

"घोषा !" अश्विनीद्वय ने स्नेहपूर्वक कहा, "तुम्हारा स्तवन मार्मिक है। हम तुमसे प्रसन्न हैं।"

घोषा ने परम सुन्दर दोनों अश्विनी कुमारों का विमल युवक स्वरूप देखा। उसका मस्तक उनके चरणों पर गिर पड़ा। जर्जर, अपंग काया की विजयदुन्दुभा उसके श्वेत लम्बे केशों ने बजाते हुए अश्विनी द्वय के पाद-तलों को ढक लिया।

"शुभे !" अश्विनी कुमारों ने उसकी झुकी शुष्क, जराभूत काया पर दया-दृष्टि डालते हुए कहा, "तुम्हारा हम क्या उपकार कर सकते हैं ?"

"महात्मन् !" घोषा ने अपने दोनों हाथों से अश्विनी कुमारों के चरण-कमलों को दृढ़तापूर्वक पकड़ते हुए कहा, "पंगु और पतित के आप शरणागत हैं। नेत्रहीन, बलहीनों, के आप चिकित्सक हैं।"

"तपस्विनी !" अश्विनी कुमारों ने कहा, "तुम्हारी कामना क्या है ?"

"स्ववैंद्य !" घोषा ने और दृढ़तापूर्वक अश्विनी कुमारों के चरणों को अपने दुर्बल हाथों से पकड़ते हुए कहा, "पुरातन जीर्ण रथ का जिस प्रकार कोई जीर्णोद्धार करता है, उसी प्रकार च्यवन ऋषि का कायाकल्प कर उन्हें आप लोगों ने युवा बना दिया है।"

"देवी !" अश्विनी कुमारों ने स्नेह प्रदर्शित करते हुए कहा, "हम तुम्हारी किस आकांक्षा की पूर्ति कर सकते हैं ?"

"अश्विन् !" घोषा ने उनके चरणों पर अपना झुर्रियों पड़ा मस्तक घर्षण करते हुए कहा, "यह अभागिन हव्यादिसे निशि-दिन आपका आह्वान करती रही है। गुणानुवाद करती रही है। चिन्तन करती रही है। आपके पराक्रमों की प्रशंसा करती सर्वत्र विचरण करती रही है।"

"घोषे !" अश्विनीद्वय ने कहा, "तुम कहती नहीं। तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

"महात्मन् !" घोषा ने और दृढ़तापूर्वक अश्विनीद्वय के पदों को पकड़ते हुए समीप खिसक कर कहा, "आप कुशल चिकित्सिक हैं। आपकी शरण में आई हूँ। आप सत्य स्वरूप हैं। मेरी स्तुति स्वीकार कर इस दीन अबला पर कृपा कीजिए।"

"नारी !" अश्विनीद्वय घोषा की भूमिका का अर्थ समझ कर परस्पर मुसकराये, "तुम्हारी दयनीय स्थिति पर किसे दया नहीं उत्पन्न होगी ?"

"भगवन् !" घोषा का मस्तक किंचित् चरण-कमल से उठा। अत्यन्त करुण याचनापूर्ण दृष्टि से अश्विनी कुमारों की ओर देखते हुए कहा, "देव ! आपने मेरा आह्वान सुन कर मुझ पर कृपा की है। पिता पुत्र को जिस प्रकार उपदेश देता है, उसी प्रकार आप मुझे उपदेश दीजिए।"

"करुणमूर्ति !" अश्विनीद्वय की आँखों में करुणा थी। वे बोले, "तुम्हारा उपकार यदि हो सका तो अवश्य करेंगे।"

"देव !" घोषा के नेत्रों से बहते आँसू उसके शुष्क कपोलों की रेखाओं में फैलने लगे। वह बोली, "मैं अज्ञानी हूँ। मेरा कोई भाई नहीं है। मेरा कोई कुटुम्ब नहीं है। मैं बुद्धिमती नहीं हूँ।"

"शुभगे ! हम तुम्हारी आकांक्षा की प्रतीक्षा में हैं।" अश्विनीकुमारों ने मन-ही-मन जैसे कुछ निश्चय कर कहा।

"करुणापते !" घोषा ने नत नेत्र सलज्ज निवेदन किया, "मैं पति-सुख से वंचित हूँ। पति द्वारा प्राप्त होने वाले सुख से मैं अनभिज्ञ हूँ।"

"तुम्हें पति प्राप्त होगा।" अश्विनी कुमारों ने प्रसन्न होकर कहा।

"भगवन् !" घोषा की शुष्क त्वचा में जैसे रस संचारित हो गया। सलज्ज बोली, "मैं बलवान स्नेहशील पति को आपकी दया से प्राप्त करूँ, यही मेरी कामना है।"

"और कुछ घोषे ?"

"भगवन् !" घोषा ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "आप अन्न तथा धन के स्वामी हैं। कल्याण-प्रद ! आप मेरी कामना पूर्ण कीजिए। आप मेरे रक्षक हैं। अपने पति का घर मैं देख सकूं। अपने पति की मैं प्रियतमा पत्नी बनूं।"

"घोषा !" अश्विनी कुमारों ने कहा, "तुम युवती होओगी। तुम्हारी यह जरा तुम्हारे इस जीर्ण शरीर से पतझड़ के वृक्ष के पत्तों की तरह स्वतः गिर जायेगी। तुम्हें पति प्राप्त होगा। तुम सुन्दरी होओ।"

देखते-देखते वृद्धा घोषा युवती हो गई। उसके श्वेत केश काले हो गये। शरीर दोष दूर हो गया। घोषा अपना स्वरूप बदलता देख कर अश्विनीद्वय के चरणों पर गिर पड़ी।

× × ×

कभी घोषा ६० वर्ष की वृद्धा थी। अब वह हो गई सर्वांगिता सुन्दरी युवती। उसकी रूप माधुरी पर रीझकर सुन्दर पति ने उसका वरण किया। घोषा के जीवन का वसन्त पुनः अपनी पूर्ण गरिमा में लौट आया। घोषा ने अश्विनी-कुमारों की पुनः स्तुति की :

"अश्विनी कुमारो ! मैं घोषा आपकी कृपा से सर्वरूपेण सौभाग्यवती हो गई हूँ। मुझे विवाह योग्य वर प्राप्त हो गया है। आपकी दया से अन्न खूब उत्पन्न हुआ है। निम्नगा नदियाँ, अपना जल उस ओर प्रेरित करती हैं। मैं सब प्रकार से रोग-रहित हो गयी हूँ। शक्तिसम्पन्नता प्राप्त हो गई है।"

"कोमलांगी !" अश्विनी कुमारों ने प्रकट होकर कहा, "अब तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

"भगवन् !" घोषा ने प्रांजलिबद्ध प्रणाम करते हुए कहा, "आपकी प्रसन्नता से मेरे पति धन तथा सन्तान से पूर्ण हों। आप कल्याणकारक हैं। मेरे पति के मार्ग में आने वाले विघ्न नष्ट हों। मैं जिस सरिता तट पर जलपान करूँ, उसे सुखमय बनाइए।"

"तथास्तु !" अश्विनी कुमारों ने हँस कर कहा।

"भगवन् !" घोषा ने वन्दना करते हुए कहा, "आप सर्वदा मंगलकारक हैं, आपका दर्शन शुभ है।"

अश्विनी कुमार प्रस्थान के लिए प्रस्तुत हुए। घोषा ने कहा :

'अश्विनी कुमारो! जो पति अपनी धर्मपत्नी की प्राण-रक्षा के लिए रुदन करते हैं। जो उन्हें यज्ञादि में प्रवृत्त करते हैं। जो सन्तानोत्पत्ति करते हुए श्रेष्ठ मार्गों से युक्त होते हैं, उनकी पत्नियाँ सुखी होती हैं।"

घोषा ने अश्विनी कुमारो की चरण रज अपने मस्तक पर लगायी। अश्विनी कुमारों ने श्रद्धापूर्वक कहा :

"मन्त्रद्रष्टा! घोषा!! तुम्हारा कल्याण हो।"

अश्विनीकुमार अन्तर्ध्यान हो गये।

कालान्तर में मन्त्रद्रष्टा घोषा पतिव्रत से वृद्धि करती गई। स्वस्थ, नीरोग शरीर से गार्हस्थ्य जीवन को उसने सुखमय बनाया।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १ : १७ : २४, १ : ११७ : ७, १ : १२० : ५, १ : १२२ : ५, १ : १२३, १० : ३९-४०, १० : ३९ : ३-६, १० : ४० : ५-११।

वृहद्देवता : २ : ८२, ७ : ४२-४८

नोट : घोषा एक युवती की वेदनामय कहानी है। युवती के मन का मनोवैज्ञानिक चित्रण वेद ने किया है। घोषा का वृद्धा हो जाने पर अश्विनीकुमारों के द्वारा पुनः उसे सुन्दर युवती बना देने का वर्णन मिलता है। मैं समझता हूँ कि शरीर के कायाकल्प करने की कोई प्रक्रिया वैदिक काल में रही होगी। आयुर्वेद के अनुसार कुछ लोग कायाकल्प कराते हैं, परन्तु वह फल नहीं प्राप्त होता, जिसका वर्णन वेद में मिलता है। इस दिशा का पता लगाना चिकित्सकों का पावन कर्तव्य माना जायगा।

उशना—एक प्राचीन ऋषि हैं।

कक्षीवत—एक प्राचीन ऋषि हैं। इन्हें औशिज भी कहा जाता है। पज्र वंशीय इन्हें कहा गया है। अतएव इन्हें पज्रिय कहा जाता है। उनके वंशजों की संज्ञा पज्र दी गई है।

घोषा—अश्विनी की कृपा से पति प्राप्त किया था। उसके पुत्र सुहस्त्य का उल्लेख मिलता है।

नासत्य—शाब्दिक अर्थ असत्य रहित है, किन्तु यहाँ अश्विनीकुमारों के लिये आया है।

पुरुमित्र—पुरुमित्र की कन्या ने उनकी इच्छा के विपरीत अपना विवाह विमद से वर लिया था।

पेदु—अश्विनी के एक कृपा-पात्र थे। अश्विनी ने उसके खराब अश्वों के स्थान पर 'पैद्व' नामक अश्व दिया था।

ऋज्यु—१ : ११२ : ५, १ : ११६ : २७, १ : ११७ : ८

रेभ—अश्विनी के एक कृपापात्र।

वध्रिमती—ऋग्वेदीय एक महिला। उसका पति नपुंसक था। अश्विनी कुमारों की कृपा से पति को पुंसत्व प्राप्त हुआ था। हिरण्यहस्त नामक पुत्र उस पति द्वारा उसे प्राप्त हुआ था।

वन्दन—एक ऋषि हैं।

वर्तिका—कूप में गिर गये थे। अश्विनी कुमारों ने इन्हें कूप से निकाला था।

विश्पला—ऋग्वेदीय एक स्त्री थी। इसका पैर टूट गया था। अश्विनी ने उसके लोहे का पैर लगाया था।

अतिथिग्व—इसने पर्णय और करंज को मारने में इन्द्र की सहायता की थी। तुर्वश तथा यदुओं का वह शत्रु था। दिवोदास के विशेषण रूप में भी इस शब्द का प्रयोग किया गया है। तूर्य वाण के शत्रु रूप में भी इस शब्द का प्रयोग किया गया है।

उक्थ—स्वाहा के पुत्र का नाम है। ऋग्वेद में यह शब्द अप्रगीत साध्य स्तोत्र के अर्थ में आता है। उक्थ यज्ञ किंवा उक्थ याग का उल्लेख मिला है। उक्थवाहस् शब्द उक्थ पढ़ने वाले का बोधक है।

करंज—इन्द्र का शत्रु था। वह असुर था अथवा मनुष्य, कहना कठिन है।

कालकेय—एक असुर।

इन्द्र विकुण्ठा

प्रजापति की एक पत्नी थी। उसका नाम विकुण्ठा था। असुर कन्या थी। विवाह होने के पश्चात् स्वाभाविक था, वह देवोपम पुत्र की कामना करती। उस असुर पत्नी ने इन्द्र तुल्य एक पुत्र की कामना की।

केवल कामना से कामना फलवती होने वाली नहीं थी। कामनापूर्ति निमित्त उसने महान् तपस्या आरम्भ की। प्रजापति तपस्या से प्रसन्न हुए। उसे निरन्तर विविध वरदान देते रहे। उसकी सभी कामनाओं की पूर्ति हो गई। अन्त में उसने दैत्यों तथा दानवों के संहारार्थ, इन्द्र जैसे अतुलित बलशाली पुत्र प्राप्त करने का वर प्राप्त किया।

इस पर स्वयं इन्द्र ने उसके गर्भ से जन्म लिया।

× × ×

इन्द्र सुशिप्र थे। उनके केश हरे थे। उनकी दाढ़ी हरी थी। वे वेग से चलते थे। दाढ़ी हवा में उड़ती थी। शरीर का रंग हरा था। स्वर्ण हस्त था। भुजा विशाल थी। फैली थी। शक्तिशाली थी। सुदृढ़ थी।

दाहिने हाथ में त्वष्ट द्वारा निर्मित वज्र था। वे स्वयं वज्र को तीक्ष्ण करते थे।

उनकी कान्ति सूर्य अरुणिमा तुल्य थी। उनका आयुध धनुष-बाण था। बाण स्वर्णिम थे। उनमें पंख लगे थे। वे अंकुश से धन प्रदान करते थे। पाश से शत्रुओं को पाशबद्ध करते थे।

सोमपान के पश्चात् उनका पेट सरोवर की तरह हो जाता था। सोमपान के पश्चात् वे दाँत पीसते थे। उनका प्रिय पोषक पेय सोम था। उसे चुरा कर भी पी लेते थे। सोम उन्हें युद्ध अभियान निमित्त उत्साहित करता था। अपने जन्मदिन से ही सोमपान आरम्भ किया था। माता ने सुशिप्र को भूमि

स्पर्श करते ही सोम पिलाया था। सोम के अतिरिक्त वे मधु-मिश्रित दुग्धपान करते थे।

वृत्रहन्ता इन्द्र का रथ था। उसे दो हरे रंग के अश्व खींचते थे। अश्वों के अपाल स्वर्णिम थे। लम्बे थे। चलते समय वे वायु प्रवाह में लहराते थे। उनके नेत्र सूर्य की तरह प्रखर ज्योतिर्मय थे। अश्वों के केश मोर पंख के समान प्रतीत होते थे। ऋभुओं ने उनके रथ की रचना की थी। इन्द्र रथेष्टा थे।

× × ×

इन्द्र का अस्त्र दधीचि की अस्थि द्वारा निर्मित वज्र था। उससे इन्द्र ने नव नव्बे अर्थात् आठ सौ दस और सात-सात के सात दानवों का युद्ध में घोर संहार किया था।

दानवों के दुर्ग स्वर्ण निर्मित थे। रत्न निर्मित थे और लौह निर्मित थे। इन्द्र ने अपने प्रबल बल वेग द्वारा तीनों प्रकार के दुर्गों को ध्वस्त किया था। दानव पृथ्वी अथवा दोनों लोकों में जहाँ भी कहीं मिले, इन्द्र ने उनका हनन किया।

किन्तु आततायी शान्त बैठने वाले नहीं थे।

× × ×

पृथ्वी तल पर कालकेय असुर तथा पुलोम जाति इन्द्र के सम्मुख मस्तक झुकाने के लिए तैयार नहीं थी। असुरों के व्यवहार से प्राणी त्रस्त थे। इन्द्र ने उनका संहार किया। साथ ही उन्होंने धनुर्धरों का नाश किया। तत्पश्चात् स्वर्ग में प्रह्लाद की दुष्ट सन्तानों का उन्मूलन किया।

इन्द्र को दैत्यों का साम्राज्य प्राप्त हुआ। वे सुखपूर्वक असुर-साम्राज्य पर शासन करने लगे।

× × ×

दैत्यों के सिंहासन पर इन्द्र बैठे। वे अपनी वीरता के दर्प से फूल गये। दैत्य-साम्राज्य की आसुरी-वृत्तियाँ मुहुर-मुहुर इन्द्र में प्रवेश करने लगीं। वे असुरों की माया से मोहित हो गये। मूल प्रयोजन भूल गये। आसुरी माया-जाल में फँस गये।

देवेन्द्र ने आसुरी प्रभाव का प्रयोग आरम्भ किया। देवताओं को ताड़ित करने लगे। उनके अत्याचार से देवता त्रस्त हो गये। असुर संसर्ग के कारण

ग्रासुरी दोषों से पूर्णतया दूषित हो चुके थे। देवता अपनी रक्षा निमित्त व्याकुल हो गये। उपाय सोचने लगे। कुछ निरुपाय हो गये। चारों ओर भागने लगे।

× × ×

"महात्मन् !" त्रस्त देवताओं ने सप्रगु से निवेदन किया। "असुर स्वरूप इन्द्र से हम त्रस्त हो गये हैं।"

"इन्द्र—?" सप्रगु ने साश्चर्य देवताओं की ओर देखते हुए पूछा।

"भगवन् !" देवता भयभीत वाणी से बोले, "आपके सखा इन्द्र पूर्णतया आसुरी वृत्ति के हो गये हैं। उन्हें किंचित् मात्र पर एवं पूर्वा का ज्ञान नहीं है। वे हम लोगों के रक्षक थे। वे रक्षक अब भक्षक बन गये हैं।"

"आश्चर्य—!" सप्रगु गम्भीर हो गये।"

"महात्मन् ! आप इन्द्र के मित्र हैं। सखा हैं। आप हमारी रक्षा कीजिए। उनकी आसुरी वृत्ति से रक्षा कीजिए। मोहान्धकार से रक्षा कीजिए। कहते हुए देवताओं ने सप्रगु को अंजलिबद्ध प्रणाम किया।

"अवश्य—?" सप्रगु आसन त्याग कर उठे।

देवता प्रसन्न हो गये।

× × ×

"इन्द्र !" सप्रगु ने असुर साम्राज्य अधिपति इन्द्र के सम्मुख उपस्थित होकर सम्बोधन किया।

इन्द्र सिंहासन पर बैठे थे। उनका स्वरूप बदल चुका था। उनकी कान्ति लुप्त हो चुकी थी। असुरों से घिरे थे। आसुरी माया में उलझे थे। असुर उनकी वन्दना कर रहे थे। आसुरी व्यसन उनसे चिपक गया था।

सप्रगु को इन्द्र की इस दशा पर दया आई। उन्होंने देखा। इन्द्र अपना पूर्व रूप भूल चुके थे। कर्त्तव्य विमुख हो चुके थे। इन्द्र ने निद्रित व्यक्ति तुल्य अपने पूर्व सखा पर दृष्टिपात किया।

"सखे !" सप्रगु ने चिर सखा को सम्बोधित किया। हमें भूल गये। मैं सप्रगु हूँ।"

"सप्रगु !" इन्द्र जैसे स्मरण करने लगे।

सप्रगु की आँखें माया विमोहित मित्र इन्द्र की अवस्था देखकर भर आईं। उनसे रहा नहीं गया। सिंहासन के समीप वेग से पहुँचे। सखा इन्द्र का हाथ

प्रेम से पकड़ लिया। मित्र स्पर्श द्वारा इन्द्र में जैसे चैतन्य ने प्रवेश किया। वे सप्रगु की ओर ध्यान से देखने लगे। सप्रगु ने उनके हाथों को अपने हाथों में लिये हुए वेद ऋचाओं का पाठ आरम्भ किया :

"सखे ! मैं अंगिरा गोत्री सप्रगु हूँ। मैं सत्यकर्मा हूँ। मैं बुद्धियुक्त हूँ। मन्त्रों का स्वामी हूँ। स्तुतियों का मेरे पास आगमन होता है। देवता मुझे नमस्कार करते हैं।"

इन्द्र सुनने लगे। उन्हें सुनता देख कर, सप्रगु प्रसन्न हो गये। उन्होंने स्तुति की :

"इन्द्र ! आप धनों के स्वामी हैं। हम धनाभिलाषी हैं। धन की अभिलाषा से आपके दाहिने हाथ को ग्रहण करते हैं।"

सप्रगु ने इन्द्र का दाहिना हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसे मित्रवत् दबाया। इन्द्र सप्रगु की ओर देखने लगे। अपना हाथ सखा के हाथों से खींचा नहीं। सप्रगु उत्साहित होकर पुन: स्तुति करने लगे :

"इन्द्र ! आप गोपति हैं। हमें श्रेष्ठ वर्षक घन प्रदान कीजिए। हम जानते हैं। आप सुन्दर हैं। रक्षक हैं। तीक्ष्ण आयुधधारी हैं और चारु नेत्र हैं। जल से समुद्र को पूर्ण करते हैं। धनों के धारणकर्ता हैं। स्तुत्य हैं। दु:ख-विनाशक हैं।

"वज्रिन् ! आप हमें सन्तान दें। वह देवताओं की उपासक हो। श्रेष्ठ रूप वाली हो। प्रतिष्ठावान् हो। गम्भीर हो। मेधावी हो। स्तुतिशील हो। ज्ञानी हो। शत्रु हन्ता हो। सम्मान की पात्र हो। वर्षक हो।

"वज्रवाहु ! तारक, बलशाली, मेधावी, वर्षक, सत्यकर्मी, प्रवृद्ध, अन्नवान, शत्रु नाशक, शत्रु विध्वंसक तथा अद्‌भुत कर्मा पुत्र हमें दीजिए।"

"वज्रभृत् ! वीर रथी, गौ, धनादि से सम्पन्न, सेवकों का प्रिय, स्नेही स्वामी, विप्रों का कृपा पात्र, अन्नवान, प्रतिष्ठित, अश्वों से युक्त श्रेष्ठ पुत्र युक्त हमें कीजिए।

"रथेष्टा ! मैं अपने हृदय स्रोत से उद्‌भूत स्तोत्रों द्वारा प्रतिदिन स्तवन करता हूँ। स्तुतियाँ हृदय स्पर्शी हैं। श्रोतागण दूत तुल्य इन स्तुतियों का आपकी सेवा में गान करते हैं। हमें आप पूजनीय वर्षक पुत्र दीजिए।

"सुरेन्द्र ! मैं आपसे याचना करता हूँ। मुझे अनुपम गृह प्रदान कीजिए। पूजनीय वर्षक पुत्र धन से पूर्ण कीजिए। हे द्यावापृथ्वी ! आप मेरी इस याचना का समर्थन कीजिए।"

सप्रगु की स्तुति से इन्द्र को आत्मबोध हुआ। उनकी तन्द्रा जैसे टूटी।

उन्हें पुरानी बातें स्मरण हुईं। सखा सप्रगु का हाथ पकड़े वे चैतन्य हो गये। उनकी विलुप्त कान्ति पुनः लौट आयी। उनके मुख से वाणी निकली :

"सप्रगु ! मैं शत्रु विजेता हूँ। मैं धनों का स्वामी हूँ। मनुष्य मुझे आहूत करते हैं। पिता जिस प्रकार पुत्र को धन देता है, उसी प्रकार मैं हविदाता यजमानों को धन देता हूँ। मैंने दध्यञ्च का मस्तक छिन्न किया था। मैंने कूप में पतित त्रित की रक्षा निमित्त मेघ जल को प्रेरित किया था। मैंने मातरिश्वा पुत्र दधीचि के लिए जल रोके मेघों को विदीर्ण किया था। जल की वर्षा की थी। देवता मेरे निमित्त यज्ञानुष्ठान में प्रवृत्त होते हैं। त्वष्टा ने मेरे लिए वज्र का निर्माण किया था। सूर्य सदृश्य मेरी सेना दुर्भेद्य है। मैंने भीषण वृत्त हनन जैसा कर्म किया है। अतएव जगत मेरी अराधना करता है। यजमान को सोम अर्पित करते समय की स्तुतियों से मैं जब सन्तुष्ट होता हूँ, तो अपने आयुध द्वारा शत्रु, अश्व, गौ, सुवर्ण, दुग्धादि युक्त पशुओं पर विजय प्राप्त करता हूँ। दानी यजमान के शत्रु-दल को विदीर्ण करने के लिए अपने आयुधों को तीक्ष्ण करता हूँ। मैं धनों का अधिपति हूँ। किसी में सामर्थ्य नहीं है, मेरे धन को प्राप्त कर सके। मेरी उपासना करने वालों को मृत्यु त्रस्त नहीं कर सकती। यजमानों को अभीष्ट धन की याचना मुझ से करनी चाहिए।

"मैं इन्द्र हूँ। मैं किसी के सम्मुख नहीं झुका हूँ। मैं आक्रामक एक या दो शत्रुओं को पराभूत करता हूँ। तीन शत्रु मिल कर भी मेरा कुछ नहीं कर सकते। कृषक जिस प्रकार अन्न को मसलता है, उसी प्रकार मैं दुष्ट शत्रुओं को मसल देता हूँ। अतिथिग्व के पुत्र दिवोदास को मैंने गंगुओं के देश में बसाया था। मैंने पर्णप तथा करंज शत्रुओं का दर्प मर्दन कर प्रसिद्धि प्राप्त की है। आदित्यों, वसुओं और रुद्रों ने मेरे कल्याण निमित्त, मुझे अजेय बनाये रखने के निमित्त, अन्न को कल्पित किया है। मैं उन देवताओं के स्थानों को नहीं तोड़ता हूँ।

"मैं उन लोगों को, जो यज्ञ नहीं करते, पराजित करता हूँ। मुझे जलीय, पृथ्वी तथा स्वर्गस्थ प्राणी इन्द्र कहते हैं। मैं अपने रथ में बलशाली हर्यश्वों को जोतता हूँ। विकराल वज्र को शक्ति निमित्त ग्रहण करता हूँ। ऋषि उशना के लिए मैंने अत्क पर प्रहार किया था। मैंने कुत्स की रक्षा की थी। मैंने वज्र द्वारा शुष्ण का संहार किया है। असुरों तथा दुष्कर्मियों को मैंने कदापि श्रेष्ठ नहीं कहा है। मैंने कुत्स के अधीन तुग्र तथा स्मदिभ को किया है। वेतसु देश कुत्स को दिया है। अपने यजमान को पुत्रवत् मानता हूँ। श्रुतवी की स्तुति पर मैंने मृगय राक्षस को उसके अधीन किया था। पडगृभि को सत्य के अधीन किया है। वेश को आयु के शासन में रखा है।

"मैंने वृत्र के समान नव वास्त्व तथा बृहद्रथ का वध किया था। उनके भविष्य को अन्धकारमय कर दिया था। सोमाभिषुत होने पर यजमान द्वारा जब मेरा आह्वान किया जाता है, तो मैं हिंसनीय शत्रुओं का तीक्ष्ण आयुधों द्वारा संहार करता हूँ। मैंने तुर्वसु और यदु को शक्तिशाली बनाया है। उन्हें प्रसिद्ध किया है। मैंने सात शत्रुओं के नगरों को नष्ट किया है। मैंने निन्यानवे नगरों का नाश किया है। मेरे पाश से कोई नहीं बच सकता। सिन्धु आदि सप्त नदियों को मैंने यथास्थान प्रवाहित होने के लिए प्रेरित किया है।"

अपनी स्तुति द्वारा स्वयं इन्द्र में उनका पुरातन भाव लौट आया। आसुरी वृत्ति तिरोहित हो गयी। वे पूर्ववत् इन्द्र हो गये।

सप्रगु प्रसन्न हो गये। असुर समूह उदास हो गया। प्रिय सखा से मिल कर इन्द्र के आह्लाद की सीमा न रही। वे अपनी प्रसन्नता में कह उठे, "मैं सब का स्रजक हूँ। मैं सब का अधिपति हूँ। मैं इन्द्र हूँ।"

असुर इन्द्र का पूर्व असुर विरोधी, दानव विरोधी, दैत्य विरोधी रूप देखकर, भयभीत हो गये और उनकी भयग्रस्त मुद्रा में डूबने लगा देवताओं का त्रास।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १ : ८४ : १३, १० : ४७ : ६, १० : ४० : ५०, १० : ५० : १, १० : ५१-५३

बृहद्देवता : ४ : ४६-६०

नोट : इस वैदिक कहानी में मित्र-धर्म का वर्णन मिलता है। साथ ही साथ एक महान व्यक्ति संगत के कारण किस प्रकार पतित हो जाता है, इसका भी प्रसंग आता है। मित्र अपने पतित मित्र का उद्धार कर उसे पुनः उसके स्थान पर पहुँचाता है। यह कहानी उपदेशात्मक है।

लुप्त अग्नि

वैश्वानर, गृहपति, यविष्ठ, पावक, सहःसुत अग्नि बन्धु वषट्कार द्वारा, वेद में उनका इन्द्र के पश्चात् द्वितीय स्थान होने पर भी छिन्न-भिन्न कर दिये गये। कहा जाता है, इस प्रकार छिन्न-भिन्न होने पर उनका गमन सौचीक देवों के पास हुआ। हरी दाढ़ी वाले अग्नि ने वहाँ जाकर ऋतुओं, जलों तथा वनस्पतियों में प्रवेश किया।

अग्नि के लुप्त होने पर यज्ञ बन्द हो गये। हव्य-वाहन अग्नि के अभाव में असुरों की शक्ति बढ़ गई। वे प्रबल होने लगे। देवताओं के लिए त्रास हो गये। असुरों और देवताओं का संघर्ष अवश्यम्भावी हो गया। संघर्ष हुआ। देवों ने संघर्ष में असुरों का वध किया।

असुर वध से समस्या हल नहीं हुई। अग्नि को प्राप्त करना आवश्यक था। उनका प्रकट होना आवश्यक था। देवता अग्नि देव को खोजने लगे।

× × ×

"अग्ने !" यम ने मर्त्यों के मित्र और देवता तथा मर्त्यों के माध्यम अग्नि को पहचान कर पुकारा।

यम तथा वरुण के पुकारने पर अग्नि रुके। उनकी प्रश्नपूर्ण दृष्टि वरुण और यम पर पड़ी। उस समय अग्नि अपने दसों स्थानों से अधिक तेजस्वी प्रतीत हो रहे थे।

"अग्ने ! आप प्रसन्न हों।" वरुण तथा यम ने अग्नि की मंगलकामना की।

अग्नि शान्त खड़े रहे।

"देवताओं के पास हमारे साथ चलने की कृपा कीजिए।" वरुण ने विनयपूर्वक कहा।

"वरुण !" ज्वालकेश अग्नि ने कहा, "होता का कर्म कठिन है। उस कर्म भय से मैं यहाँ आ गया हूँ।"

"महात्मन् !" यम ने कहा, "यज्ञ का कार्य कैसे सम्पन्न होगा ? सृष्टि कैसे चलेगी ?"

"वरुण !" आमर्त्य अग्नि ने कहा, "मेरी इच्छा है देवगण मुझे यज्ञ कर्म से छुट्टी दें। यही कारण है कि मेरा शरीर दस स्थानों में विभाजित हो गया है।"

"किन्तु अब आप लौटिए।"

"वरुण !" मैं चला गया था। मैंने अनेक कष्ट उठाये हैं।"

स्वर्णिम दन्त पंक्ति के मध्य दाहक अग्नि की अश्व-जिह्वा चल कर रुक गई।

"आइए चलिये।"

वरुण तथा यम अग्नि को सस्नेह साथ लेकर देवताओं के समीप चले। पाद विहीन, त्रिमस्तक, सप्तरश्मि, जाज्वल्यमान ललाट, घृत-नेत्र अग्नि यम-वरुण के साथ चले।

× × ×

"देव वृन्द ! आपकी बातें टालना कठिन है।" चारु नेत्र अग्नि भूमि की ओर देखने लगे।

देवों की प्रश्नपूर्ण दृष्टि अग्नि की शक्तिशाली नत ग्रीवा पर लगी। वे शंकित बोले :

"अमर्त्य ! आपका आदेश हम मानेंगे।"

"देव !" अग्नि के वृषभ तुल्य पुष्ट कण्ठ से गम्भीर स्वर निकला, "आप मुझे पञ्चजनों का होता स्वरूप स्वीकार करेंगे ?"

देवताओं ने एक दूसरे की ओर देखा। संकेत द्वारा परामर्श किया। वे बोले :

"स्वीकार है—घृतास्य !"

"किन्तु एक बात और है ?" अग्नि ने गगन में गमनशील उत्क्रोश पक्षी की ओर देखते हुए कहा :

"कहिए घृतपुष्ट ! देवता किंचित् आश्चर्यित होते हुए बोले।

"आप स्वीकार करेंगे।"

"अवश्य ! हरित केश !" देवताओं ने स्वीकृत मुद्रा में मस्तक हिलाते हुए कहा ।

"देवगण ! विविध हवियाँ मुझे प्राप्त होती रहें । मेरे भ्रातागण यज्ञों में रक्षित रहें । मैं आयुष्मान होऊँ ।"

"स्वीकार है—घृतमुख !"

"और—?" अग्नि किंचित आगे झुक कर बोले ।

"आज्ञा ! ज्वाल केश ?"

"प्रपाज, अनुपाज, घृत और सोम यज्ञ के बलि पशु का देवता मैं ही रहूँ ।"

"स्वीकार है ! हव्य-वाहन !" देवताओं ने अंजलिबद्ध कहा ।

"हाँ एक बात और—?" अग्नि ने विचारशील मुद्रा में कहा ।

"कृपया, कहिए देव !" देवताओं ने नम्र स्वर में कहा ।

"यज्ञ का देवता मैं ही रहूँगा ।"

"स्वीकार है अग्ने !" देवताओं ने स्वीकारोक्ति स्वर में कहा ।

"देवगण ! आनन्दित होकर आपके यज्ञों में होतृ कर्म का सम्पादन करूँगा ।" देवता प्रसन्न हो गये ।

"अग्ने ! आप जल में विशाल और गहरे आवरणों के साथ प्रतिष्ठित हुए थे । जात-वेदस् अग्ने ! देवताओं ने आपके एक-एक में अनेक रूपों का दर्शन किया है ।" देवताओं ने प्रांजलिभूत निवेदन किया ।

"देवगण !" अग्नि ने प्रश्न किया, "बताइये—वे देवता कौन थे, जिन्होंने मेरे विभिन्न रूपों का पूर्ण दर्शन किया है ? मित्र ! वरुण !! और मेरा तेजोमय देवपान का सिद्धकारक शरीर कहाँ है ?"

"अग्ने !" देवताओं ने निवेदन किया, "आप जात-वेदस् हैं । हम आपकी कामना करते हैं ।"

"मेरा निवास कहाँ है देवगण ?" अग्नि ने प्रश्न किया ।

"महात्मन् ! जल तथा औषधियों में आपका निवास है । यम ने आपको पहचाना है । आपकी भास्वर ज्योति गुप्त स्थानों से प्रकट होती है ।"

"वरुणदेव !" अग्नि ने कहा, "मैं होत्र से घबड़ा कर यहाँ आया हूँ । अतएव मेरा रूप जल तथा अन्य स्थानों में प्रवेश कर गया है । मैं उसका भार वहन करने के लिए उद्यत नहीं हूँ ।"

"अग्ने !" देवताओं ने कहा, "आप इस समय अन्धकार में हैं । यज्ञ की इच्छा मनु ने की है । अनुष्ठान का आयोजन भी हो चुका है । आप यहाँ

आकर हवियाँ प्राप्त कीजिए। हवि-कामना से देवताओं द्वारा व्याप्त मार्ग सरल बना कर शुभचिन्तक बनिये।"

"देवगण !" अग्नि ने कहा, "मेरे ज्येष्ठ भ्रातागण इस प्रकार कर्मों को करते थे, जैसे एक रथी अपने रथ से मार्ग को समाप्त करता है। उनका वध कर दिया गया है। जिस प्रकार श्वेत मृग धनुषधारी की प्रत्यंचा से भयभीत होता है, उसी प्रकार इस कार्य से मैं भय भावापन्न हो गया हूँ। यही कारण है कि मैं भय से यहाँ से बहुत दूर चला गया था।"

"अग्ने !" देवताओं ने निवेदन किया, "आप जात प्राणियों के ज्ञाता हैं। हम आपको यह जीवन देते हैं जो अमर्त्य है। जात वेदस् ! इस प्रकार दिये गए जीवन से आप मर नहीं सकेंगे। आप प्रसन्नतापूर्वक देवों का भाग हवि उनके पास लाइए।"

"देव !" अग्नि ने कहा, "यज्ञ का केवल मुझे प्रपज तथा अनपज भाग पूर्णतया दीजिए। मुझे घृत दीजिए। मुझे जल का भार अंश दीजिए। मुझे औषधियों का भार अंश दीजिए और मुझे दीर्घ जीवन दीजिए।"

"अग्ने !" देवताओं ने निवेदन किया। केवल आपके लिए प्रपजस तथा अनुजपस होगा। यज्ञ का प्रथम शेष तथा विपुल भाग आप ग्रहण करेंगे। यज्ञ का सब आहुति भाग आपका होगा। यह यज्ञ पूर्णतया आपका हो। विश्व की चारों दिशाएँ आपके सम्मुख नत होंगी।"

"विश्व देवताओ!" अग्नि ने विश्व देवताओं को सम्बोधन करते हुए कहा, "आपने मुझे होता नियुक्त किया है। यहाँ किन मन्त्रों का उच्चारण करना होगा, कृपया बताइए ? यज्ञ में अर्पित हव्य को किस प्रकार और किस मार्ग से आपके पास लाऊँ।"

"अश्विनीकुमारो !" अग्नि ने अश्विनिद्वय को सम्बोधित किया, "आप सर्वदा अध्वर्यु का कार्य करते हैं। आप सोम मन्त्र के समान तेजस्वी हैं। आप उनका पान करते हैं। देवताओं तथा मरुद्गणों ने मुझे होता नियुक्त किया है। अतएव यज्ञ निमित्त मैं बैठा हूँ।"

अग्नि ने किंचित ठहर कर पुनः कहा, "होता का कार्य क्या है ? यजमान के जिन द्रव्यों का होता हवन करता है, वह देवता प्राप्त करते हैं। प्रति दिन तथा प्रति मास यज्ञ होता है। मुझे हव्य वहन के लिए देवताओं ने नियुक्त किया है। किन्तु मैं यह कार्य कष्टसाध्य कठिन देख कर चला गया था।

"देवताओं ! आपने मुझे पुनः हव्य वहन कर्त्ता स्वरूप ग्रहण किया है।

यज्ञ के पाँच भाग हैं। तीन सवनों में सोम का अभिषव होता है। सात छन्दों में स्तुति की जाती है।

"देवगण ! मैं आपका उपासक हूँ। आप मृत्यु से मेरी रक्षा कीजिए। मुझे सन्तान दीजिए। मैं इन्द्र के हाथों में वज्र ग्रहण करता हूँ। उस समय वे शत्रु सेना को पूर्णतया पराजित करते हैं। तेंतीस और उन्तालीस देवों ने मेरी परिचर्या की है। उन्होंने घृत से मुझे सिंचित किया है। यज्ञ में कुश विस्तृत कर उस पर होता रूप में प्रतिष्ठित किया है।"

"अग्ने !" देवताओं ने निवेदन किया, "आपका शुभ आगमन हुआ है। आप पूर्णांग हैं। आपके समान कोई यज्ञ नहीं कर सकता। आप मध्य वेदी पर प्रतिष्ठित होइए। हमारे लिए यज्ञ सम्पन्न कीजिए।"

अग्नि यज्ञ वेदी के मध्य प्रतिष्ठित हुए। देवताओं ने हर्षनाद किया। पूजनीय देवताओं निमित्त शीघ्र यज्ञ सम्पन्न करने का प्रयास किया जाने लगा। अतएव अग्नि ने यज्ञ-सामग्री का निरीक्षण किया।

"अग्ने !" आप देवताओं के लाने वाले सब कार्यों को कृपया पूर्ण कीजिए। हमने अग्नि स्वरूप यज्ञ की जिह्वा को प्राप्त कर लिया है। महात्मन् ! आपका अविनाशी गौ स्वरूप यहाँ आगमन हुआ है। आपने देवताओं के आह्वान का आदर किया है।" देवताओं ने विनम्र स्वर में कहा।

"देवगण ! जिन श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा राक्षसों को हम पराजित कर सके हैं, उन्हीं श्रेष्ठ स्तोत्रों का उच्चारण किया जाय।"

"हे पंचजन ! हे मनुष्यो !!" अग्नि ने पंचजनों को सम्बोधित करते हुए कहा, "आप अन्न खाते हैं। आप यज्ञ करते हैं। हमारे इस यज्ञ का कार्य सम्पादन कीजिए। हवियों निमित्त प्रकट हुए यज्ञार्ह देवता यज्ञ की परिचर्या करें। पाप से हमारी पृथ्वी एवं अन्तरिक्ष की रक्षा करें।"

"अग्ने ! देवताओं ने कहा, "आप यज्ञ की वृद्धि करते हुए सूर्य मण्डल में गमन कीजिए। श्रेष्ठ कर्मों द्वारा जिन ज्योतिर्मय भागों को पाया जाता है, आप उनके रक्षक होइए। आप पूजनीय होकर देवत्ताओं को यज्ञ में आगमन निमित्त बुलाइए। स्तोताओं के कार्यों को निर्विघ्न सम्पन्न कीजिए।"

"सोम पात्र देवगण !" अग्नि ने कहा, "आप अश्व की रश्मियों (लगाम) को स्वच्छ कीजिए। रथ में अश्वों को योजित कीजिए। उन्हें सुसज्जित कीजिए। आपके रथ आठ सारथियों के स्थान वाले हैं। उन्हें सूर्य के रथ के सहित यज्ञ में लाइए। देवगण इस रथ द्वारा गमन करते हैं।"

"देवतागण !" अग्नि ने कहा, "अश्मन्वती नाम्नी नदी प्रवाहित है। इसे

पार कर पहुँचिए । आपकी उपस्थिति के कारण दुःखों से हमें मुक्ति मिलेगी । आपके द्वारा नदी पार कर सकेंगे । अन्न रूप श्रेष्ठ धन प्रदान करेंगे ।"

प्रकट अग्नि की अस्थियाँ देवदारु वृक्ष हो गईं । गुग्गुल उनका मेद तथा मांस हुआ । उनके स्नायु सुगन्धित तेजन हुए । उनका शुक्र रजत तथा कंचन हुआ । उनके शरीर के रोम काश हुए । कुश उनका केश हुआ । कर्म उनका नख हुआ । अवका उनकी अंतड़ियाँ हुईं । शर्करा और सिकता उनकी मज्जा हुईं । उनके रक्त तथा पित्त विविध धातुएँ गेरु आदि जैसे बन गये ।

अपनी पूर्ण गरिमा में अग्नि ने प्रकट चिर युवा रूप से हवि ग्रहण करना आरम्भ किया । वेद की ध्वनि से वायु मण्डल पुनः पूर्ण हो गया ।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १ : ६६ : ८, १ : १४३ : ५, ३ : १ : १८, ८ : १०२, ६ : १०६, ६ : १०६, १० : ५१ : ६, १० : ५१-५३, १० : ५३ : ४-६, १० : ५४-५५, १० : ५५ : ५, १० : ७६-८०, १० : १४०, १० : १४१

वृहद्देवता : ७ : ६१–८२

नोट : अग्नि के स्वरूप, भेद तथा उनके सन्दर्भ में यज्ञ का वर्णन आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक पीठिका के साथ एक रूपक द्वारा किया गया है ।

सुवन्धु

इक्ष्वाकु वंशीय रथ प्रोष्ट असमाति एक राजा थे। उनके पुरोहित अत्रियों के मण्डल में द्विपदों के ऋषि थे। वे बन्धु आदि भ्राता थे। राजा तथा पुरोहितों में कलह उत्पन्न हो गया। राजा ने कलह को समाप्त करना चाहा। कलह-शान्ति निमित्त पुरोहितों को दूर करना अच्छा समझा। उन्हें पौरोहित्य पद से हटा दिया।

बिना पुरोहित के धार्मिक कार्य सम्पादन कठिन था। अतएव राजा ने किरात तथा आकुली दो असुरों को पुरोहित नियुक्त किया। असुर पुरोहित मायावी थे। राजा ने उन्हें पुरोहित कार्य के लिए वरिष्ठ समझा।

सुवन्धु आदि गोपायन वंशीय थे। वशिष्ठ कुल के गोत्रकार थे। वे ऐक्ष्वाक असमाति के पुरोहित थे। परन्तु पौरोहित्य कार्य से राजा के हटा देने पर क्रुद्ध हो गये थे। इन्होंने राजा के विरुद्ध मंत्र-तंत्र का प्रयोग किया।

नवीन नियुक्त असुर पुरोहितों को सुवन्धु की यह बात बुरी लगी। उन्होंने निश्चय किया कि सुवन्धु का वध कर दिया जाय।

गोपायनों के विरोधी किरात तथा आकुली नवीन पुरोहित थे। उन्होंने पूर्व पुरोहितों का अभिप्राय जान लिया। अपनी माया तथा योग-बल से कपोत बन गये। सुवन्धु पर आक्रमण किया। सुवन्धु आहत हो गये। आघात दुःख को सहन नहीं कर सके। मूच्छित होकर गिर पड़े।

कपोत स्वरूप उन असुर पुरोहितों ने सुवन्धु के प्राणों को नोच लिया। तत्पश्चात् राजा असमाति के समीप गये।

× × ×

गोपायन भ्राताओं ने सुवन्धु को मृत देखा। भ्रातृ वियोग से वे कातर हो गये। प्राण विहीन सुवन्धु की काया देख वे विचलित हो गये। विचार करने लगे। निश्चय किया, सुवन्धु को पुनः जीवित करना चाहिए।

सुवन्धु के कल्याण निमित्त वे तत्पर हो गये। सुवन्धु को पुनर्जीवित करने के लिए वे आसन लगा कर बैठ गये। गोपायनों ने सह जप आरम्भ किया :

"इन्द्र ! हम सुमार्गगामी बनें। कुपथ की ओर न जायें। सोमवान यजमान के गृह से दूर न रहें। शत्रु द्वारा हम पराजित न हो सकें। अग्नि पुत्र-स्वरूप होने पर भी, देवताओं के समान विशाल हैं। अग्नि के द्वारा यज्ञ कर्म सम्पन्न किया जाता है। उन अग्नि देव को हम प्राप्त कर यज्ञ करें। पितरों के सोम से मन को आहूत करते हैं। हम पितरों के स्तोत्र से मन का आह्वान करते हैं।

"सुवन्धु ! भ्राता !! तुम्हारे मन का पुनः आगमन हो। तुम अपने बल को कर्म द्वारा प्रकट करो। जीवनपर्यन्त सूर्य का दर्शन करते रहो। पूर्वज मन तथा देवताओं को पुनः प्राप्त करायें। प्राण तथा उसकी विभूतियों को प्राप्त करें। सोम ! मन को शरीर में हम प्रतिष्ठित करते हैं।"

जप करने के पश्चात् गोपायन ने सुवन्धु के मन आवर्त्तन निमित्त सूक्त का स्तवन किया :

"सुवन्धु ! हम विवस्वत पुत्र यम के पास से तुम्हारे मन को लौटा लाते हैं। सुवन्धु !! इस संसार में रहने के लिए जीवित हों ! दूर गये तुम्हारे मन को लौटाते हैं। तुम इस संसार में रहने के लिए जीवित हो। चारों दिशाओं में झुक जाने वाले तुम्हारे मन को दूर लोकों से लौटा लाते हैं। तुम संसार में रहने के लिए जीवित हो। सुवन्धु ! दूरस्थ प्रदेश में गये तुम्हारे मन को हम लौटा लाते हैं। संसार में रहने के लिए तुम जीवित हो। तुम्हारा जल सम्पन्न मन दूरस्थ समुद्र में चला गया है। उस मन को लौटा लाते हैं। तुम संसार में रहने के लिए जीवित हो। बन्धु ! आपका जो मन चारों ओर फैली रश्मियों में स्थित हो गया है, उसे लौटा लाते हैं। क्योंकि तुम संसार में रहने के लिए जीवित हो।

"सुवन्धो ! वृक्षादि तथा दूरस्थ जल में हम तुम्हारे गये हुए मन को लौटा लाते हैं। तुम संसार में रहने के लिए जीवित हो। उषा एवं सूर्य में रमे हुए तुम्हारे मन को लौटा लाते हैं। संसार में रहने के लिए तुम जीवित हो। दूरस्थ पर्वतों में रमे तुम्हारे मन को लौटा लाते हैं। संसार में तुम रहने के लिए जीवित हो। इस विश्व में अत्यन्त दूर गये तुम्हारे मन को लौटा लाते हैं। संसार में रहने के लिए तुम जीवित हो। यहाँ से परावत गये तुम्हारे मन को लौटा लाते हैं। संसार में रहने के लिए तुम जीवित हो। तुम्हारा मन भूत, भविष्यत् आदि जिस काल में होगा, हम उसे लौटा लाते हैं। तुम संसार में रहने के लिए जीवित हो।"

गोपायनों ने भेषजार्थ तथा निर्ऋति को दूर करने के लिए निम्नलिखित तीन ऋचाओं का जप किया :

"रथारूढ़ व्यक्ति चतुर सारथी के कारण आश्वस्त रहता है। उसी प्रकार सुवन्धु की आयु वृद्धि हो। जिनकी आयु क्षीण होती है, वे अपनी आयु की वृद्धि की कामना करते हैं। सुवन्धु ! तुम्हारे समीप से निर्ऋति दूर हो। परमायु प्राप्ति निमित्त हम सामगान में लीन होते हैं। यज्ञ हेतु अन्नादि हव्य एकत्रित करते हैं। निर्ऋति देव का हमने स्तवन किया है। वे हमारे सब पदार्थों से प्रसन्न होते हुए, हमसे दूर चले जायें। आकाश पृथ्वी से ऊँचा है। शत्रुओं को बल द्वारा पराभूत करते हुए उच्च स्थान हम प्राप्त करें। पर्वत जिस प्रकार मेघ की गति को अवरुद्ध कर देता है, उसी प्रकार शत्रुओं की गति रोकने में हम समर्थ हों। निर्ऋति ! देव !! हमारी स्तुति श्रवण कर आप दूर चले जाइये।"

गोपायनों ने सोम की स्तुति की :

"सोम ! उदित सूर्य का हम नित्य दर्शन लाभ करें। सुखपूर्वक वृद्धावस्था व्यतीत करें। निर्ऋति हमसे दूर हो जाय। हमें मृत्यु मुख में मत झोंकिए।"

गोपायनों ने असुनीति की स्तुति की :

"असुनीति ! आप अपने मन को हमारी ओर कीजिए। श्रेष्ठ परमायु हमारे जीवन के लिए प्रदान कीजिए। जहाँ तक सूर्य की रश्मियाँ पहुँचती हैं, वहाँ तक का निवासी हमें बनाइये। हम आपकी पुष्टि एवं प्रसन्नता निमित्त घृताहुति देते हैं। असुनीति ! प्राणों को हमारे पास लाइये। नेत्र पुनः प्रदान कीजिए। हम भोगों में समर्थ हो सकें। हमारा कभी नाश न हो। हमारा सर्वदा मंगल होता रहे। चिरकाल तक सूर्य का दर्शन करते रहें।"

सुवन्धु की शान्ति निमित्त गोपायनों ने स्तवन किया :

"आकाश एवं अंतरिक्ष पुनः प्राण प्रदान करें। पृथ्वी पुनर्जीवित करे। सोम शरीर को पुनः बनावे। पूषा श्रेष्ठ मंगलप्रद वाणी प्रदान करे। उनके द्वारा हम अपना हित साधन कर सकें।"

गोपायनों ने दोनों लोकों की स्तुति की :

"रोदसी ! तुम सुवन्धु का मंगल करने वाली हो। समस्त अकल्याणों को स्वर्ग तथा भू लोक दूर भगाये। सुवन्धु का वे अहित न करें। स्वर्ग की दो-तीन औषधियाँ हैं, उनमें एक पृथ्वी पर विचरण करती है। ये औषधियाँ सुवन्धु के प्राणों को पुष्ट करें। समस्त अकल्याणों को आकाश एवं पृथ्वी दूर करें। वे सुवन्धु का किसी प्रकार अहित न करें। इन्द्र ! उस बैल को जो उशीनर की

पत्नी के शकट को खींचता है, प्रेरणा दीजिए। समस्त अकल्याणों को द्यौ-पृथ्वी दूर करें। सुवन्धु का अहित न हो सके।"

गोपायनों ने असमाति की स्तुति की :

"असमाति ! आपका राज्य श्रेष्ठ है। आपके देश के लोक आपकी प्रशंसा करते हैं। हम विनीत भाव से वहाँ गये थे। शत्रुनाशक आप तेजस्वी हैं। जिस प्रकार रथारूढ़ होने पर अभिप्रायों की पूर्ति होती है, उसी प्रकार राजा के समीप पहुँचने पर कार्यों की सिद्धि हो जाती है। आप भगीरथ वंशीय हैं। लोक का उत्तमता से पालन करते हैं। आप शक्तिशाली हैं। जिस प्रकार सिंह महिषों को सरलतापूर्वक हत कर देता है, उसी प्रकार आप मनुष्यों को बिना आयुध के ही नष्ट कर देते हैं। शत्रुओं का दलन-कर्त्ता, ऐश्वर्यशाली इक्ष्वाकु, रक्षण कार्य में ख्याति प्राप्त है। उसकी रक्षा में स्थित पंचजनों को स्वर्गीय सुख की उपलब्धि हो।"

तत्पश्चात् गोपायनों ने इन्द्र के लिए आशीष स्तवन किया :

"इन्द्र ! जगत के दर्शनार्थ जिस प्रकार सूर्य को आपने आकाश में रथारूढ़ किया है, उसी प्रकार रथी राजा असमाति को उनके नेतृत्व में चलने वाले श्रेष्ठ वीरों को उन्हें दीजिये।"

उनकी माता ने भी राजा की स्तुति की :

"राजन् महर्षि अगस्त्य के धेवतों के लिए दो रक्तवर्ण अश्वों को रथ में योजित कीजिए। उन व्यक्तियों पर विजय प्राप्त कीजिए, जो लोभी तथा अदानी हैं।"

राजा गोपायनों की स्तुति सुन कर उनके पास आये।

× × ×

अत्रियों ने सुवन्धु के प्राण निमित्त अग्नि की स्तुति की। अग्नि प्रकट हुए। उनकी पूजा स्तुति करते हुए गोपायनों ने निवेदन किया :

"अग्ने ! सुवन्धु का प्राण कहाँ है ?"

"सुवन्धु की आत्मा अन्तरिक्ष में स्थित है।" अग्नि ने उत्तर दिया।

"वे कैसे हैं ?" गोपायनों ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"हितार्थी सुवन्धु रक्षित हैं।" अग्नि ने कहा।

"भगवन् ! उनका प्राण लौटा दीजिए।"

"तथास्तु !"

गोपायनों ने अग्नि को प्रणाम किया। उनकी स्तुति की। उनकी पूजा की। अग्नि ने प्रसन्न होकर कहा :

"सुवन्धु जीवित रहेगा।" कहते हुए प्रसन्न पावक स्वर्ग चले गये।

गोपायनों ने सुवन्धु के प्राण का आह्वान किया :

"अग्ने ! प्राणदातास्वरूप यहाँ पर आपका आगमन हुआ है। आप पिता-माता तुल्य हैं। सुवन्धु ! तुम्हारा शरीर यहाँ पड़ा है। तुम इसमें प्रवेश करो।"

गोपायनों ने सुवन्धु के भूमि पर गिरे शरीर को देखते हुए चेतनार्थ सूक्त गान किया :

"सुवन्धु ! अग्नि ने तुम्हारे मन को उसी प्रकार ग्रहण किया है, जिस प्रकार रथ धारणार्थ रस्सी से दो लकड़ियों को बाँधते हैं। तुम्हारी मृत्यु तुम से दूर होगी। तुम जीवित होगे। मंगलमय स्वरूप होगे। पृथ्वी जिस प्रकार विशाल वृक्षों को धारण करती है, उसी प्रकार अग्नि ने तुम्हारे मन को धारण किया है। मृत्यु तुम से दूर भागे। तुम जीव धारण करोगे। मंगलमय रूप होगे। विवस्वान पुत्र यम से तुम्हारे मन का हमने अपहरण किया है। तुम्हारी मृत्यु दूर होगी। तुम जीवन धारण करोगे। मंगलमय रूप होगे। स्वर्ग के निम्न स्थान अन्तरिक्ष में वायु गतिशील रहता है। सूर्य अपना मुख निम्न कर ताप प्रदान करते हैं। गायों के स्तन से दूध निम्न गामी होकर दुहा जाता है। सुवन्धु ! इसी प्रकार तुम्हारा अमंगल निम्न गामी है।"

सुवन्धु में चेतना प्रवेश करने लगी। गोपायनों ने प्रसन्न होकर सुवन्धु के शरीर का पृथक्-पृथक् स्पर्श करते हुए ऋचा का गान किया :

"सौभाग्यशाली हाथ भेषज तुल्य है। यह स्पर्श द्वारा मंगल प्रदान करता है।"

सुवन्धु का शरीर प्राणमय होकर जीवित हो गया। गोपायन प्रसन्न हो गये। उनकी प्रसन्नता में असुर पुरोहितों ने देखा अपने पौरोहित्य का अवसान।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : ५ : २४, १० : ५७ : १, १० : ५८, १० : ५६,
१० : ६० : ७
शतपथ ब्राह्मण : १ : १ : ४ : १४
पंचविंशत ब्राह्मण : १३ : १२ : ५
जैमिनीय ब्राह्मण : ३ : १६७
बृहद्देवता : ७ : ८२-८८

नोट : सुदूर वैदिक काल में सुर तथा असुरों में विशेष भेद नहीं था। इस गाथा से प्रकट होता है कि असुर भी पुरोहित कार्य के लिये नियुक्त किये जाते थे। असुरों का देश वर्तमान असीरिया अर्थात् सीरिया तथा उसके समीपवर्ती भूखण्ड थे। आर्य जाति सीरिया के पूर्व और उत्तर में आबाद था। दोनों जातियों का मूल स्रोत एक ही था। कालान्तर में दैशिक तथा सैद्धान्तिक भेद होने के कारण वे अलग होकर दो जातियाँ बन गयीं।

उनके मुख्य भेद का आधार था आत्मा विषयक ज्ञान और विश्वास। असुर मानते थे कि शरीर ही आत्मा है। शरीर के अवसान के साथ आत्मा भी मर जाती है। सुर मानते थे कि शरीर और आत्मा में भेद है। शरीर के नाश के साथ आत्मा का नाश नहीं होता। यही कारण है सीरिया तथा उसके समीपवर्ती देशों में यहूदी, ईसाई तथा उनकी परम्परा का अनुकरण करने वाले मुसलमान आत्मा के पुनर्जन्म तथा कर्म सिद्धान्त के विरोधी हो गये। एक नवीन परम्परा चलाई, जिसकी पूर्णता शामी किंवा सेमिष्क संस्कृति में प्राप्त होती है।

प्रस्तुत गाथा में आत्मा के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। शरीर से आत्मा के निकल जाने पर पुनः वह मृत शरीर में लाई जा सकती है। मृत को जीवित किया जा सकता था। वह विधि क्या थी, अनुसन्धान की आवश्यकता अपेक्षित है। इसमें केवल आभास मात्र मिलता है।

१—असमाति—राथ प्रौष्ठ, रथप्रोष्ठ वंशीय इक्ष्वाकु राजा।

२—असुनीत—असु का अर्थ दैहिक शक्ति है। इस शब्द का तात्पर्य अग्नि द्वारा मृत्यु के पश्चात् आत्मा का लोक एवं परलोक के मध्य पथ-प्रदर्शन है। कोकणी भाषा में यह शब्द यम के लिए प्रयुक्त होता है।

३—आकुली—एक देवशास्त्रीय पुरोहित।

४—किरात—पर्वतीय निवासी एक जाति, जिसे पार्वत्य कह सकते हैं। इन्हें हीन वर्ण क्षत्री भी कहा गया है। एक देश का नाम भी किरात है। नेपाल के पूर्व (मोरंग) में किरात नामक जाति आज भी वर्तमान है।

५—गोपायन—गोप का वंशज। गोपा शब्द गायों के रक्षक के रूप में व्यवहृत किया गया है। गोपालकों के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। साधारण रूप से रक्षक रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है। वशिष्ठ कुल के गोत्रकार थे।

६—रथ प्रोष्ठ—एक राजवंश।

७—रोदसी—द्यु तथा पृथ्वी लोक के लिये द्विवचनीय शब्द है।

८—सुबन्धु—इस शब्द को व्यक्तिवाचक तथा कहीं केवल संज्ञा के रूप में लिया गया है। शाब्दिक अर्थ उत्तम मित्र है, पर एक वैदिक सूक्तद्रष्टा हैं।

पुरुरुवा-उर्वशी

"देवांगने !"

वह संकुचित हुई ।

"गन्धर्विणी !"

वह विनत हुई ।

"अप्सरे !"

वह शील-भार से दबी ।

"रूपसी !"

वह रोमांचित हुई ।

"उर्वशी !"

वह कम्पित हुई ।

निर्मल नर-लोक-विमोहन-रूप पुरुरुवा की ओर चारु-नेत्रा उर्वशी के सलज्ज अनुरागपूर्ण लोचन नहीं उठ सके ।

"चिर-यौवने !"

उर्वशी के कमनीय कलेवर पर पुरुरुवा के कमल नयन फैलने लगे ।

"नृपति !" उर्वशी की कंठवीणा झंकृत हुई । यौवना की आँखों की तृष्णा पुरुषश्रेष्ठ मूर्त्तमान कन्दर्पस्वरूप पुरुरुवा के यौवन पर थिरकी ।

"वरारोहे !" पुरुरुवा नारी की रूप-माधुरी पर रीझा ।

उर्वशी के नील-लोचन भूमि की ओर लगे । कुंकुम-तिलक की लालिमा सुघर कपोलों पर छिटकी । गात्र शिथिल हुए । शैल-अधित्यका तुल्य स्थूल उन्नत नितम्ब किंचित हिले । कटिप्रदेश से अनिंद्य उर्वा पर झूलती मेखला झूली और उदर त्रिवली में डोल गया त्रैलोक्य ।

"वरानने !" पुरुरुवा के अधर किंचित विस्तृत हुए—"और ?"

उर्वशी का अंग हो गया रोमांचित । कोमल मृणाल पर झुके कमल की तरह,

कमल-मुख, शुभ्र ग्रीवा पर हुआ नत।—और उर्वशी के गम्भीर नाभि-जलावर्त में युवक हृदय लगा डूबने।

उर्वशी की कमनीय काया से उद्भूत पद्म-किंजल्क की सुरभि में पुरुरवा की प्राण-वायु लगी मिलने। पुरुरवा किंचित बढ़ा आगे। फिर हटा पीछे। युवती गन्ध में मादकता जगने लगी।

सुनत, वक्राकार, पाद्र-पदतल की मांसल-सन्धि पर स्थित नारी कलेवर झुका पीछे। पादांगुलियाँ फैलीं। भूमि-तल पर, फिर संकुचित हुईं, फिर फैल गईं। ताम्रवर्ण-रंजित पददल शरीर भार से दबा। कूर्मपृष्ठौनत पर राजती किंकणी गतिशील हो कर स्थित हुई। कम्पित संगीत स्वर उर्वशी के कण्ठ से मुखरित हुआ—

"राजन्!" कहते-कहते हटात् उर्वशी के कमल-लोचन भूतल पर लग गए। वाक् कण्ठ से चल कर कण्ठ में डूब गया।

"ललाम भूते!" पुरुरवा की आँखें नारी के निखरते दिव्य सौन्दर्य का चयन करतीं, सहसा नीरव गगन की ओर उठ गईं।

उर्वशी चुप थी।

"सुभगे!" पुरुरवा उर्वशी के चन्दन-चर्चित शरीर की सुगन्धि का अनायास वास लेते हुए बोला—"इन्द्र-सभा का मार्ग क्या भूल गईं?"

उर्वशी ने सहसा मुख मोड़ लिया। कटि पर हो गई वह और नत। मुक्ता-माला झूली। मेखला आ गई खिसक कर दोनों उरुओं के मध्य।

"सुश्रोणि!" पुरुरवा ने सस्मित कहा, "क्या मेरे किसी प्राक्तन पुण्य का उदय हुआ है?"

"नर-शार्दूल!" उर्वशी ने महातेजस्वी पुरुरवा के स्वस्थ शरीर पर दृष्टि-पात करते हुए कहा, "आपके गुणों पर कौन नहीं मोहित होगा?"

पुरुरवा हो गया प्रफुल्लित। उर्वशी के अंगराग से उठती सुरभि में भूलने लगा अपनी चेतना। काम-प्रत्यंचा की हुई ध्वनि। कुसुम-वाण आहत, पुरुरवा के मुख पर रक्तिम प्रभा बिखर गई।

"कोमलांगी! तुम्हारे अनुराग का पात्र?"

उर्वशी के अधरों पर प्रसन्न-रेखा विकसित हुई। चिबुक किंचित हिले।

"कल्याणी! मैं यशस्वी हो सकूँगा?"

उर्वशी की पलकें उठीं।

"हेम-मालिने!" कामिनी के कमनीय निर्मल नेत्रों में पुरुरवा देखने का प्रयास करते हुए बोला, "सहवास में किस सुख की कमी हो सकती है?"

उर्वशी का मुख-मण्डल ग्रीवा पर थोड़ा उन्नत हुआ। उसकी वेणी से भूमि पर गिरे शुभ्र पुष्प पुरुरवा की याचना का रूप देख कर लज्जित हुए। पुरुरवा का मस्तक स्वतः नत हो गया। वह कुछ खो चुका था।

"नर-पुंगव !" उर्वशी के कटाक्ष पुरुरवा की तरफ चले, "गन्धर्वों का साथ त्याग कर आई हूँ। मानुष-लोक में।"

"मीनाक्षी !" पुरुरवा ने मधुर वाणी में कहा, "सर्वस्व तुम्हारा है। तुम्हें यहाँ आने का कभी दुःख नहीं होगा।"

"महारथे !" उर्वशी में करने लगी गम्भीरता प्रवेश, "मैं गन्धर्विणी हूँ।"

"ललितांगे !" पुरुरवा ने कहा, "तुम्हारे साथ विवाह-संस्कार···" पुरुरवा कहते-कहते रुक गया।

"वीरवर ! विवाह संस्कार है। वह मुक्ति के साथ बन्धन है।" उर्वशी ने मुसकरा कर कहा।

"मानिनी !" पुरुरवा ने उत्साह से कहा, "तुम्हारी बातें मानूँगा।"

"राजेन्द्र ! सचमुच ?" विजयिनी उर्वशी मुसकराई।

"निश्चय वनिते !" पुरुरवा के तृषित नेत्रों ने उर्वशी को देखा।

उर्वशी की आँखें पुरुरवा को तोलने लगीं। पुरुरवा ने संक्षिप्त, किन्तु स्पष्ट बलवती वाणी में कहा :

"अप्सरे ! यदि तुम्हारा अनुराग मूल्य चाहता है तो मैं दूँगा।"

"भूपते ! स्त्री के साथ उपचार की एक प्रक्रिया होती है।"

"तन्वी ! उपचार का मैं स्वागत करूँगा।" पुरुरवा ने स्थिर स्वर में कहा।

"यशस्विन् ! प्रतिज्ञा करोगे !" उर्वशी के स्वर में प्रगल्भता थी।

"गन्धर्विणी ! मैं ऐल हूँ। मैं क्षत्रिय हूँ।" पुरुरवा ने गर्वपूर्वक कहा।

"ऐल।" उर्वशी के स्वर में व्यंग्य था—"मानव ! आप का कुल, गोत्र और वंश जानती हूँ।"

पुरुरवा किंचित हुआ लज्जित।

"नृपवर !" उर्वशी ने कहा, "यदि आप तीन संविद् में बँध सकें तो ?"

"बोलो उर्वशी ! संविद् में बँधता हूँ।" पुरुरवा ने दृढ़ स्वर से कहा।

"पृथ्वीपते ! पहली शर्त्त यह है आप दिन में तीन बार से अधिक मेरा आलिंगन नहीं करेंगे।"

"स्वीकार है ! अन्तरिक्षवासिनी !" पुरुरवा उर्वशी की ओर देख कर हँस दिया, "तुम्हारी यह त्रैकालिक संविद्।"

"हाँ ! राजन् !" उर्वशी ने स्थिर स्वर से कहा।

"और !" पुरुरवा ने उस की ओर चुभती निगाहों से देखते हुए मुसकरा कर पूछा ।

"मेरी इच्छा के विपरीत मेरे साथ आप शयन नहीं करेंगे ।"

उर्वशी पुरुरवा की प्रतिक्रिया लक्ष्य करने लगी ।

"यह भी स्वीकार है, जलीय देवी !" पुरुरवा उर्वशी के अत्यन्त समीप आ गया, "और क्या तुम्हारी संविद् है ?"

"आप का नग्न दर्शन होते ही मैं आप का त्याग कर दूँगी ।" उर्वशी का स्वर स्पष्ट और स्थिर था ।

पुरुरवा उर्वशी के श्वास-निःस्वास का, सामीप्य के कारण, अनुभव करने लगा । नर-नारी के श्वास-निःश्वास एक-दूसरे से मिलने लगे ।

"यदि कोई संविद् भंग हो जाए तो ?" पुरुरवा ने उर्वशी के मुख के पास अपना मुख ले जा कर मुसकराते हुए पूछा ।

"मैं आप का त्याग कर दूँगी ।" उर्वशी गम्भीर नील-गगन में गमनशील वक-पंक्तियों की ओर देखती हुई बोली ।

पुरुरवा उदास हो गया । पीछे हट गया । शुचिस्मिता उर्वशी ने पूछा, "अनघ ! क्या हम सहवास का सुख प्राप्त कर सकेंगे ?"

पुरुरवा पुनः उर्वशी के समीप खिंच आया । श्वास-प्रश्वास परस्पर एक-दूसरे का स्पर्श करने लगे । उर्वशी की कूर्पर-वर्ण धवल काया से उद्भूत सुरभि में पुरुरवा भिन गया । आँखों में रूपाजीवा उर्वशी का रूप छलछला आया । तीव्र कामना ने कंठ शुष्क कर दिया ।

उर्वशी की मृदु मरुत प्रवाह से भरती सूक्ष्म ओढ़नी पुरुरवा का स्पर्श करने लगी । वह वस्त्राम्बर में दुनिया से छिप कर उर्वशी के साथ एकाकार हो जाना चाहता था ।

प्रेमियों की प्रम अभिलाषा पूर्ण होते देख कर वायुदेव प्रसन्न हुए । गतिशील हुए । न्यग्रोध वृक्ष से ध्वन्यात्मक संगीत निनादित हुआ । तरु-पल्लव दो हृदयों के मिलन में मिल कर गाने लगे । प्रणय के इस उषाकाल में सूर्य-रश्मियों पर मुसकराता हल्का तोमद दल आ गया । नील-गगन में किसी देवता द्वारा भेजी माला तुल्य हंस-पंक्ति उड़ चली । पुरुरवा की चेतन-शक्ति अचेतन से पुनः चेतन हुई । उसने आवेश में कहा, "अप्सरे ! तुम्हारी संविद् मैं स्वीकार करता हूँ ।"

"नरश्रेष्ठ ! आप उन का अक्षुण्ण पालन करेंगे ?" उत्फुल्लमना, काम, पुत्तली, उर्वशी अपनी विजय पर हर्षित हो गई ।

"निश्चय !" पुरुरुवा ने क्षितिज की ओर अग्रशील गगनगामी हंस-पंक्ति की ओर देखते हुए कहा ।

सूर्य-रश्मियाँ मेघाम्बर से निकल आईं । जगत् ने देखा, अमानुषी का मानुष के साथ प्रणय ।

"ऐल ! मैं आप का विश्वास करती हूँ ।" सोमवंश के मूलपुरुष सौन्दर्य मूर्त्ति पुरुरुवा से एकाकार होने की कल्पना में उर्वशी प्रसन्न हो गई ।

× × ×

"उर्वशी ! प्रतिदिन केवल घृत के एकाहार करने का तुम्हें आग्रह क्यों है ?" पुरुरुवा ने पूछा ।

"राजन् !" उर्वशी ने गम्भीरतापूर्वक कहा, "घृत अग्नि है । अग्नि जीवन है । अग्नि यज्ञ है । अग्नि से जगत उत्पन्न हुआ है । अग्नि में हम मिलेंगे । अग्नि हमें देवलोक से पितृलोक में पहुँचा देता है । परलोक-गमन का माध्यम है । अग्नि मृतक को उच्चतम अमरत्व पद तक पहुँचाता है । अग्नि व्योम के साथ मृतक द्युलोक पहुँचाता है । अग्नि पुण्यात्माओं के लोक में हमें रख देता है ।"

पुरुरुवा ने अग्निदेव का मानसिक स्तवन करते हुए पूछा, "प्रिये ! तुम दो मेषों को क्यों बाँध रखती हो ?" पुरुरुवा ने शयन-कक्ष में दो बँधे मेषों को देखते हुए पूछा ।

"पुरुषश्रेष्ठ !" उर्वशी ने कहा, "प्राण और अपान वायु प्राणी मात्र के जीवन का अवलम्बन है । यदि एक का अभाव हो जाए?—"

"यदि एक का अभाव हो जाए ?" पुरुरुवा की प्रश्नपूर्ण दृष्टि उर्वशी के गम्भीर मुखमण्डल पर स्थित होने लगी ।

"प्राण और अपान वायु से शरीर चलता है । एक के वियोग पर दूसरा स्वयं साथ त्याग देता है । हम मृतक हो जाते हैं ।"

"उर्वशी !" पुरुरुवा ने उर्वशी से सस्नेह पूछा, "तुम ने नग्नावस्था की संविद् क्यों रखी है ?"

"राजन् !" उर्वशी ने विवेक-मुद्रा से कहा, "हमारा पार्थिव-शरीर आत्मा पर आवरण मात्र है । इस आवरण के हटते, नग्न होते ही मनुष्य भूत बन जाता है, मिट्टी हो जाता है । आत्मा पर रहने वाले इस आवरण के कारण हम जीवित कहे जाते हैं ।"

"गन्धर्वगिणी ! तुम्हारी—?"

"सुनो ! राजन् !! लज्जावरण खण्डित होने पर मनुष्य में क्या शेष रह जाएगा ?"

"—और कहूँ ? केवल मैथुन-काल में मनुष्य अपने नग्न रूप में रहता है। उस का वह स्वरूप अन्य समयों में अग्राह्य है। यही पुरुषों के साथ स्त्रियों के जीवन-यापन का उपचार है।"

"वशिष्ठमाते ! तुम्हारी बातें रहस्यमयी हैं।"

'पृथ्वीपते !" उर्वशी ने मेघों की ओर देखते हुए कहा, "आप के रूप, गुण, वैभव, सदाचार, स्वभाव तथा बल के कारण आप के प्रति मेरा अनुराग है। एक के भी अभाव में क्या इस आकर्षण में कमी नहीं होगी ?"

"दिव्यगुणयुक्ते !" पुरुरवा ने उर्वशी को अनुराग दृष्टि से देखते हुए कहा, "मैं तुम्हारी कान्ति पर, तुम्हारे सुकौमार्य पर, तुम्हारे लावण्य पर, तुम्हारी गति पर, तुम्हारे विलास पर मुग्ध हूँ।"

"ठहरो, भूपते ! आप का विचार मानुषी है। मैं अमानुषी हूँ। मैं गन्धर्व-कुल की हूँ। मैं अन्तरिक्षवासिनी हूँ : मैंने नारायण के उर्वा से जन्म लिया है। अतएव उर्वशी नाम धारण किया है।"

"और मैं।" पुरुरवा बीच में ही बोल उठा।

"आप का मृत्यु-धर्म है। आप मृत्युलोक के निवासी हैं। आप मृत्यु हैं। पुरुरवस् ! आप मेरे भौतिक रूप पर अपनी भौतिक मनोवृत्ति के कारण आसक्त हुए हैं।"

"और तुम ?"

"मैं स्वर्गीय अप्सरा हूँ। मुझे गुण प्रिय हैं। आप के गुणों पर मेरी आसक्ति है।" उर्वशी ने अपने शब्दों पर जोर देते हुए कहा।

"तुम मृत्यु-लोक में...।"

"कहती हूँ महात्मन्।" उर्वशी ने भूमि की ओर देखते हुए कहा, "आप के पवित्र गुणों पर मोहित थी। यही मेरा एकमात्र अपराध था।"

"शुभे !...'

"बात कुछ ऐसी हुई, नरश्रेष्ठ !" उर्वशी ने मन्द स्वर में कहा, "इन्द्र-सभा में नारद आप के गुणों की प्रशंसा कर रहे थे। उस प्रशस्ति-वाचन से मैं आप की ओर अनायास मन-ही-मन आकर्षित हुई। अमानुषी का मानुष के प्रति इस आकर्षण के कारण मित्रावरुण ईर्ष्या से रुष्ट हो गए। मुझे शाप दिया, 'देवलोक त्याग कर मृत्युलोक में चली जाओ। अमानुषी हो कर मानुष का साहचर्य प्राप्त करो' !"

शयन-कक्ष में सुगन्धित तेल-दीप अपने शुभ्र प्रकाश में मानुष और अमानुषी का सम्वाद सुन रहा था। मरुत का हल्का झोंका कमरे में प्रविष्ट हुआ। दीप-शिखा हिली। पुरुरुवा मेषों की हिलती परछाईं सुमज्जित दीवार पर पड़ती देख कर हंसते हुए बोला, "आओ प्रिय पासा खेलें।"

× × ×

गन्धर्वों में चर्चा थी। उर्वशी चर्चा का विषय थी—"वह मृत्युलोक चली गई है। अपने कुल का त्याग कर दिया है। मनुष्य से विवाह-सूत्र में बँध गई है। देवसभा उसके स्वर्गीय नृत्य एवं गान से वंचित हो गई है।"

"यक्षेश्वर कुवेर की सेवा से वह विरत हो गई है। नृत्य, गान, वृन्द-संगीत में, उस का अभाव खलता है। उसके बिना गन्धर्व-लोक शून्यवत उजाड़ लगता है। हमें धिक्कार है। हमारे लोक की उर्वशी मृत्युलोक में मनुष्य के साथ विहार करती है। मानव पुरुरुवा का मानवेतर उर्वशी से सम्बन्ध है। हमारा मुख लज्जा से लोक में नत हो गया है।"

मंत्रणा हुई। निश्चय किया गया। नन्दन-वन के नीरस वसन्त को सरस, सुरभित बनाने के लिए उर्वशी की उपस्थिति आवश्यक है। उर्वशी को पुरुरुवा से विलग किया जाए। उनके अनुराग में विपेक्ष उत्पन्न करना अनिवार्य है। मनुष्यों के मध्य बहुत दिनों तक उर्वशी रह चुकी। किसी उपाय से उसे लौटाना चाहिए। उसके लौटते ही ललित लास्य में देवलोक झूमेगा। उसके कलकंठ के स्वर-संचार से देवों, गन्धर्वों सब का हृदय झंकृत हो जाएगा।

विश्वावसु गन्धर्व ने योजना उपस्थित की, "उर्वशी के शयन-गृह में सर्वदा दो मेष बँधे रहते हैं। उन्हें उठा ले आना चाहिए। राजा नग्न सोता रहेगा। उर्वशी उसे नग्न न देख ले। इसलिए वह उठेगा नहीं। मेष के अभाव में उर्वशी का वहाँ निवास सम्भव नहीं होगा। यदि राजा उठा और उर्वशी ने उस का नग्न रूप देख लिया, तो उर्वशी स्वतः पुरुरुवा का साथ त्याग कर देगी।"

× × ×

घोर रात्रि थी। अन्धकार घनीभूत था। शयन-कक्ष था। उर्वशी और पुरुरुवा पर्यंक पर गाढ़ी निद्रा में थे। मेष पर्यंक से बँधे थे।

विश्वावसु आदि गन्धर्वों ने प्रासाद में प्रवेश किया। शयनावास में पहुँचे। दो बँधे मेषों में से एक को खोल कर वे ले चले। मेष रोने लगा। उर्वशी की निद्रा खुली। एक मेष लुप्त था।

"हाय ! प्रतीत होता है। मैं एक अवीर के पास हूँ। एक अजन के पास हूँ। मेरे एक पुत्र का हरण हो गया। मैं क्या करूँ ?"

उर्वशी का विलाप सुन कर नग्न पुरुरवा उनिद्रित हो गया। उसे प्रतिज्ञा स्मरण हो गई। नग्न-दर्शन के भय से वह उठा नहीं।

विह्वल उर्वशी शयन-वास में रुदन करने लगी। पुरुरवा को उठते न देख कर गन्धर्वगण चकित हुए। उन्होंने मन्त्रणा की। द्वितीय मेष को लुप्त कर देना चाहिए।

गन्धर्वों ने शयन-वास में चुपचाप प्रवेश किया। कोलाहल हुआ। द्वितीय मेष उठा कर वे भागे। मेष रोने लगा। भय-विह्वला उर्वशी के कण्ठ से करुण वाणी निकली, "ओह ! मैं अनाथा हूँ। भर्तृहीना हूँ। कायर पुरुष के साथ हूँ। एक अवीर के पास हूँ। एक अजन के पास हूँ। मेरे द्वितीय पुत्र का हरण हो गया। मैं क्या करूँ ?"

पुरुरवा विलाप सुनता हुआ पर्यंक पर पड़ा रहा। उर्वशी ने व्यंग्यपूर्वक कहा, "प्रजापति मनु ने क्षुप को रक्षानिमित्त, दण्डनिमित्त, खड्ग देते हुए कहा था— 'परिपालन में व्यतिक्रम हो जाए तो खड्ग द्वारा प्रमाणित होने वाले दण्डों पर यथायोग्य प्रयोग कर धर्म की रक्षा करना।' क्षुप ने वह खड्ग इक्ष्वाकु को दिया। राजन् ! इक्ष्वाकु ने तुम्हें वह खड्ग जगत-रक्षा निमित्त दिया था। उन की आशा पर तुमने पानी फेर दिया। वह खड्ग क्या हुआ ? मेरी रक्षा कौन करेगा ?"

पुरुरवा नीरव था।

"दीप्ताक्ष का कुल आज कलंकित हो गया है। कौन कह सकता है, उस कुल में तुम्हारे जैसा एक व्यक्ति उत्पन्न होगा। एक मेष की रक्षा करने में असमर्थ होगा।" उर्वशी रोने लगी।

पुरुरवा उठकर बैठ गया।

"तुम्हारे पूर्वज अत्रि, सोम, बुध, परलोक में बैठे क्या सोचते होंगे ? मैं अरक्षित हूँ ! उन का कुल अरक्षित है। आज वे कितने लज्जित होंगे ?" उर्वशी ने उपालंभ करते हुए कहा। वह घोर विलाप करने लगी।

उर्वशी के शब्द-बाण से आहत पुरुरवा विचलित हो गया। उसके बल, उसके पौरुष को चुनौती थी। उसे ठेस लगी। उस का अन्तर उद्वेलित हो गया। आवेश में उठा। अपनी प्रतिज्ञा भूल गया।

वस्त्र-धारण करने में विलम्ब हो सकता था। गन्धर्व दूर निकल जा सकते थे। मेष लुप्त हो सकते थे। आवेग में गन्धर्वों के पद-चिह्नों का अनुसरण करता वेगपूर्वक बढ़ता गया।

मैं आ गया ! मैं आ गया, उर्वशी !

अकस्मात आकाश प्रखर विद्युत-प्रकाश से प्रभामय हो गया। प्रकाश शयन-गृह में फूट पड़ा। दिन जैसा शुभ्र प्रकाश था। विद्युत्-ज्योति हँसी। पुरुरवा का पूर्ण नग्न-स्वरूप उर्वशी ने देख लिया।

गन्धर्व मुसकराए। विद्युत-प्रभा लुप्त हो गई और अन्तर्ध्यान हो गई अप्सरा श्रेष्ठ उर्वशी। शयनवास में अन्धकार घनीभूत होने लगा। पुरुरवा के स्वर में उत्साह था। अपनी वीरता पर गर्व करता बोला, "उर्वशी ! उर्वशी !! उर्वशी !!! मैं तुम्हारे प्रिय मेषों को लौटा लाया हूँ।"

शयन-कक्ष में उसकी वाणी गूँजी और उसका उपहास करने लगी, "उर्वशी ! तुम्हारे पुत्र, तुम्हारे मेष !"

प्रतिध्वनि स्वयं अपने में लीन होने लगी। शयन-कक्ष में उसकी वाणी का, उसकी प्रतिध्वनि का उत्तर दिया मेषों की वाणी ने —मे-मे-मे-मे। —और सफल हुआ गन्धर्व कुचक्र।

× × ×

विरह-विदग्ध पुरुरवा विषण्ण था। शान्ति खो बैठा था। क्षुब्ध-हृदय भू-तल पर उर्वशी को खोजता श्रीहीन शुष्क हो गया था। विह्वल विरही उर्वशी के अन्वेषण में सर्वत्र विचरण करने लगा।

विमन पुरुरवा कुरुक्षेत्र के विश्वयोजन सरोवर-तट पर प्रयोजनहीन घूम रहा था। विस्तृत सरोवर के निर्मल शान्त जलस्तर पर हंसरूपिणी अप्सराएँ विलास कर रही थीं। कमल-सरोवर उज्ज्वल कमल-दल पूर्ण था। प्रफुल्ल श्वेत कमल में हंसिनियाँ खो जाती थीं। उनकी गति से निकलती ऊर्मियाँ हरित-तट का स्पर्श करती दुर्वा-दलों को उनके सरल विलास का सन्देश पहुँचाती थीं।

अनायास पुरुरवा का रसहीन मन उनकी तरफ आकर्षित हो गया, किन्तु उनके संतप्त मानस को शीतलता नहीं मिली। इतने पर भी उसकी आँखें हंसि-नियों के सरल विलास पर स्थिर होने लगीं।

हंसिनियों ने आगन्तुक भग्न-हृदय पुरुरवा को तट पर खड़ा देखा। उनमें किंचित् कोलाहल हुआ। हट कर दूर जाने के लिए बढ़ीं। एक हंसिनी दल से पीछे रह गई। उसकी उज्ज्वल लम्बी ग्रीवा उठी। उसने स्थिर नयनों से पुरुरवा की ओर देखा।

पुरुरवा चकित हुआ, हंसिनी की मुद्रा लक्ष्य कर। हंसिनी ने दो-तीन बार ग्रीवा ऊपर-नीचे की। जैसे वह पुरुरवा को नमस्कार कर रही थी।

अन्तर-प्रेरणा हुई। पुरुरवा हंसिनी की ओर आकर्षित हो गया। हंसिनी के नेत्रों में पुरुरवा की विपन्नावस्था देख कर करुणा उतर आई थी। हंसिनी चिर-परिचित तुल्य एकाग्र मन से पुरुरवा की तरफ देख रही थी। उसकी आगे चली गई साथिन हंसिनियाँ उसे इस प्रकार एकाकी देख लौटीं। उनकी चकित दृष्टि कभी पुरुरवा और कभी हंसिनी पर पड़ने लगी। अम्बोज-सर में, शुक्ल कमल-दल में धवलवर्ण हंसिनियाँ स्वयं उत्फुल्ल कमल लग रही थीं।

"यह मनुष्य !" एकाकी हंसिनी बोली। अन्य हंसिनियाँ उसे घेर कर स्थिर हो गईं।

"मैंने इस मनुष्य के साथ निवास किया है।"

एकाकी हंसिनी पुरुरवा की तरफ स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखती हुई बोली।

सखी हंसिनियों की कुतूहल भरी दृष्टि विषण्ण-वदन पुरुरवा की ओर गई। उसकी दयनीय दशा देख कर वे स्वयं उदास हो गईं। उनके नेत्रों ने देखा विपत्तियों का मारा एक मनुष्य। एक निराश नरकंकाल मात्र। एक हताश जीव।

पुरुरवा की आशा-लता मुरझा चुकी थी। निराश पुरुरवा नैराश्य मूर्ति बन चुका था। जीवन में कोई रस नहीं रह गया था। हंसिनियों के मृदुल भाव में उसे कोई रस नहीं मिल रहा था। यद्यपि सरस प्रकृति उसे सरस बनाने में असफल हो रही थी, तथापि पुरुरवा अनजाने हंसिनियों को निर्निमेष दृष्टि से देखने लगा।

"उसके सम्मुख प्रकट होना चाहिए।" हंसिनियों ने संवत्सरों का क्रूर थपेड़ा खाए पुरुरवा की ओर दयापूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा।

"मन करता है।" एकाकी हंसिनी ने कमल-केसर की ओर देखते हुए कहा, "सखियो ! इस पुरुष श्रेष्ठ के साथ प्रेमाकृष्ट चित्त से मैंने भूमण्डल में निवास किया है।"

"निश्चय प्रकट होना चाहिए।"

हंसिनी रूप अप्सराएँ अपने पूर्व स्वकीय रूपों में प्रादुर्भूत हुईं। प्रसन्नमुख पाँच सखी अप्सराएँ, पूर्व चित्ति, सहजन्या, मेनका, विश्वाची तथा घृताची के मध्य उर्वशी को पुरुरवा ने देखा। उन्मादी के तुल्य वह चिल्ला उठा, "उर्वशी ! उर्वशी !! उर्वशी !!! क्रूरहृदये ! ठहर ! घोर मानसी !! ठहर।"

प्रफुल्लित कमल-पुष्प मृणाल पर झूमे। मरुत मुसकराया। प्लक्षतीर्थ सरोवर का नीवर जल-स्तर दोलायमान हो गया।

× × ×

पुरुरुवा में निराशा के स्थान पर आशा का संचार हो गया था। शुष्क शरीर में कान्ति प्रवेश करने लगी थी। उर्वशी से मिलने के लिए वह अधीर था। उसने उत्साह से कहा, "उर्वशी लौट चलो।"

"राजन्! हमारे अविस्मरणीय साहचर्य की स्मृति भविष्य को सुखमय नहीं बना सकती।"

उर्वशी अपनी सखियों की तरफ देखती हुई मुसकराई।

"हे! निर्दय नारी!! किंचित् ठहर। अपने हृदय को अनुराग से पूर्ण कर।"

उर्वशी नील गगन की ओर देखने लगी। पुरुरुवा ने पुनः करुण स्वर में कहा, "आओ! हम परस्पर वार्तालाप करें।"

उर्वशी गगन में गमनशील चक्रवाक को लक्ष्य करने लगी।

"यदि हम इस समय मौन रहेंगे, तो कैसे हमारा भविष्य सुखपूर्वक बीतेगा?"

पुरुरुवा उर्वशी से उत्तर न मिलने पर दुःखी हो गया। मस्तक नत हो गया। वह तटीय नरकुल में विलसते जल-कीटाणुओं को भूला-सा देखने लगा।

उर्वशी ने उसके नत मुख की ओर देखा। उसके मन में करुणा उत्पन्न हुई। उसने मौन भंग किया, "पुरुरुवस्!" उर्वशी ने कहा, "वार्तालाप से क्या लाभ? मैं वायु के समान दुश्प्राप्य नारी हूँ।"

"मानव!" पुरुरुवा उदास हो गया। उर्वशी ने कहा, "आपने वह नहीं किया, जिसे करने के लिए मैंने कहा था। तुम्हारे लिए मुझे पकड़ रखना सम्भव नहीं है। अपने घर लौट जाओ। मैं यही कहना चाहती हूँ।"

पुरुरुवा कातर हो गया।

"राजन्! नई उषा पुरानी उषा का त्याग कर देती है। उसी प्रकार मैं आपसे विलग हो गई हूँ। लौट जाइए। लौट जाइए।"

पुरुरुवा का उदासीन मुख मलिन होने लगा। वह दयनीय स्वर में बोला, "उर्वशी! तुम्हारी चिन्ता में संतप्त हो गया हूँ। शक्तिहीन हो गया हूँ। अपने तूणीर से वाण नहीं निकाल सकता। युद्ध में विजय प्राप्त कर अगणित गउओं को प्राप्त करने में असमर्थ हो गया हूँ।"

उर्वशी की दृष्टि जर्जर पिंजर मात्र पुरुरुवा के शरीर पर गई।

"प्रिये! मैं राज्य-कार्य से विरक्त हो गया हूँ। मेरे सैनिक उत्साहहीन और कर्त्तव्यविमुख हो गए हैं।" पुरुरुवा ने दीन स्वर में कहा।

"राजेश्वर!" उर्वशी ने कहा, "जब से आप के घर में मैंने प्रवेश किया

था, आपने सब सुख पहुँचाने का महान प्रयास किया। आपने मेरा आदर किया।"

"उर्वशी ! पुनर्विचार करो। मेरे प्रेम का निरादर करना श्लाघ्य नहीं है," पुरुरुवा ने स्नेह प्रदर्शित करते हुए कहा।

"पुरुरुवे ! आपसे मैं पूर्ण सन्तुष्ट थी। मुझे कभी किसी बात की कमी नहीं हुई। आपकी किसी सपत्नी से मुझे स्पर्द्धा नहीं हुई। मैं आपके आश्रय में हर प्रकार से संतुष्ट थी, परन्तु अब घर लौट जाइए।"

"उर्वशी !"

"सुनो मानव ! सुजूर्णि, श्रेणी, सम आदि अप्सराएँ गोष्ठ में प्रवेश करती गउओं की तरह शब्द करती मलिन वेश में आती थीं, किन्तु वे मेरे घर में प्रवेश नहीं कर सकती थीं।

"अप्सरे !...मैं...!"

पुरुरुवा को बीच में ही रोकती उर्वशी बोली, "आपके जन्मकाल में सभी देवांगनाएँ दर्शनार्थ आईं। सरिताओं ने भी प्रशंसा की। देवगणों ने घोर संग्राम में शत्रुओं का नाश करने के लिए स्तुति की।"

दुःख-ज्वर से क्षीण अपनी काया देख कर पुरुरुवा को ग्लानि हुई। उर्वशी ने उसकी ओर देखते हुए कहा, "मनुष्य रूप में आप अप्सराओं की ओर बढ़े। आपको देखकर देवांगनाएँ जिस प्रकार रथी को देख कर भयभीत हरिणी अथवा रथ में योजित अश्व भागते हैं, उसी प्रकार भाग गईं।"

पुरुरुवा पुरानी बातें स्मरण करता हुआ उर्वशी की ओर एकटक देखने लगा। उर्वशी ने कहा, "पुरुरुवे ! आपने मनुष्य-योनि प्राप्त की। दिव्यलोक-निवासिनी अप्सराओं की ओर आप अग्रसर हुए। क्रीड़ारत अश्व जिस प्रकार भागता है, उसी प्रकार वे आपको देख कर भाग गईं।"

"अंतरिक्ष की विद्युत्-प्रभातुल्य उर्वशी ! तुम मेरे घर की प्रकाश थीं। तुम से मेरी सब अभिलाषाएँ पूर्ण हुई हैं। वह शुभ दिन कब आएगा, जब तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न मेरा पुत्र मेरी आयु को बढ़ाने वाला होगा।"

"पुरुरुवे !" उर्वशी ने कहा, "आपने पृथ्वी की रक्षा के लिए पुत्र उत्पन्न किया है। मैं आपसे सतत कह चुकी हूँ। मैं आपके पास नहीं जाऊँगी। आप प्रजापालन से व्यर्थ विमुख हो गए हैं। तथ्यहीन वार्तालाप से क्या लाभ ?"

"उर्वशी !" पुरुरुवा ने मार्मिक वाणी से कहा, "तुम्हारा पुत्र मेरे पास किस प्रकार रह सकेगा ? वह मेरे पास आकर रोएगा।"

उर्वशी गम्भीर हुई।

उर्वशी ! पुरुरवा ने अपनत्व प्रदर्शित करते हुए कहा, "कौन सद्गृहस्थ परस्पर के प्रेम-बन्धन को तोड़ना पसन्द करेगा ? तुम्हारे श्वसुर के घर में श्रेष्ठ गर्भ आलोकित हो उठा है।"

"पुरुरवे !" उर्वशी ने कहा, "मेरा उत्तर सुनो। आपका पुत्र आपके पास आकर रोएगा नहीं। वह आँसू नहीं गिराएगा। मैं उसकी सर्वदा मंगल-कामना करती रहूँगी। पुत्र जन्म ग्रहण करेगा। मैं अविलम्ब उसे आपके पास भेज दूँगी।"

"उर्वशी···!"

"नहीं राजन् ! आप मुझे नहीं प्राप्त कर सकेंगे। घर लौट जाइए। मैं यही कहना चाहती हूँ।"

"उर्वशी !" पुरुरवा ने दृढ़ स्वर में कहा, "तुम्हारा यह पति यहीं भूमि पर गिर पड़ेगा। यहीं महाप्रस्थान करेगा।"

उर्वशी ने सहसा पुरुरवा की तरफ देखा। पुरुरवा की आँखें निश्चयात्मक भाव से उर्वशी पर पड़ीं। वह बोला, "देवांगने !" मैं निकीर्ति की गोद में बैठ जाऊँगा। मैं यहीं रह जाऊंगा। भयंकर वृक मुझे फाड़ खाएँ ! मैं यही कहना चाहता हूँ।"

"पुरुरवे !" उर्वशी विचलित हुई, "गिरो मत। मृत्यु की कामना मत करो। आपको वृकादि न खाएँ।"

"उर्वशी !" पुरुरवा के नेत्र आर्द्र हो गए, "मृत्यु का आलिंगन करूँगा। अथवा तुम्हारे लिए आगे बढ़ूँगा। यह तुम्हारा किसी दिन का प्रिय शरीर है। तुम यदि इसका त्याग करोगी, तो तुमसे दूर रहने पर यह नष्ट हो जाएगा। अथवा इसे वृक खा जाएँगे। अथवा इसे श्वान उदरस्थ कर जाएँगे, मैं यही कहना चाहता हूँ।"

"राजन् !" उर्वशी ने करुण स्वर से कहा, "मत मरो। क्रूर वृक को मत खाने दो। स्त्रियाँ किसी की नहीं होतीं। उनका हृदय वृकतुल्य होता है। स्त्रियों की मित्रता स्थायी नहीं रहती। आप घर लौट जाइए।"

"उर्वशी ! कल्पना करो···"

"पुरुरवे ! सुनो। मैंने जब अपना रूप बदल लिया तो मनुष्यों में विचरण करती थी। मैंने इस प्रकार चार शरद रात्रियाँ व्यतीत की हैं। मैं एक बार किंचित् घृत ग्रहण कर विचरण करती रही हूँ। मैं आज भी उसके लिए संतुष्टि का अनुभव करती हूँ।"

"अन्तरिक्षगामिनी !" पुरुरवा ने कहा, "जल का तुमसे निर्माण होता है।

अन्तरिक्ष तुमसे पूर्ण होता है। मैं उत्तमकर्मा पुरुरुवा तुम्हारे पास रहूँ। तुम्हारे बिना मेरा हृदय जल रहा है। अत: हे उर्वशी ! तुम लौट चलो।"

"पुरुरुवे !" उर्वशी ने प्रत्युत्तर दिया, "सब देवताओं का कथन है कि आप मृत्युंजयी होंगे। हव्य द्वारा यज्ञ-सम्पादन करेंगे, तत्पश्चात् स्वर्ग में आपका निवास होगा।"

"प्रिये ! प्रिये !!" पुरुरुवा की करुण वाणी तटीय पाषाणों को भी पिघलाती मुखरित हुई, "मेरा त्याग मत करो। आओ, लौट चलें।"

मनोवेग की प्रबल वेदना से उसने अपने कर-पल्लवों से मुख ढक लिया। उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वह आर्त्त होकर तट पर गिर पड़ा।

× × ×

"उर्वशी !" पुरुरुवा ने कहा, "कोमल अनुराग-सूत्र तोड़ते हुए तुमने क्या दु:ख का अनुभव नहीं किया ?"

प्रसन्न पुरुरुवा का आगमन।

हेम-प्रासाद था। प्रासाद की शोभा में पुरुरुवा चकित था। उसने जलीय पक्षी उर्वशी का आवास जल में होने की कल्पना की थी। दिव्यांगना उर्वशी की प्रिय मिलन-यामिनी में उसका हृदय प्रफुल्लित था। मन में उत्साह था। शरीर में चेतना थी। वह आश्चर्यचकित था, प्रासाद की दैवी रचना देख कर।

वैजयन्त तुल्य शोभनीय प्रासाद-द्वार पर उसके स्वागत निमित्त कल्याणी अप्सराएँ खड़ी थीं। पुरुरुवा पर दृष्टि पड़ते ही उनकी आँखों में मुस्कराहट खेल उठी। औपचारिक ढंग से बोलीं, "पधारिए।"

"यहाँ ?"

"श्रीमान् यहीं उर्वशी है।"

मधु-मिलन की तीव्र आकांक्षा में, पुरुरुवा के आतुर पद, द्वार-देश के अन्दर, दिव्य संगीत तथा नृत्य में झनझनाती पायलों की ध्वनि से मिलने चले।

× × ×

"राजन् ! मैं गर्भिणी हूँ। तुम्हारी सन्तान मेरे गर्भ में स्थित है।" उर्वशी के मुख पर स्त्री-जन्य लज्जा आ गई।

"उर्वशी ! लौट चलें···।"

"नहीं राजन्।" उर्वशी ने किंचित् विचार करते हुए कहा, "आज से सम्वत्सर की अन्तिम रात्रि को पधारिएगा।"

पुरुरवा का मुख खिल गया ।

"उस समय आप मेरे साथ एक रात्रि निवास कर सकेंगे ।"

उर्वशी ने अपने वस्त्रों को ठीक करते हुए कहा । पुरुरवा रोमांचित हो गया । पूर्ण शशिबिम्ब तुल्य उर्वशी के सुन्दर गौर मुखमण्डल पर उसकी आँखें स्थिर होने लगीं । उर्वशी ने मृदु स्वर में कहा, "उस समय तक आपकी सन्तान जन्म ग्रहण कर चुकी होगी ।"

उर्वशी के साथ साहचर्य की सुखद कल्पना में पुरुरवा तृषित अविचल नयनों से उर्वशी की रूप-माधुरी पीने लगा ।

× × ×

सम्वत्सर की अन्तिम रात्रि ।

"राजन् !"

"समझा । उषा आई । उषा के पश्चात् अरुणोदय-सूर्य की प्रथम किरणों के साथ मेरी विरह-यात्रा का आरम्भ ।"

"भूपते !" उर्वशी ने प्रसन्न-वदन कहा, "प्रातःकाल गन्धर्वगण आपके पास आएँगे ।"

पुरुरवा की प्रश्नपूर्ण दृष्टि उर्वशी के प्रसन्न मुख पर पड़ी ।

"आपसे वर माँगने के लिए अनुरोध करेंगे ।"

"मुझे से ?" पुरुरवा ने कुतूहलभरे स्वर में पूछा । उसकी मनःस्थति पर मन-ही-मन उर्वशी हँसने लगी ।

"गन्धर्वगण हमारे पारस्परिक अनुराग पर प्रसन्न हैं । तुम्हें प्रसन्न करना चाहते हैं," पुलकित उर्वशी ने उत्साहमय स्वर से कहा ।

पुरुरवा का हृदय-कमल किसी आशा से खिल गया । उर्वशी ने उषा की हल्की लाली की ओर देखते हुए कहा, "अपना अभीष्ट वर माँग लीजियेगा ।" कह कर वह हँसने लगी ।

"क्या माँगूँगा ?" पुरुरवा सोचने लगा ।

"जो इच्छा हो !" उर्वशी के निर्मल नेत्र आनन्दमय हो गए ।

'तुम्हीं मेरे लिए चुन दो ।" पुरुरवा ने उर्वशी के स्निग्ध यौवन की ओर देखते हुए कहा ।

"उनसे कहिएगा, वे आपको गन्धर्वों में सम्मिलित कर अपनी महती कृपा का परिचय देकर आपको अनुग्रहीत करें ।"

"और ।" पुरुरवा मुसकराता उर्वशी के अत्यन्त निकट आ गया ।

और···फिर···गन्धर्व और गन्धर्वी—और—मानुष और अमानुष एक।" उर्वशी के पायल झंकृत हो उठे।

× × ×

"पुरुरवस् गन्धर्वों ने सम्बोधित किया।

गन्धर्वों का परिधान सुरभित था। वायुकेशी थे। पृथ्वी की गन्ध उन तक उठ कर जाती थी। वे उज्ज्वल एवं दिव्य प्राणी थे।

"आज्ञा देवगण!" पुरुरवा ने उन्हें 'शिरसा नमामि' करते हुए विनम्र वाणी से कहा, "हम तुम पर प्रसन्न हैं।"

"हमारा अहोभाग्य!" पुरुरवा की वाणी में विनय थी।

"मानुष!" गन्धर्वगण पुरुरवा की विनय से प्रसन्न होकर बोले, "तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करने का हमने संकल्प किया है।"

"देव! अनुग्रह के लिए मेरी दुर्बल कृतज्ञता स्वीकार कर अनुग्रहीत कीजिए।" पुरुरवा ने मृदु स्वर में श्रद्धापूर्वक मस्तक नत करते हुए कहा।

"नरश्रेष्ठ! इच्छानुसार वर माँगिए।"

पुरुरवा सभक्ति प्रणाम कर शान्त खड़ा रह गया।

"वर फलप्रद होगा," गन्धर्व सस्मित बोले, "हमारी वाणी मृषा नहीं होती।"

"कृपया अपने में मुझे सम्मिलित कर मेरी यह तुच्छ मनोकाँक्षा फलीभूत जन्म सार्थक कीजिए।"

"मानुष और अमानुष?" गन्धर्व चकित हुए।

"सत्यप्रिय?" पुरुरवा ने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक उन्हें अंजलिबद्ध नमस्कार करते हुए गम्भीर स्वर में कहा, "इस अकिंचन की यही कामना है। आप पूर्ण समर्थ हैं। आप के लिए कुछ असम्भव नहीं है।"

गन्धर्वों में चिन्ता प्रविष्ट हुई। वे एक दूसरे की ओर प्रश्नपूर्ण दृष्टि से देखने लगे। नेत्रों से ही विचार विनिमय किया। उनमें विवेक ने प्रवेश किया। नेत्रों ने ही परस्पर निश्चय किया। उनकी मृदु वाणी मुखरित हुई, "मानुष! तुम्हारी मानुष-जाति में ऐसा कोई पवित्र नहीं है, जो बिना अग्नि की कृपा से हम में मिल सके।"

"देवगण!" पुरुरवा ने अग्निदेव का स्मरण करते हुए स्तवन किया, "अग्नि देव हैं। अग्नि पवित्र करने वाले हैं। अग्नि वैश्वानर हैं। अग्नि जातवेद हैं। अग्नि केशिन है। अग्नि हव्यवाहन हैं। अग्नि धनंजय हैं। अग्नि रोहिताश्व हैं।

उन अग्नि का स्तवन करता हूँ। उन हुताशन की शरण जाता हूँ। उन अग्निदेव की उपासना करता हूँ।"

"साधु मानुषे!" गन्धर्वों ने हर्षित होकर कहा, "तुम्हें अग्नि हम देंगे। अग्नि से तुम पवित्र हो जाओगे। पवित्रता मानुष और अमानुष को एक करती है।"

गन्धर्व अग्नि ले आए। उन्होंने वह स्थाली में रख कर अपने मस्तकों से लगाकर पुरुरवा को दी। पुरुरवा ने स्थाल्य मस्तक से लगाते हुए पूर्ण श्रद्धा

से अग्निदेव को प्रणाम किया। गन्धर्वों ने कहा, "पवित्रात्मे! स्थाली की अग्नि ग्रहण कीजिए। इस पवित्र अग्नि में यज्ञ करने पर तुम पवित्र होकर हम में से एक हो जाओगे।"

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य।" पुरुरवा ने गन्धर्वों को कृतज्ञतापूर्वक नमन करते हुए कहा।

× × ×

उर्वशी द्वारा उत्पन्न कुमार आयु तथा स्थाल्य अग्नि के साथ पुरुरवा घर लौट रहा था। पुरुरवा ने अरण्य में प्रवेश किया। उसका मार्ग अरण्य से होकर जाता था।

वह विचार करता जाता था। वह चाहता था उर्वशी और मिली अग्नि। उसकी मानसिक स्थिति पुनः दोलायमान होने लगी। मानसिक प्रतिक्रियाओं का वह शिकार बन गया। उसने स्थाल्य अरण्य में रख दी। अपने पुत्र आयु कुमार के साथ, बिना अग्नि अकेले अपने ग्राम में प्रवेश किया।

× × ×

अर्द्ध-रात्रि थी। पुरुरवा को गन्धर्वों की बात याद आई। उर्वशी-प्राप्ति की भावना तीव्र हुई। पुरुरवा अरण्य की ओर चला।

अरण्य में पहुँचा । अरण्य में जहाँ अग्नि-स्थाल्य रखा था, वहाँ से वह लुप्त थी । अरण्य में भयंकर नीरवता थी । अग्नि अश्वत्थ वृक्ष का रूप ग्रहण कर चुकी थी । स्थाली शमी वृक्ष हो गई थी । शमी वृक्ष के गर्भ में अश्वत्थ-वृक्ष स्थित था ।

पुरुरुवा व्यग्र हो गया । उसे पश्चात्ताप होने लगा । उर्वशी की बात नहीं रख सका । उसे क्या उत्तर देगा । वह मानसिक वेदना से व्यथित हो गया । उर्वशी को प्राप्त कर खो दिया । विक्षिप्त होने लगा । हताश बैठ गया । अनन्तर अरण्य की वन-देवी अरण्यानी की स्तुति करने लगा, "हे अरण्यानी ! तुम दृष्टि-गत होती-होती अकस्मात् ओझल दृष्टि हो जाती हो । अरण्यानी ! तुम कस्तूरी-तुल्य सौरभमय हो । अन्न से परिपूर्ण हो । मैं उस बृहद् अरण्यानी की स्तुति करता हूँ ।"

पुरुरुवा बैठा था । मरुत के कोमल शीतल स्पर्श से उसके हृदय का ताप शान्त हो चला । उसकी मनश्चेतना लौट आई । गन्धर्वों की शरण में त्राण है । उषा की मधुर जीवनप्रद किरणों के साथ उसमें नवीन आशा का संचार हुआ ।

"पुरुरुवा !" गन्धर्वों ने कहा, "लोप हुई वस्तुओं को उसके मौलिक रूप में प्राप्त करना कठिन हो जाता है । अज्ञान के वशीभूत होकर तुमने अग्नि-स्थाली का त्याग कर दिया ।"

"द्यूलोकवासिन् !" पुरुरुवा ने विनयपूर्वक निवेदन किया, "क्या उस अग्नि की पुनः प्राप्ति हो सकेगी ?"

"हाँ, कर्म से !"

"मैं कर्म में विश्वास करता हूँ । गन्धर्वगण ! मुझे इस श्रुति पर श्रद्धा है कि 'कर्म से सब कुछ प्राप्त होता है' ।"

"राजन् !" गन्धर्वों ने स्थिर स्वर से कहा, "अपने गुण के कारण, शुभ-कर्मों के कारण और अपनी कर्मनिष्ठा के कारण तुमने उर्वशी को प्राप्त किया था । कर्म के कारण तुम्हारा उसका सीमित पुर्नमिलन हुआ था । कर्म के कारण उसकी पुनर्प्राप्ति होगी ।"

"महात्मन् !" पुरुरुवा ने करबद्ध कहा, "मैं उस कर्म की उपासना करता हूँ । मैं उस कर्म की स्तुति करता हूँ । उस कर्म का आह्वान करता हूँ । आदेश दीजिए । मैं किस कर्म में संलग्न होऊँ !"

"पुरुरुवा !" गन्धर्वों ने कहा, "तुम्हें हम एक युक्ति बताते हैं । उसके साधन द्वारा तुम्हें पुनः उस अग्नि की प्राप्ति होगी । करोगे ?"

"करूँगा, महात्मन् !"

"मानुष !" सदय हृदय गन्धर्व बोले, "एक सम्वत्सर तक हवि तथा अश्वत्थ की समिधा घी में डुबा कर अग्निदेव में आहुति दोगे। इस प्रकार जो अग्नि उत्पन्न होगी, वह स्थाल्य स्थित अरण्य की लुप्त अग्नि तुल्य होगी।"

पुरुरुवा ने श्रद्धापूर्वक गन्धर्वों को प्रणाम किया। गन्धर्वों ने कहा, "किन्तु वह परोक्ष अग्नि होगी।"

"शुद्ध मूल अग्नि कैसे प्राप्त कर सकूँगा ?" पुरुरुवा ने जिज्ञासा की। तुम ऊपर की अरणि अश्वत्थ की तथा नीचे की अरणि शमी काष्ठ की तैयार करो। उनके मंथन द्वारा जो अग्नि उत्पन्न होगी, वह पूर्व स्थाली वाली वही अग्नि होगी।"

"करूँगा, देव !" पुरुरुवा ने अंजलिबद्ध हो स्वीकार किया।

"परन्तु ! यह भी परोक्ष अग्नि होगी।"

"महात्मन् ! मूल स्थाल्य-अग्नि किस प्रकार प्राप्त होगी ?" पुरुरुवा ने उत्साहपूर्वक पूछा।

"बताता हूँ। ऊपर की अरणि अश्वत्थ काष्ठ तथा नीचे की अरणि भी अश्वत्थ काष्ठ की बनाओ। उन अरणियों के मन्थन से उत्पन्न अग्नि स्थाल्य की लुप्त अग्नि होगी।"

"महात्मन् !" पुरुरुवा ने निश्चयात्मक वाणी में कहा, "अरणियों से अग्नि उत्पन्न करूँगा। यज्ञ करूँगा। और कोई आदेश गन्धर्वगण !"

"और फिर तुम हम में मिल कर एक हो जाओगे।"

गन्धर्वगण मुसकराने लगे। पुरुरुवा ने उन्हें नतमस्तक 'शिरसा नमामि' किया।

× × ×

पुरुरुवा ने पूर्ण आस्था से अश्वत्थ काष्ठ की ऊपर तथा नीचे की अरणियाँ बनाईं। उनके मन्थन से अग्निदेव आविर्भूत हुए। वह वही अग्नि थी, जिसे गन्धर्वों ने उसे स्थाल्य में दिया था। यह वह अग्नि थी, जो अरण्य में लुप्त हो गई थी।

पुरुरुवा ने पवित्रतापूर्वक विधिवत यज्ञ किया। यज्ञ की समाप्ति हुई। आकाशवाणी हुई, "पुरुरुवस् ! मानुष से तुम अमानुष हुए। हम गन्धर्वों में मिल कर अब एक हो गए।"

पुरुरुवा ने श्रुतवाणी को श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

× × ×

"स्वागत पुरुरुवे !" गन्धर्वों की आशीर्वादात्मक वाणी गूँजी।

"अकिंचन का सादर प्रणाम स्वीकार कीजिए बन्धुगण !"

"पुरुरुवा ! तुम सूर्य हो। उर्वशी उषा है। तुमने अपने कर्म से कीर्ति प्राप्त की है। तुमने अपनी ज्ञानप्रभा से भू-तल को धवलित किया है। मानव-लोक को त्याग कर तुम देवलोक के निवासी बन गए। तुम्हें धन्यवाद।"

पुरुरुवा अपनी प्रशंसा सुन कर संकुचित हो गया। गन्धर्वों ने गर्वपूर्वक कहा, "तुम्हारे पूर्व विश्व में केवल अग्नि थी।"

पुरुरुवा ने अपने मानस-मन्दिर में स्थित अग्निदेव का स्मरण कर, उन्हें नमन किया।

"पुरुरुवस् ! तुमने अग्नि को तीन विभागों में विभक्त किया है। अब आह्वनीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि संज्ञाओं से अग्निदेव जगत में विख्यात होंगे। विश्व को तुम्हारी यह अपूर्व देन है।" पुरुरुवा ने गन्धर्वों को करबद्ध नमस्कार किया।

"पुरुरुवे !" गन्धर्व बोले, "पूर्वकाल में केवलमात्र प्रणव वेद था। केवल एक वर्ण हंस था। केवल एक देवता नारायण थे। कालान्तर में वेदत्रयी हुई। तुम हमारे गौरव के पात्र हो।"

"ऐल !" गन्धर्वों ने पुनः कहा, "आप क्षत्रिय थे। आपका क्षात्र कर्म था। आप ब्राह्मण-क्षत्रिय विवाद में नहीं पड़े। अपने कठोर कर्म से, परिश्रम से, मन्त्र-द्रष्टा हुए। देवता हुए। निरन्तर एकाग्र मन से, एक निष्ठा से, दत्त चित्त कर्म में लगे रहे। आपका स्थान इन्द्र से सम्बन्धित मध्यस्थान के देवता अथर्वन्, सोम, पर्जन्य, रुद्र, वायु, बृहस्पति, वरुणादि के साथ हो गया है। आप धन्य हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं !"

गन्धर्वों की बद्ध अंजलियाँ नत मस्तक से लग गईं। पुरुरुवा ने भी अत्यन्त विनम्रतापूर्वक झुकते हुए उन्हें प्रणाम किया। गन्धर्वों का प्रसन्न संगीत तुल्य स्वर गूँज उठा—

"और...उर्वशी, जल है। और आप सूर्य हैं और आप लोगों का वांछित फल—आयु है।"[1]

आधार ग्रन्थ : ऋग्वेद

ऋषि : पुरुरुवा ऐलः, उर्वशी। देवता : उर्वशी, पुरुरुवा ऐल : ऋ. : १८ : ८ : ९५

ऋषि : अत्रि। देवता : विश्वदेवा। ऋ. ५ : ३ : ४१

ऋषि : वशिष्ठ : वशिष्ठपुत्रा : देवता त एव :। ऋ. ७ : ३३ : ११

ऋषि : पुरुच्छेप : देवता इन्द्र : ऋ. १ : ३१ : ४

शतपथ ब्राह्मण : ११ : ५ : १

बृहद्देवता : १ : १२४, १ : १२८, २ : ५६, २ : ७७ : ८३, ७ : १४७-१५२, ५ : १४९

देवापि

"देवापि !" प्रजाजनों ने उपस्थित होकर सादर निवेदन किया, "आपके पूजनीय पिता ऋषि वेण दिवंगत हो चुके हैं। राज्य सूत्र आपको सम्भालना चाहिए।"

"मैं—?" देवापि ने किंचित् चकित होकर कहा।

"जी हाँ—" प्रजागण ने प्रांजलिभूत होते हुए कहा।

"प्रजागण ! राज्य के मैं सर्वथा अयोग्य हूँ।"

"महात्मन् !" प्रजा ने कहा, "स्वर्गीय ऋषि वेण आप और शंतनु दो सगे भाइयों को छोड़कर दिवंगत हुए हैं। आप ज्येष्ठ भ्राता हैं। धर्मतः राज्य आपका है।"

"मुझे राज्य से स्पृहा नहीं है।" देवापि ने निश्चयपूर्वक कहा।

"किन्तु राज्य सिंहासन खाली नहीं रह सकता। अराजकता कौन रोकेगा।" प्रजाजन ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"प्रजाजन !" देवापि ने शान्त स्वर में कहा, "राजा कनिष्ठ भ्राता शंतनु होगा।"

"कदापि नहीं।" जनरव तीव्र हुआ।

"आवेश में काम करना उचित नहीं है। मैं राज्य के सर्वथा अयोग्य हूँ।" देवापि ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"ज्येष्ठ पुत्र आप हैं। राज्य आपका है। यही सनातन परम्परा है।" वृद्धों ने कहा।

"नहीं ! राज्य शंतनु करेंगे।" देवापि ने वृद्धों की ओर मुसकराते हुए प्रत्युत्तर दिया।

"ज्येष्ठ भ्राता के रहते हुए कनिष्ठ भ्राता कैसे राजा हो सकता है ? यह असम्भव है महात्मन् !" वृद्धों ने मस्तक हिलाते हुए कहा।

"भद्र पुरुषो !" देवापि ने कहा, "त्वग् दोष से मैं दूषित हूँ। दुस्साध्य रोग से ग्रसित हूँ। मैं कैसे राज्य कर सकता हूँ। राजा स्वस्थ इन्द्रिय, स्वस्थ स्वास्थ्य, स्वस्थ विचार, स्वस्थ मना तथा स्वस्थ अभिप्राय युक्त होना चाहिये। मेरे किंचित् काल की स्वास्थ्य चिन्ता राज्य कार्य के समय को अपहृत करेगी। मैं पूर्ण राजा नहीं हो सकूँगा। आप अपूर्ण व्यक्ति को लेकर राज्य की अपूर्णता में वृद्धि करेंगे।"

"राजपुत्र !" प्रजाजन ने कहा, "आपका तर्क धर्मसम्मत नहीं है।

"आप लोग—।"

"ठहरो, राजपुत्र !" वृद्धों ने कहा, "यह कार्य अधर्ममूलक होगा। जब शीर्ष से अधर्म आरम्भ होगा तो पाद तक आते-आते सम्पूर्ण शासकीय यन्त्र अधर्ममय हो जायेगा।"

"मित्रो ! देवापि ने विनय से कहा, "शंतनु युवा है, स्वस्थ है। वह भी मेरे पिता का पुत्र है। मेरे जैसा राजपुत्र है। मैं इसमें अधर्म नहीं देखता।"

"नहीं ! देवापि !!" वृद्धों ने कहा, "अधार्मिक राज्य में कौन रहना पसन्द करेगा ? अधार्मिक परम्परा अनुकरण करने का कौन साहस करेगा ?"

प्रजाजन वृद्धों की वाणी सुनकर उत्साह से नाद करने लगे। देवापि ने शान्त स्वर में कहा :

"महात्मन् ! मैं राज्य का स्वेच्छा से त्याग करता हूँ। कोई मुझे बाध्य नहीं कर रहा है। मैं उसके लिए अपने को अनुपयुक्त समझता हूँ। शंतनु को नृप निर्वाचित कीजिए।"

समवेत प्रजाजन में सन्नाटा छा गया। एक ओर से ध्वनि उठी :

"शंतनु क्या उद्यत है ?"

"मैं उसे तत्पर करूंगा।" देवापि ने साधिकार कहा।

"नहीं ! नहीं !! उससे पूछना चाहिए।" जनता की आवाज़ उठी।

"ठीक है।" वृद्ध लोग कहते हुए शंतनु के पास चले।

× × ×

"पूज्यवर ! शंतनु ने ज्येष्ठ भ्राता को सादर प्रणाम किया।"

"प्रिय !" देवापि ने स्नेह से कहा। हम दो भ्राता हैं। राजपुत्र हैं। पिता दिवंगत हो गये हैं। राज्यशासन हमारा कर्त्तव्य है। प्रजापालन धर्म है। यही सनातन परम्परा है।"

"मान्यवर !" शंतनु ने निर्लिप्त भाव से कहा, "आपका राज्याभिषेक होना चाहिये।"

"नहीं।" देवापि ने वेगपूर्वक कहा, "मैं त्वग् दोषी हूँ। व्याधियाँ मेरे शरीर में स्थान कर बैठी हैं। इस शरीर में राज्य चिन्ता के लिए स्थान कहाँ ?"

"भ्रातृवर !" शंतनु ने कहा। "मैं अधर्म नहीं करूँगा। राज्य पर आपका अधिकार है। मेरा अधिकार कैसे होगा ?"

"प्रियवर ! मैं तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता हूँ। तुम्हारे पिता तुल्य हूँ। मैं तुम्हारे हित की बात कहता हूँ। राज्य के हित की बात कहता हूँ। मुझे किसी ने राज्य त्यागने के लिए नहीं कहा है।"

"पूज्यवर !" शंतनु ने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा, "वह अधर्म होगा। अधर्म राज्य के सर्वनाश का कारण होगा।"

"नहीं, यह अधर्म नहीं है। तुम प्रजाजन को आमन्त्रित करो।" देवापि ने आदेश स्वर में कहा।

× × ×

"महानुभावो !" देवापि ने विशाल प्रजा समूह को सम्बोधित किया। मैंने निश्चय किया है। शंतनु का अभिषेक किया जाय।"

भीड़ नीरव थी।

"एक अस्वस्थ, एक व्याधिग्रस्त का शासन चलाना उचित नहीं है। जिसका स्वयं शरीर साथ नहीं देता, वह भला राज्य का साथ कैसे दे सकता है ?"

भीड़ नत मस्तक हो गयी।

"आप मुझे अपना राजा बनाना चाहते हैं। आपकी महती कृपा के लिए अनुग्रहीत हूँ। परन्तु राज्य मुझे पाकर सुखी नहीं हो सकेगा। मैं राज्य को पाकर सुखी नहीं हूँगा। आप लोग मुझे क्षमा करें।"

देवापि ने जन-समूह को 'शिरसा नमामि' किया। जनता देवापि के इस त्याग से विचलित हो गयी।

"मैं आपके हित की बात कहता हूँ। आप शंतनु को अपना राजा बनायें।"

किसी दिशा से समर्थन नहीं मिला।

"आप विश्वास रखिये। मैं अधार्मिक कार्य स्वतः नहीं करूँगा। न आपको करने दूँगा। आप लोगों की सेवा में सर्वदा तत्पर रहूँगा।" देवापि ने स्नेह प्रदर्शित करते हुए कहा।

जनसभा विचार करने लगी। कोई कुछ बोला नहीं। देवापि ने पुनः कहा :

"शंतनु को इसमें आपत्ति नहीं होगी। मैंने उसे मना लिया है। आपकी सम्मति चाहिए ?

लोग शान्त थे।

"मैं निवेदन करता हूँ। क्या आप मुझ पर इतना अनुग्रह, अपनी सम्मति प्रदर्शित नहीं करेंगे ?" देवापि ने अनुनयपूर्वक कहा।

जनता में उत्साह उत्पन्न नहीं हुआ।

"मैं राज्य नहीं लूँगा। मेरा यह दृढ़ निश्चय है। क्या यह राज्य बिना राजा के रहेगा ? मेरे अभाव में दूसरा कौन राजा होगा ?"

लोग एक-दूसरे का मुख देखने लगे।

"बोलिये ! बोलिये !! मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देते।"

जनता में किंचित् कोलाहल हुआ।

"कहिये ! आपकी सम्मति है, शंतनु का राज्याभिषेक किया जाय। मैं अपने शरीर का भार उठाने में असमर्थ हूँ। राज्य-भार कैसे उठा सकूँगा ?"

लोगों के मस्तक झुक गये। मौन सम्मति सभा ने दी।

× × ×

"घोर अवर्षण ! घोर अवर्षण !!"

जनता में त्राहि-त्राहि थी।

"बारह वर्ष बीत गये। एक बूंद पानी नहीं।" लोग बोले।

"चलो राजा शंतनु के पास चलें।"

"हाँ।"

प्रजा राजा शंतनु के समीप चली।

× × ×

"राजन् ! अवर्षण, कब तक ?"

शंतनु लज्जित थे।

"पृथ्वीपते ! द्वादश वर्ष से पर्जन्य ने वर्षा नहीं की है।"

शंतनु की आँखें ऊपर नहीं उठ सकीं।

"हाँ, उस समय से जब से आपका राज्याभिषेक हुआ है।"

शंतनु लज्जित हुए।

"देवापि वन चले गये। वे धर्मात्मा थे। उनका राज्य आपने लिया। मर्यादा का उल्लंघन किया गया है।'

शंतनु उदास होते लगे।

"धर्म का उल्लंघन किया गया है। राज्य अधर्म से लिया गया है। उस अधर्म का प्रायश्चित हम अपनी भूख से कर रहे हैं।"

शंतनु को कोई उत्तर देते नहीं बना।

"राजा के पाप से प्रजा दुःखी होती है। आपने ज्येष्ठ भ्राता का राज्य लेकर अधर्म किया है। उसी का फल यह घोर अवर्षण है।"

"मैंने राज्य नहीं लिया है।" शंतनु की वाणी में करुणा थी।

"राज्य दोष से इन्द्र क्रुद्ध हो गये हैं।" क्षुब्ध वाणी गूँजी।"

"अनावृष्टि का कारण धर्म का व्यक्तिक्रम होना है।"

प्रजा का असन्तोष मुखरित हुआ।

"मैं क्या करूँगा।" राजा ने व्यग्र होकर निवेदन किया।

"कौरव्य! राज त्याग कीजिए।" रोष से लोगों ने कहा, "राष्ट्र विपद्-ग्रस्त है।"

"मुझ पर राज्य लादा गया है।" शंतनु ने आरोप का उत्तर देते हुए कहा।

"नहीं तुम परिवेत्ता हो।" जनता से ध्वनि उठी।

"मैं तैयार हूँ। अभी यह राज्य लो।" शंतनु ने अविषादपूर्वक कहा।

लोग स्तब्ध हो गये। कुछ समय के पश्चात् एक आवाज उठी। देवापि के पास चलना चाहिए।"

शंतनु प्रसन्न हो गये।

"हाँ, ठीक। मैं भी साथ चलूँगा। मुझे राज्य से, शासन से स्पृहा नहीं है। ज्येष्ठ भ्राता का दर्शन करूंगा।"

शंतनु वन की ओर चल पड़े। उसके पीछे चली भीड़।

× × ×

छोटा आश्रम, वन के बीच था। देवापि एकाकी तपस्या कर रहे थे। उनकी आवश्यकताएँ स्वल्प थीं। चिन्ता नहीं थी। वे धूम्रहीन अग्नि की तरह शान्त हो गये थे।

उस आश्रम में प्रवेश किया, कनिष्ठ भ्राता राजा शंतनु ने। उनके साथ राज्य की प्रजा थी। देवापि ने देखते ही पूछा :

"शंतनु!" देवापि की आँखें बारह वर्ष पश्चात् कनिष्ठ भ्राता को देख कर भर आयीं। प्रजाजन ने भूमि पर मस्तक रख कर दण्डवत किया। देवापि को

प्रणाम किया। शंतनु ने ज्येष्ठ भ्राता की चरण-रज श्रद्धापूर्वक मस्तक पर लगायी।

"कुशल तो है ? बन्धुवर !"

"पूज्यवर !" शंतनु ने लज्जित होकर कहा, "आपके प्रस्थान के पश्चात् से निरन्तर अवर्षण चल रहा है।"

"आश्चर्य !" देवापि ने चकित होकर कहा।

"महात्मन् !' प्रजा बोली, "धर्म के व्यतिक्रम होने के कारण अवर्षण हुआ है।"

देवापि की प्रश्नपूर्ण दृष्टि शंतनु पर उठी। शंतनु ने मृदु स्वर में कहा :

"ज्येष्ठ भ्राता के रहते हुए कनिष्ठ भ्राता का राज्याभिषेक हुआ है। यह महान धर्म विपर्यय है।"

"महात्मन् !" प्रजा बोली, "आप अपना राज्य सम्भालिये।"

देवापि मुसकराए।

"महात्मन् !" शंतनु ने प्रांजलिबद्ध अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहा, "आप अपना राज्य लीजिए। मैं राजा रह कर क्या करूँगा, जब प्रजा का दुःख दूर करने में असमर्थ हूँ।"

शंतनु के मन में लेश-मात्र विषाद नहीं था। उसकी वाणी में हृदय का सच्चा उद्गार था। वह भ्राता के चरणों पर कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा।

"शंतनु !" देवापि ने उसे प्रेम से उठाते हुए कहा :

"मैं राज्य योग्य नहीं हूँ। त्वग् दोष से ग्रसित हूँ। हत इन्द्रिय हूँ। मेरी शक्तियाँ क्षीण हैं।

"ज्येष्ठवर !" शंतनु ने पुनः भ्राता का पद स्पर्श करते हुए कहा, "मेरे लिए राज्य करना, राजा होना, दोनों असह्य हो गये हैं। प्रजा के दुःख की गठरी कब तक ढोता फिरूँगा। यह राज्य और प्रजा दोनों आपके हैं। इन्हें आप स्वीकार कीजिये।"

"पुरुष श्रेष्ठ।" देवापि ने गम्भीरतापूर्वक कहा, "राजा का गुण धैर्य है। आशा सम्बल है। नैराश्य विनाश है।"

प्रजाजन देवापि की बात ध्यानपूर्वक सुनने लगे। अपनी प्रिय प्रजा के शुष्क नर-कंकालवत शरीर को देख कर देवापि ने पाद देश में गिरे शंतनु को उठाते हुए कहा :

"राजन् ! मैं स्वयं वृष्टि की कामना करूँगा।" उठो।

देवापि ने शंतनु को उठा कर खड़ा किया। प्रजा देवापि की वृष्टि-कामना

से प्रसन्न हो गयी। देवापि शंतनु के मूर्धा पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरने लगे।

"भ्राते!" देवापि ने दृढ़ स्वर में कहा, "मैं स्वयं तुम्हारा ऋत्विक् बनूँगा।"

शंतनु चकित हुए। प्रजाजन में से कोई बोल उठा, "क्षत्री और ऋत्विक्!"

"हाँ, मैं यज्ञ करूँगा। जन-साधारण की रक्षा के लिए, वर्षा के लिए। यह घोर अवर्षण अवश्य दूर होगा।"

"क्षत्री होकर पौरोहित्य!" प्रजा से एक ध्वनि सुनायी पड़ी।

"हाँ, तुम्हारे कष्ट दूर करने के लिए।" देवापि ने स्थिर स्वर में कहा।

प्रजा प्रसन्न हो गयी। तुमुल हर्षध्वनि करने लगी। शंतनु भाई के आलिंगन में अवर्षण का दारुण दुःख भूलने लगा।

× × ×

वर्षा निमित्त यज्ञ आरम्भ हुआ। राजा शंतनु ने ज्येष्ठ भ्राता देवापि को अपना पुरोहित नियुक्त किया। उनसे ऋत्विज् रूप से कार्य करने के लिए प्रार्थना की।

देवापि पौरोहित्य कर्म के लिए उद्यत हो गये। उन्होंने वृष्टि करने वाले देवताओं के निमित्त स्तोत्र की रचना की।

देवापि ने यथाविधि यज्ञ कार्य का सम्पादन किया। उन्होंने बृहस्पति निमित्त यज्ञ करते हुए स्तुति की :

"बृहस्पते! मुझ पर अनुग्रह करिए। आपका सब देवताओं के पास गमन हो। आप मित्र, वरुण, पूषा, आदित्यगण, वसुगण सहित साक्षात इन्द्र हैं। आप राजा शंतनु निमित्त वर्षा कीजिए।

"देवापि! तुम्हारा दूत बनकर किसी मेधावी द्रुतगामी देवता का मेरे पास आगमन होना चाहिए।" बृहस्पति की वाणी अन्तरिक्ष से कर्णगोचर हुई।

"बृहस्पते!" देवापि ने स्तुति की : "आप कृपया पधारिये। आपके हेतु हमारी वाणी में श्रेष्ठ स्तुतियाँ प्रस्तुत हैं।

"बृहस्पते! आप मेरे मुख में श्रेष्ठ स्तोत्र स्थापित कीजिए। आपके स्तोत्र स्पष्ट तथा स्फूर्तिप्रद हों ताकि हम उनके द्वारा शंतनु के निमित्त वर्षा प्राप्त करें।"

बृहस्पति ने श्रेष्ठ स्तोत्र स्वरूप दिव्यवाणी का देवापि में उन्मेष कराया। देवापि ने अग्नि की स्तुति की :

"अग्ने! तुम्हें ऋषि वेरण पुत्र देवापि ने प्रज्वलित किया है। आप देवताओं का सहयोग प्राप्त कर, जल-वृष्टि करने वाले मेघों को प्रेरित कीजिए।

"अग्ने ! पूर्व ऋषि स्तुति करते हुए आपके समीप गये। आपका बहुतों ने आह्वान किया है। इस समय के यजमान अपने यज्ञ में स्तुतियों सहित आपकी ओर गमन करते हैं। शंतनु ने दक्षिणा दी है। उसमें रथ के सहित सहस्रों पदार्थ और हैं। अग्ने ! आप रोहिताश्व भी कहे जाते हैं। हमारे यज्ञ में आप आगमन कीजिये।

"अग्ने ! रथों सहित निन्यानवे पदार्थ प्रदान किये गए हैं। आप उनके द्वारा प्रसन्न होने की कृपा कीजिए। आकाश से हमारे कल्याण निमित्त वर्षा कीजिए।

"अग्ने ! नव्वे सहस्र आहुतियों द्वारा इन्द्र का भाग उन्हें प्रदान कीजिए। आप सब देवताओं के ज्ञाता हैं। शंतनु को यथासमय देवताओं के मध्य अवस्थित कीजिए।

"अग्ने ! शत्रुओं के दृढ़ दुर्गों को नष्ट कर डालिये। रोग-व्याधियों से हमारी रक्षा कीजिए। बृहद् अन्तरिक्ष से श्रेष्ठ वर्षा को लेकर आगमन कीजिए।"

इन्द्र प्रसन्न हो गये। अन्तरिक्ष से वाणी सुनाई पड़ी :

"देवापि !" इन्द्र ने कहा, "यज्ञ में तुम आओ। देवताओं का पूजन करो। उन्हें तुम हविरन्न से तृप्त करो।"

"इन्द्र !" देवापि ने इन्द्र की स्तुति वर्षा निमित्त की, "आप अद्‌भुत ऐश्वर्य देने वाले हैं। वह प्रशंसनीय ऐश्वर्य वार्धक्य प्राप्त करता अभिवृद्धि करता है। आपके लिए वृत्र-नाशक वज्र की रचना की गई है। आपने वर्षा की है।

"इन्द्र ! विद्युत आपका आयुध है। आप उसे धारण कर यज्ञ में सामगान की ओर गमन करते हैं। मरुद्‌गणों के सहयोग से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं। आदित्यगणों के आप सातवें भाई हैं। उत्तम गति से आपका रणभूमि में आगमन होता है। अविचलित रूप आप एक शत द्वारों वाले शत्रु नगर से धन लाते हैं। पापियों को अपने तेज से परामुख करते हैं।

"इन्द्र ! आप मेघों में विचरण करते हैं। श्रेष्ठ भूमि पर वर्षा करते हैं। क्षुद्र स्रोतस्विनियाँ एकत्रित होकर उज्ज्वल जल को प्रवाहित करती हैं।

"इन्द्र ! बिना माँगे आप फल देते हैं। अवांछित तत्व आपके सम्मुख जाने का साहस नहीं करते। इन्द्र ! आप मरुदगणों के साथ शुभागमन कीजिए। आपने दस्युओं पर शासन किया। आपने तीन सिर और छः नेत्रों वाले विश्वरूप का हनन किया है। त्रित ने आपके बल से बली होकर अपने लौह तुल्य तीक्ष्ण नखों द्वारा बाराह को मारा था।

"इन्द्र ! आपके उपासकों को जब शत्रु भय आसन्न होता है, तो आप अपने उपासकों को शत्रुनाशक आयुध देते हैं। आप मानवों के नेता हैं। आपने राक्षसों का वध कर उनके सहस्रों नगरों को नष्ट कर दिया है।

"इन्द्र ! आप तृणावर्त भूमि पर मेघों द्वारा वर्षा करते हैं। आपने अपने अंगों को सोम से सिंचित किया है। श्येन के समान आप दस्युओं का हनन करते हैं।

"इन्द्र ! आप अपने आयुधों से दुर्जय शत्रुओं को पराभूत करते हैं। कुत्स की स्तुति से प्रसन्न होकर आपने शुष्ण को विदीर्ण किया था। आपने कावे, उशना तथा अन्य उपासकों को ऐश्वर्य प्रदान किया है। आप शत्रुओं से मार्ग निष्कंटक करते हैं।

"इन्द्र ! आपने मनुष्यों के शुभचिन्तक मरुद्‌गणों को धन प्रेरित किया था। आप वरुण के समान तेजस्वी हैं। आपने चतुश्पाद शत्रु का वध किया था। सभी उपासक समय आने पर आपको रक्षक स्वरूप मानते हैं।

"इन्द्र ! उषिज पुत्र ऋजिस्वा ने आपकी स्तुति के कारण वज्र द्वारा विप्रु के गोष्ट का उद्‌घाटन किया था। आप ऋजिस्वा पर उस समय प्रसन्न हुए, जब उसने आपको सोम अर्पित किया था। और आपने शत्रुओं के नगरों को नष्ट कर दिया।

श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा देवापि ने पवित्र यज्ञ आरम्भ किया। सम्यक् स्तुति तथा आहुतियों से देवता प्रसन्न हो गये और उनकी प्रसन्नता में मुसकरा रहा था जनता का मेघाच्छन्न आकाश में सुख विद्युत।

× × ×

वर्षा ! वर्षा !! वर्षा !!! प्रजा प्रसन्न थी। शिशु प्रसन्न कूदने लगे। माताएँ अंचल उठाकर इन्द्र की वन्दना करने लगीं। पृथ्वी की तृष्णा शान्त हुई। अन्तरिक्ष स्वरूप समुद्र से पार्थिव समुद्र में वर्षा की प्रचुर जलधारा आई। देवताओं ने अन्तरिक्ष को आच्छादित कर दिया। देवापि की प्रेरणा से वर्षा का निर्मल जल उज्ज्वल पृथ्वी पर तैरने लगा।

बारह वर्ष का अवर्षण समाप्त हो गया। शस्य श्यामला भूमि एक युग के पश्चात् पुनः शस्य श्यामला हुई।

× × ×

"शंतनु !" देवापि ने स्नेह प्रदर्शित करते हुए कहा।

"तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध हो गया। मैं पुनः अपनी तपस्या निमित्त प्रस्थान करूँगा।"

"भ्रातृवर !" शंतनु ज्येष्ठ भ्राता के चरणों पर गिर पड़ा। उसके नेत्रों में अविरल अश्रुधारा थी।

× × ×

वह चले। राज्य का मोह पहले त्यागा था। प्रजा का मोह पुनः खींच लाया। निष्काम प्रजा-प्रेम में जगत ने देखा धर्म के प्रति अटल अनुराग। तपस्या का फल जनता के लिए। कर्म केवल अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए भी।

राजमार्ग प्रजा से भरा था। वे एकाकी चले। वल्कल परिधान में चले। चुपचाप चले। उन्होंने प्रजा को जल दिया। आज उनकी विदाई। प्रजा उनके द्वारा प्राप्त जल अपने अविरल अश्रु जल से वापस करने लगी और सूक्तद्रष्टा चला। औलान चला। देवताओं का उपाध्याय चला। और वह आगे चला, और पीछे चली कीर्ति-कौमुदी विकसित होती हुई।

आधार ग्रन्थ :

ऋषि : देवापि राष्टिवेण, देवता : देवाः, ऋग्वेद : १० : ९८ : १११, १० : ९५-९८
वृहद्देवता : ७ : १५५-१५७, ८ : १-८
निरुक्त : २ : १०

नोट : वैदिक कालीन राजनीति के सिद्धान्त का इस कहानी में वर्णन किया गया है। कर्म शक्ति न होने पर राज्य का स्वतः त्याग किसी दूसरे उपयुक्त व्यक्ति के लिए कर देने की बात इसमें कही गयी है। साथ ही साथ राज्य अधिकार त्याग देने पर यदि राज्य पर आपत्ति आये तो सहर्ष उसके लिये तैयार हो जाने के उदात्त विचार का वर्णन किया गया है। राजा प्रजा के कष्ट का उत्तरदायी प्रजा के सम्मुख होता है, इस सिद्धान्त का प्रदिपादन किया गया है।

आपद काल में क्षत्रिय भी ऋत्विक् बनकर यज्ञ करा सकता है, इसका स्पष्ट निर्देश इस कहानी में किया गया है।

पंचतत्वों से विश्व की रचना हुई है। आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी पांच तत्व हैं। इनके गुण क्रमशः स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध हैं। आकाश सब में सूक्ष्म है। तत्व क्रमशः सूक्ष्म से स्थूल होने के लिए पृथ्वी से पूर्ण स्थूलता प्राप्त करते हैं। आगे तृतीय तत्व है। उसमें स्पर्श तथा रूप तीन गुण वर्तमान हैं। वैदिक आश्रम जीवन का केन्द्र बिन्दु अग्नि है। वही हवि ग्रहण करता है। उसकी गति उर्ध्वगामी है, जबकि जल तथा पृथ्वी की गति अधोगामी है। इसलिए रूपक खींचा गया है कि अग्नि हवि देवताओं के पास पहुँचाता है। मृत्यु के पश्चात वही अपने पथ से प्राणियों को ले जाता है। उसी अग्नि का रूपक इस गाथा में खींचकर उसके रूप और गुण का वर्णन किया गया है। उसे पञ्चजनों का होता कहा गया है। अग्नि का आलंकारिक वर्णन इस कथा में किया गया है।

मुद्गलानी

कुछ घटना ऐसी घटी। भृमस्व के पुत्र मुद्‌गल की गायों तथा वृषभों की चोरी हो गयी। मुद्‌गल के पास केवल एक वृद्ध बैल शेष रह गया। पशु-धन का अपहरण था। मुद्‌गल व्यथित हो गये। उनकी चिन्ता देखी, उनकी पत्नी ने। सुपात्र गृहिणी की तरह चिन्तित नहीं हुई। घटना का सामना करने की दृष्टि से बलवती वाणी में बोली :

"चिन्ता क्यों करते हैं ? एक वृद्ध वृषभ बचा है। उसी से अपहर्ताओं का हम पीछा करेंगे।"

"इन्द्रसेना !" मुद्‌गल को अपनी पत्नी की ओजस्वी वाणी सुनकर उत्साह उत्पन्न हुआ। बोले, "क्या किया जाय ?"

इन्द्रसेना दस्युओं का पीछा करने के लिए तत्पर होती बोली : "पशु वापस लाने चाहिएं।"

पति-पत्नी उठे। चल पड़े। वृद्ध बैल को खूँटे से खोला। उसे साथ लेकर आगे बढ़े, अपहृत पशुधन वापस लेने के लिए। दस्युओं का सामना करने के लिए।

× × ×

ब्रह्मवादिनी मुद्‌गलानी किंवा इन्द्रसेना में अपूर्व चेतना उत्पन्न हो गयी थी। मुद्‌गल ने बूढ़ा बैल रथ में योजित किया। इन्द्रसेना उसकी सक्रिय सहायता करने लगी। कठिनाइयों की उन्हें चिन्ता नहीं थी। मुद्‌गल के हाथ में आयुध के नाते केवल एक द्रूघण था।

मुद्‌गल ने रथ के पहियों को चारों ओर से मजबूती से बाँधा। रथ के अवयव चरम रज्जुओं द्वारा बँधकर मजबूत हो गये। मुद्‌गल की पत्नी बैल को रथ के समीप लायी।

वृषभ बूढ़ा था। परन्तु उसकी गति कम नहीं थी। उसमें शक्ति थी। तृण तथा जलाभाव उसमें शिथिलता उत्पन्न नहीं कर सका था। अपने सींग से

मिट्टी के ढेर को ढहाने वाला बैल उग्र रूप से चला।

इन्द्रसेना ने सारथी का स्थान ग्रहण किया। उसने बैल की रस्सी सम्हाली। उसका पति मुद्गल रथारूढ़ वृद्ध बैल योजित रथ वेग से दौड़ाता, तस्करों के पीछे चला।

× × ×

असीम साहस का परिचय दिया इन्द्रसेना ने। असीम पौरुष का प्रदर्शन किया मुद्गल ने और अपूर्व शक्ति प्रकट की वृषभ ने। तीनों प्राणियों के विजय का संयुक्त साधन बन गया रथ। उनका वज्र से भी समयोपयोगी एकमात्र अस्त्र था द्रुघण। वही उनके विजय का कारण बना।

अत्यन्त सीमित शक्ति, साधन तथा साहस के कारण पशु-तस्करों पर उन्होंने विजय प्राप्त की। इन्द्रसेना चतुर सारथी प्रमाणित हुई। उसके अपूर्व रथ-कौशल के कारण रथ तस्करों तक सवेग पहुँच गया। तस्कर चकित हुए। साधनहीन विचित्र विरोधियों को देखकर।

× × ×

और वापस आये वे अपहृत पशुधन के साथ। दस्यु पराभूत हुए। प्रसन्न हो गया पुनः गायों को लौटा देख वृद्ध वृषभ। —और जगत ने देखा मन्त्रद्रष्टा मुद्गल की ब्रह्मवादिनी स्त्री का अपूर्व वीरत्व ! और नाम सार्थक मुद्गल ने किया मुदित होकर।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : ८ : ६ : ३०, १० : १०२ : ५
तैत्तरीय ब्राह्मण : १ : ६ : ७
निरुक्त : ६ : २३-२४
बृहद्देवता : ६ : ४६, ८ : १२ : ६०

नोट : यह रोचक कहानी है। वैदिक कालीन सभ्यता पर एक दृष्टि डालती है। दस्युओं का बहुत वर्णन ऋग्वेद में आया है। किस प्रकार वृद्ध बैल को रथ में योजित कर पति-पत्नी दस्युओं को परास्त कर पशुधन वापस लाये थे, इसमें वर्णन किया है। पति के साथ पत्नी युद्ध में जाती थी। स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान युद्ध में भाग लेती थीं।

सरमा और पणि

"आश्चर्य ! महान् आश्चर्य !!" देवता उद्विग्न थे ।
"कल्पनातीत घटना—।"
विषाद स्वर गूँजा ।
"ऐसा इतिवृत्त आज तक सुना नहीं गया था ।"
वाणी में क्षोभ था ।
"बृहस्पति की गाय उठा ले गये ।"
शब्दों में उदासी थिरकी ।
"किसने साहस किया ? बृहस्पति हमारे रक्षक हैं ।"
गौरव को जैसे ठेस लगी ।
"पणियों ने ।"
देवता स्तब्ध हो गये ।
"हमारे पौरुष को धिक्कार है ।"
वाणी में अमर्ष भावना थी ।
"हमारे बल को धिक्कार है ।"
स्वर में अपने प्रति तिरस्कार था ।
"गाय यज्ञ की आधारभूता है । अब यज्ञ कैसे होगा ?"
स्वर में चिन्ता व्याप्त हुई ।
"—और इन्द्र—! उनका शासन !! हम अरक्षित !!!"
देवता नीरव हो उठे ।

× × ×

"बृहस्पति !" इन्द्र ने साश्चर्य पूछा ।
"हाँ देवेन्द्र !" बृहस्पति ने उदासीन स्वर में कहा ।

"गायें हरी गयी हैं ?"

"हाँ ! वज्रिन् !!"

"कुछ रहस्य मालूम हुआ ?"

"हाँ ! सहस्राक्ष ?"

"कौन ले गया ?"

"वृत्रहन् ! पणियों ने।" बृहस्पति ने नत मस्तक करते हुए कहा।

"पणियों ने ?" पाकशासन के ललाट की रेखाएँ संकुचित हुईं।

"हाँ ! शतमन्यु !"

"उन्होंने कहाँ रखा है ?"

"दिशिराज !" रसा नदी के उस पार। पर्वतों की गुहा में वे बन्द हैं।

"हूँ—!" इन्द्र गम्भीर हो गये।

× × ×

"सरमा !" इन्द्र ने सरमा को सम्बोधित किया।

"पुरन्दर ! आज्ञा।" सरमा ने नत मस्तक प्रणाम करते हुए कहा।

"सरमा ! तू कार्यकुशल है। वाक्पटु है। चतुर है।"

सरमा ने सादर मस्तक नत किया।

"पणियों का तुम्हें ज्ञान है ?"

"है—सुरपति !"

"वे क्रूर हैं। अनिष्टकर हैं। अनुपकारी हैं। मृध्रे वाच हैं। ग्राथिन् हैं। वेकनाथ हैं। वैर-देय हैं।"

"जानती हूँ। मेघवाहन !" सरमा ने विचार करते हुए उत्तर दिया।

"सरमा ! वे वृक हैं। कृपण हैं। गाय उनकी सम्पत्ति है। उन्होंने गायों में घृत खोज निकाला है। देवताओं के शत्रु हैं। मनुष्यों के शत्रु हैं। अन्तरिक्ष के तुंगतर पटल पर दैत्यों का पणि एक वर्ग है।"

"ज्ञान है। गोत्रभिद् !" सरमा ने स्थिर स्वर में कहा।

"इन वृकों तुल्य असुरों का जलते हुए पत्थरों से भेदन किया गया था।"

"जानती हूँ। पाक रिपु !" सरमा ने इन्द्र को नमन करते हुए उत्तर दिया।

"वे गुह्य शक्ति मुक्त हैं। सोम, अग्नि, बृहस्पति, अंगिरस के शत्रु हैं। वे दस्यु हैं।"

"जानती हूँ ! असुरहन् !" सरमा ने प्राँजलिभूत होते हुए कहा।

'अग्नि ने, सोम ने, प्राणियों के अन्न स्वरूप गौओं का हरण किया था।

ब्रहस्पति ने अंगिरागण की सहायता से गुहा में पत्थर के द्वारों द्वारा बन्द रोती हुई गौओं को मुक्त किया था। नीचे एक द्वार से तथा ऊपर दो द्वारों द्वारा तिमिराच्छन्न गुफाओं में छिपाकर गायें रखी गई थीं। ब्रहस्पति ने तीनों द्वारों को खोला। सर्वप्रथम गुफा में प्रकाश किया। रात्रि में चुपचाप पणियों के नगर के पृष्ठभाग को विदीर्ण कर प्रवेश किया था। समुद्र तुल्य उन गुफाओं से प्रातः-कालीन समुद्र से निकलते सूर्य की तरह गौओं को निकाला था।"
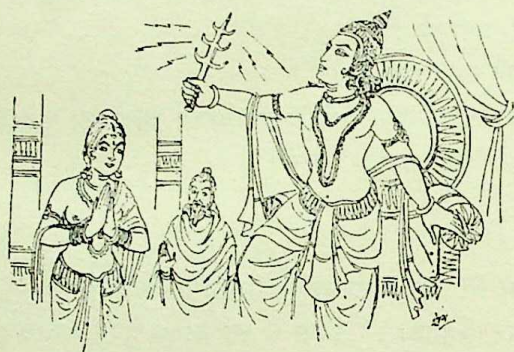
"जानती हूँ, वासव ! उनके नाश निमित्त सोम का आह्वान किया गया है। वे धनी हैं। परन्तु दान नहीं देते। देवों को हवि नहीं देते। पुरोहितों को दक्षिणा नहीं देते। ऋषियों की दृष्टि में अवांछनीय तत्व हैं। वे गऊ चुराते हैं। जल रोकते हैं। अस्पष्ट वाणी बोलते हैं। उपासना नहीं करते। बिना कुछ लिए कुछ भी नहीं देते। अदेव पूजक हैं। हेय हैं।"

"सरमा ! तू उनकी मनोवृत्ति को समझती है। उनके आचरण तथा व्यवहार का तुझे ज्ञान है। अंगिरस ने मुझसे कहा है। तुझे दौत्य-कार्य निमित्त स्मरण किया है।"

"वृद्धश्रवा !" सरमा ने विनय से कहा। "आपकी कृपा है।"

"तुझे चुना है, तुझे दूत कार्य करना होगा।"

"दिवस्पति ! यह मेरा अहोभाग्य है।" सरमा ने नत-मस्तक इन्द्र को प्रणाम करते हुए कहा।

"सरमा ! दूत कार्य कठिन होता है।"

"जानती हूँ ! मघवा !!" सरमा ने सस्मित उत्तर दिया।

"दूत की वाणी शुद्ध, व्याकरण शुद्ध, स्वर मधुर होता है। विनय, शील, अक्रोध, दूसरों की बातों को श्रवण कर उन्हें गोपनीय रखना दूत का स्वभाव

है। अपनी बात वेग से न कहकर शब्दोच्चारण के पूर्व किंचित मुसकराकर वाक्य मुख से निकालना चाहिए। किसी भी अवस्था में आवेश में न आना चाहिए। दूसरे की बातें जान लेना और अपनी बात न जनाना, किसी प्रश्न तथा विषय पर आतुरता नहीं प्रकट करना, मिताहार, दूसरों को खिलाने की अधिक तत्परता, दूसरों को अनुग्रहीत करने का प्रयास, यह कुछ दूतों के गुण कहे गये हैं। दूत अवध्य है। तुझ पर कोई पणि हाथ नहीं उठायेगा।"

"शतमन्यु ! आपके आदेशों का अक्षरशः पालन करूँगी।"

'सरमा ! पणियों के पास जाकर गाय का पता लगाना। उन्हें समझाना। संघर्ष की अपेक्षा शान्ति से वे बृहस्पति की गायें लौटा दें। अन्यथा आक्रमण करना होगा।"

'मरुत्वान् !" सरमा ने इन्द्र को नमस्कार करते हुए कहा, आपको किसी प्रकार की शिकायत नहीं होगी।"

"ऐसी आशा है सरमा ! कार्य दुष्कर है। तू द्रष्टा है। स्वयं दैवी प्राणी है। तुझे सफलता मिलेगी। मैं आशा करता हूँ।"

इन्द्र ने सरमा को सफलता के लिए अभय मुद्रा से आशीर्वाद दिया।

× × ×

"सरमा !" पणियों ने सरमा को चकित दृष्टि से देखते हुए कहा, "तुमने किस आकांक्षा के साथ यहां पदार्पण किया है।"

"यह स्थान दुर्गम है। दूर है। आगन्तुक पुनः पीछे फिर कर नहीं देख सकता।"

"तथापि आ गई हूँ।" सरमा ने किंचित मुस्कराकर विनम्र स्वर से कहा।

"तुमने किस प्रकार रसा नदी को पार किया है ? कितनी रात्रियाँ तुम्हें यहाँ आने में व्यतीत करनी पड़ी ? किसकी कामना से हमारे पास आगमन हुआ है ?"

"पणिगण !" सरमा ने मधुर स्वर में कहा, "मैं इन्द्र की दूत रूप से विचरण कर रही हूँ। आपने गउओं को अपने यहाँ संचित कर रखा है। मैं आपकी कृपा से उन्हें लेना चाहती हूँ। मार्ग में जल के कारण मुझे भयग्रस्त होना पड़ा था। किन्तु यहां पहुँचने का जल साधन बन गया। वही रक्षक था। उसने मुझे पार पहुँचा दिया।"

'दूती !" पाणिगणों ने जिज्ञासा की।" आपने जिस इन्द्र का उल्लेख किया है। जिसकी दूत बनकर आप आई हैं। वे इन्द्र कैसे हैं ? उनकी सेना का रूप क्या है, उनकी शक्ति का बल क्या है ?

"सरमे !" पणियों ने पुनः कहा। "हम इन्द्र से मित्रता करना चाहते हैं। उनके आगमन का हम स्वागत करेंगे। वे हमारी गौओं को ले सकते हैं।"

"पणियों !" सरमा ने अत्यन्त विनम्रता से कहा। "मैं जिस इन्द्र की दूत बनकर आपकी सेवा में आयी हूँ। वे अजेय हैं। सबको पराजित करने में समर्थ हैं। महान् जलवती गम्भीर नदियाँ उनका मार्गावरोध नहीं कर सकतीं। वे इन्द्र आप लोगों को हत करने में समर्थ हैं।"

इन्द्र के बल का वर्णन सुस्पष्ट. नम्र किन्तु बलवती भाषा में सुनकर, पणि गम्भीर हो गये। उन्होंने परस्पर विचार-विनिमय किया। तत्पश्चात् बोले :

"सुभगे ! तुम दिव्य लोक से चलकर यहाँ आई हो। तुम गायों की इच्छुक हो। हम उन्हें स्वेच्छा से देने के लिए उद्यत हैं। अन्यथा बिना युद्ध के कौन अपनी गायें अनायास देना पसन्द करेगा। हम लोग भी तीक्ष्ण आयुधों से सम्पन्न हैं।"

"पणियों !" सरमा ने गम्भीरतापूर्वक कहा। "आपके मन में पाप ने स्थान कर लिया है। वीरोक्त वचन आपके मुख से शोभा नहीं देते। हमें दुःख होगा। कहीं आपके शरीर इन्द्र के बाणों से क्षत न हो उठें। आपके मार्गों पर देवताओं का कहीं आक्रमण न हो जाय !"

पणियों ने एक दूसरे की ओर देखा।

"पणिगण !" सरमा ने स्थिर स्वर में कहा। "यदि आप बृहस्पति की गायें नहीं वापस करेंगे तो विपत्तियाँ उपस्थित हो सकती हैं। बृहस्पति के कारण आप लोगों को दुःख का सामना करना पड़ सकता है।"

"दूती !" पणियों ने अपनी वाणी में बल का प्रदर्शन करते हुए कहा। "पर्वतों द्वारा हम सुरक्षित हैं। गौ, अश्व तथा सम्पत्तियों से सम्पन्न हैं। सुरक्षा में नियुक्त हमारे वीर स्थान की रक्षा करने में समर्थ हैं। सरमा ! तुमने व्यर्थ ही आने का कष्ट किया है।"

"पणियो !" सरमा ने उनके गर्व का जैसे विनम्र वाणी में उपहास करते हुए कहा, "अंगिरस, अपास्य तथा नवग्वा का सोम शक्ति से सम्पन्न होकर यहाँ आगमन होगा। वे यहाँ संग्रहीत समस्त गौओं को ले जायेंगे। उस समय आप लोगों का गर्व अनायास समाप्त हो जायगा।"

"सरमा !' पणियों ने परिस्थिति की गम्भीरता समझकर प्रलोभन को साधन बनाया। "भयभीत देवताओं की प्रेरणा से यहाँ आपका आगमन हुआ है। आपको हम अपनी भगिनी स्वरूप मानते हैं। आपका भाग हम आपको

प्रदान करते हैं। यहाँ से लौटकर जाने से आपका क्या लाभ होगा। यहीं निवास करिये।"

"पणियो!" सरमा उनके प्रलोभन से अप्रभावित होती हुई बोली। "आपके भाई-बहन गाथा को मैं नहीं समझ पा रही हूँ। इन्द्र तथा अंगिरस जानते हैं। उन्होंने मुझे पूर्णरूपेण सुरक्षित कर आपके पास भेजा है, उन्हीं की सुरक्षा के कारण यहाँ तक पहुँच सकी हूँ। आप लोग स्वयं यहाँ से प्रस्थान कर जाइये।"

पणिगण चिन्तित हुए। सरमा ने अपनी बात का प्रभाव होते देखकर पुनः कहा :

"पणियो! यहाँ से बहुत दूर चले जाओ। गुफा में बन्द गायें कष्ट पा रही हैं। वे पर्वत से निकलकर धर्म का आश्रय प्राप्त करेंगी। सोम का अभिषव करने वाले पाषाण, ऋषिगण, सोम, बृहस्पति, तथा अन्यान्य विद्वान् यहाँ पर छिपी हुई गौओं का भेद जान गये हैं।"

"कल्याणी।" पणियों ने पुनः प्रलोभन देते हुए कहा, "हम जानते हैं, इन्द्र के दूत स्वरूप आप विचरणशील हैं। हमारे गोष्ठ तथा इन्द्र की गायों का अन्वेषण कर रही हैं। तथापि हम यही निवेदन करते हैं कि आप हमारी भगिनी बनकर यहाँ निवास कीजिये।

× × ×

पणि गाय लौटाने को तैयार नहीं हुए। सरमा इन्द्र लोक लौट गयी।

"सरमा!" इन्द्र ने प्रसन्न होकर पूछा, "तुम आ गईं। कुशल तो है?"

"सुरेश! आपके आशीर्वाद से सर्वत्र कल्याण ही रहेगा।" सरमा इन्द्र को प्रणाम करती हुई बोली।

"कल्याणी! गायों का रहस्योद्घाटन हुआ?"

"पुरन्दर!" सरमा ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "रसा के पास पणियों ने गायों को पर्वतीय गुफा में छिपा रखा है।"

इन्द्र प्रसन्न हो गये। देवता प्रसन्न हो गए। बृहस्पति को अपनी गायों की पुनः प्राप्ति की आशा हो गई। उत्साहित इन्द्रदेव उठते हुए बोले :

"सरमे! चलो। मैं गायों को मुक्त करूँगा।"

देवों की हर्ष ध्वनि से गगन गूँज उठा।

× × ×

उत्तम पादवती सरमा गायों के स्वर को पहचानती थी। वह उनके समीप गई। इन्द्र ने पणियों का संहार किया, गायें मुक्त हुईं। पर्वत के टूटे द्वार पर इन्द्र को ले जाती सरमा ने कहा :

"देव ! मैने अपना कार्य पूरा किया ।"

"सरमे !" इन्द्र ने सस्मित कहा, "मुझे स्मरण है । अपने वचन का पालन करूँगा । तुमने अपने उत्तरदायित्व का सफल निर्वाह किया है ।"

इन्द्र ने सरमा को अपने वचनानुसार प्रचुर अन्न तथा धन उसे तथा उसकी सन्तानों को देकर सुखी बनाया और पणियों को पराजित कर बृहस्पति की गायों को लौटा दिया । देवताओं की हत गौरव पताका पुनः उठती गौरव में फरफरा उठी । यज्ञवेदी अपहृत एवं पुनः प्राप्त गायों के घृत से प्रज्वलित हो गई ।

आधार ग्रन्थ :

ऋग्वेद : १ : ३२ : ११, १ : ३३ : ३, १ : ८३ : २, १ : ११२, १ : १२४ : १७, १ : १५१ : ६, १ : १८० : ७, १ : १८४ : २ २ : २४ : ६, ३ : ५८ : २, ४ : १६ : ८, ४ : २८ : ७, ४ : ५१ : ३, ४ : २८ : ४, ५ : ३४ : ५-७, ५ : ६१ : १-८ ५ : ६३ : ६, ६ : १३ : ३, ६ : ५ : ३, ६ : २० : ४, ६ : ३३ : २, ६ : ५१ : १४, ६ : ४४ : २२, ६ : ६१ : १-३ ७ : ६ : २, ७ : ९ : २, ८ : ६४ : २, ८ : ९७ : २, ८ : ४५, ८ : ६६, १० : ७५ : ६, १० : १०८, १० : ६० : ६ १० : ६७, १० : १११-११३

शतपथ ब्राह्मण : ३ : २ : १-३

बृहद्देवता : १ : १२८, २ : ७७ : ८३, ८ : २५-३५

नोट : राजदूतों के गुण, कर्म तथा व्यवहार का इसमें वर्णन किया गया है । युद्ध के पूर्व शत्रु को समझाने तथा शान्ति वार्ता के लिये दूत भेजना वैदिक प्रथा मालूम होती है । इसका किसी न किसी रूप में आज भी अनुसरण किया जाता है । वैदिक काल में स्त्रियाँ भी दौत्य-कार्य करती थीं ।

१. पणि—यह एक व्यापारी जाति थी । वे अरब तथा उत्तरी अफरीका तक जाया करते थे । मैं समझता हूँ कि पणि तथा प्राचीन फौनीशियन में किसी प्रकार का सम्बन्ध रहा होगा । अथवा दो जातियाँ एक ही मूल स्रोत से निकलकर दो स्थानों में दो नामों से पुकारी जाने लगीं ।

पणि कृपण थे । दान नहीं देते थे । अपने अवांछनीय कर्मों के कारण हीन जाति के समझे जाने लगे थे । कालान्तर में उन्हें दैत्य वर्ग में रख दिया गया ।

२. रसा नदी—वैदिक क्षेत्र के धुर उत्तर-पश्चिम में यह नदी प्रवाहित थी । एक मत है कि पारसियों के ग्रन्थों में वर्णित 'रहा' नदी ही वेदवर्णित रसा नदी है । कतिपय पाश्चात्य विद्वान इसे 'अरैक्सेस' किंवा 'जकार्तेस' मानते हैं । सरस्वती के समान रसा शब्द नदी वाचक हो सकता है । जल का गुण रस है । रस जल का नाम है । जल-प्रवाह ही नदी का रूप है ।

सरमा—इन्द्र की दूती थी । वह पणियों के पास भेजी गयी थी ।